मुद्रकः-
श्री वीर प्रेस,
मनिहारों का रास्ता
जयपुर-३

श्री वीर नि० सं० २४९६
वि० सं० २०२६
जनवरी १९७०

मूल्य-
तीन रुपया मात्र
द्वितीय संस्करण १०००

दानी महानुभाव

१—श्री दि० जैन समाज अमीरगंज
टोंक (राज०) ९०० प्रति

२—श्री गणेशमलजी मोहनलालजी

३—श्री तोलारामजी डालमचन्दजी
कूचविहार (पश्चिमी बंगाल)

४—श्री चतुर्भु जजी जैन, पांचवा
कुचामन सिटी (राज०) १०० प्रति

☆ विषय-सूची ★

पृष्ठ

आद्य वक्तव्य

एक समय वह था कि विश्व का अधिकांश प्राणी आध्यात्मिकता की ओर था। उस समय संसार में सर्व प्रकार से शान्ति थी। हजारों दिगम्बर महात्मा यत्र तत्र भ्रमण किया करते थे। बच्चे से लेकर वृद्ध तक सभी नर-नारी उनके विषय की पूरी जानकारी रखते थे। कोई भी उस प्रकृतिदत्त नग्नत्व को देखकर नाक-भौं नहीं सिकोड़ता था। उन तपस्वियों के चरणों में सहज ही सबका मस्तक झुक जाता था।

एक समय वह भी आया कि मांडवी जिला सूरत में सरकार ने दिगम्बर मुनियों के स्वतंत्र विहार में अड़चन डाली और उसके फल स्वरूप 'दिगम्बरत्व और दिगम्बर मुनि' नामक प्रस्तुत पुस्तक को श्रीयुत् बाबू कामताप्रसादजी जैन, एम० आर० ए० एस० ने महान् परिश्रम द्वारा तैयार किया। जिस किसी भी उच्च से उच्च विद्वान् ने हस्तलिखित प्रति को देखा तो वह धन्य धन्य कह उठा। सर्व प्रथम सन् १९३२ ई० में 'श्री भा० दि० जैन शास्त्रार्थ संघ' ने इसकी दो हजार प्रतियां 'चम्पावती जैन पुस्तकमाला' से प्रकाशित कराईं।

अनेकों पाठकों ने गत ३७ वर्षों में इन पुस्तकों से दिगम्बरत्व (नग्नत्व, निष्परिग्रहत्व) और दिगम्बर मुनियों के महत्व की जानकारी की तथा सर्व साधारण को भी कराई।

वर्तमान में विरले वाचनालयों के अलावा कहीं भी इसकी प्रति नहीं मिलती। अतः समयानुकूल इसकी उपयोगिता को समझकर अप्राप्य होने से पुनः प्रकाशित कराने का निश्चय किया।

यद्यपि कम से कम पांच हजार प्रतियां छपाने का विचार था परन्तु एक हजार ही प्रकाशित कराई जा सकी हैं। जिस किसी पाठक के पास में यह पुस्तक पहुंचे वह इस पुस्तक सम्बन्धी विषय का गहराई से अध्ययन व मनन करके इसका अधिक से अधिक प्रचार करे, ऐसा नम्र निवेदन है।

जिनके प्रवचनों में सदैव सहस्रों नर-नारी आते हैं, उच्च से उच्च विद्वान् और राष्ट्र के नेता जिनका चरणसान्निध्य प्राप्त करते हैं; कन्नड़ मराठी, संस्कृत, हिन्दी और अंग्रेजी आदि अनेक भाषाओं के जो जानकार हैं; ऐसे ख्याति प्राप्त मुनि श्री विद्यानंदजी ने प्रस्तुत पुस्तक पर 'आद्यमिताक्षर' लिखकर 'सुवर्ण में सुगन्ध' वाली कहावत को चरितार्थ किया है। उनके लिये अधिक क्या लिखा जाय।

श्री वीर प्रेस के मालिक भंवरलालजी न्यायतीर्थ ने प्रूफ संशोधनादि तथा अच्छे से अच्छे रूप में प्रकट करने में पूर्ण ध्यान रक्खा है अतः धन्यवाद के पात्र हैं।

साथ ही विशेष धन्यवाद के पात्र वे दानी महानुभाव हैं जिनके सद्द्रव्य का सदुपयोग इस पुस्तक रूप में हुआ है।

—क्षुल्लक-शीतलसागर
(श्री आचार्य महावीर कीर्तिजी के शिष्य)

आद्य-मिताक्षर

भारतीय संस्कृति का मूलतः अध्ययन करने वाले उच्च-कोटि के चिन्तक एवं मनीषी लेखकों ने श्रमण-संस्कृति को प्राथमिक स्थान दिया है और दे भी रहे हैं। ऋग्वेद से लेकर उपनिषद्, आगम-निगम एवं पुराण एक स्वर से यही घोषणा करते आ रहे हैं कि—भारतीय संस्कृति के मूल में श्रमण-धर्म या श्रमण-संस्कृति है।

'तृदिला अतृदिलासो अद्रयोऽश्रमणा अशृथिता अमृत्यवः।'

ऋग्वेद १०।६४।११

---

१ कृतयुग में श्रमण—

१. 'कृते प्रवर्तते धर्मश्चतुष्पात्तज्जनैधृतः।
सत्यं दया तपो दानमितिपादाविभोर्नृप: ।।
सन्तुष्टा करुणा मैत्राः शान्ता दान्तास्तितिक्षवः।
आत्मारामाः समदृशः प्रायशः श्रमणा जनाः ।।'

—भागवत १२।३।१८–१९

२. 'लक्खं पंचसहस्सा अट्ठसयाणि पि मिलिदपरिमाणं।
विणयसुदणियमसंजमभरिदाणं भावसमणाणं ।।'

—तिलोयपण्णत्ती ४।१२३८

विनय, श्रुत, नियम और संयम से युक्त सब भाव मुनियों का प्रमाण १०५८०० होता है [इनमें से कृतयुग (तीर्थंकर वृषभदेव) के काल के श्रमण मुनियों की संख्या ३१०० थी]।

'जिस क्रिया से श्रमण परिव्राट् होता है, उससे मुक्त होने के कारण वह अश्रमण कहलाता है। शिथिलाचार रहित मृत्यु, भय, बुढ़ापा, तृष्णा एवं लोभ से रहित, सदा गतिशील, निर्मोही, निस्पृह, दुःखों तथा संशयों से रहित इन सबमें बलवान् होने से वह आदर योग्य और स्वयं सबसे भिन्न होता है।' [ऋग्वेद १०।९४।११] ऋग्वेद के उक्त कथन की पुष्टि श्रीमद्भागवत से भी होती है— कृतयुग में धर्म के चार चरण होते हैं। वे चरण हैं—सत्य, दया, तप और दान। उस समय के लोग पूर्ण निष्ठा के साथ अपने अपने धर्म का पालन करते हैं। धर्म स्वयं भगवान का स्वरूप है।

'कृतयुग के लोग बड़े सन्तोषी और दयालु होते हैं। वे सबसे मित्रता का व्यवहार करते और शान्त रहते हैं। इन्द्रियां और मन उनके वश में रहते हैं और सुख दुख आदि द्वन्द्वों को वे समान भाव से सहन करते हैं। अधिकांश श्रमण ही समदर्शी और आत्मा में रमण करने वाले होते हैं और शेष लोग स्वरूप स्थिति के लिये अभ्यास में तत्पर रहते हैं।' मनुस्मृति से भी भागवत के इस कथन की पुष्टि होती है ['तपः परं कृतयुगे'— मनु० १।८६] अर्थात् कृतयुग में परं-तप माना गया है। महाभारतकार तो यज्ञ विधि की प्रथा को भी कृतयुग में नहीं मानते, वे कहते हैं–['यज्ञानां न कृते युगे' —महाभारत, शांति पर्व २३२।३२] भागवतकार ने कृतयुग में इस श्रमण-धर्म के प्रथम-पुरुष श्री 'ऋषभ' की उत्पत्ति एवं उनकी श्रमणचर्या का स्पष्ट उल्लेख किया है—['कृतावतारः पुरुषः स आद्यः। चचार धर्मं यदकर्महेतुम् ॥'—भागवत ५।७।१४] कृतयुग के

आदि में ऋषभ (देव) ने जन्म लेकर मोक्ष प्राप्ति के लिये परमहंस (श्रमण दिगम्बर) धर्म का[1] आचरण किया।

[‥‥ ‥‥‥‥‥‥ वातरशनानां श्रमणानामृषीणामूर्ध्व-मन्थिनां शुक्लया तनुरवतार।'–भाग० ५ ३।२०] इससे स्पष्ट विदित होता है कि श्री वृषभदेव ने वातरशन श्रमण धर्म में जन्म लेकर श्रमण धर्म का प्रचार किया। जैन शास्त्रों में ऋषभ देव को प्रथम युग पुरुष माना जाता है, उन्होंने प्रजा को असि, मसि, कृषि, विद्या, वाणिज्य और शिल्प की विधि सिखाई और प्रजापालक होने के कारण वे प्रजापति कहलाये' आदि।

['कृत्वा कृतयुगारम्भं प्राजापत्यमुपेयिवान्'—आदि पुराण १६।१९०.] श्री वृषभदेव (आदिनाथ) ने कृतयुग का आरम्भ किया और इस प्रकार प्रजाओं की रक्षा करने से प्रजापति पद धारण किया। ['पुरुराद्यः प्रजापतिः '–धनंजय कोष ११४] के अनुसार भी ऋषभदेव आद्य प्रजापति थे।

[प्रजापतिर्यः प्रथमं जिजीविषूः। शशास कृष्यादिसु कर्मसु प्रजाः॥'–स्वयम्भु २] प्रजापति तीर्थंकर आदिनाथ ने जीव-नेच्छा रखने वाली प्रजाओं को कृषिकर्म में शिक्षित किया।' श्रीरामधारीसिंह दिनकर ने श्रमण संस्कृति को आर्ययुग से पूर्व का माना है, वे अपने ग्रन्थ 'संस्कृति के चार अध्याय' में लिखते हैं–

" ‥‥वैदिक युग में भी श्रमणों की संख्या काफी थी और अनुमान यह है कि श्रमणसंस्कृति आर्यों के आगमन के

---

१. 'इति नानायोगचर्याचरणो भगवान् कैवल्यपतिर्ऋषभः।'–भागवत ५।६।३४

पूर्व से ही इस देश में विद्यमान थी। ये श्रमण अवैदिक होते थे"। "इस अनुमान की पुष्टि इस बात से भी होती है कि मोहंजोदारो की खुदाई में योग के प्रमाण मिले हैं और जैनमार्ग के आदि तीर्थंकर श्री ऋषभदेव थे[१]।" स्मरण रहे कि खुदाई में उपलब्ध वस्तुएं ५००० वर्ष पूर्व की हैं।

कुमार: श्रमणादिना'—शाकटायन २।१।७८ से श्रमणों के अस्तित्व की सिद्धि होती है और अष्टाध्यायीकार पाणिनि ने भी 'कुमार: श्रमणादिभि:'–२।१।७० में इसकी पुष्टि की है। सूत्रकार संक्षिप्त भाषी होते हैं और जबतक अत्यंत अनिवार्यता का बोध नहीं होता, वे विशेष सूत्रों की रचना में प्रवृत्त नहीं होते। 'कुमारश्रमणा' आदि पद उस समय लोक-प्रचलित रहे होंगे। यह शब्द संज्ञा उस तापसी के लिये नियत थी जो कुमारावस्था में श्रामण्य ग्रहण कर आर्यिका हो जाती थी। 'श्रमणादि गणपाठ' के अन्तर्गत कुमार प्रव्रजिता और कुमारतापसी जैसे निष्पन्न शब्दों से सिद्ध है कि कुमारियों का प्रव्रज्याग्रहण उस समय लोक विश्रुत सामान्य था। तीर्थंकर श्री वृषभनाथ की ब्राह्मी और सुन्दरी दोनों पुत्रियों ने कुमारी-अवस्था में ही श्रमणी–पद ग्रहण किया था तथा नेमिनाथ के साथ विवाहार्थ समुद्यत किन्तु अकृतपाणिग्रहणा राजमती भी कुमार श्रमणाओं की गणना में आती है। यह कुमारी शब्द इस विशिष्ट बोध का प्रत्यायक भी है कि कुमारावस्था से भिन्न वैधव्य अथवा विरागस्थिति में प्रव्रज्या ली जाती थी।

---

१. रामधारीसिंह दिनकर, संस्कृत के चार अध्याय, पृ. ३६,१२१.

परन्तु कुमारी शब्द के साथ श्रमणा का उच्चारण उनके अविलुप्त ब्रह्मचर्य की विशेषता का ज्ञापक नाम था।

महर्षि वाल्मीकि ने लिखा है कि श्रमण-मुनि महाराजा जनक के यहाँ आहार को जाया करते थे। उनका कथन इस प्रकार है—['श्रमणाश्चैव भुंजते'–वाल्मीकि रामायण १४।१२] संस्कृत टीकाकार भूषण अपनी टीका में श्रमण की व्याख्या करते हुए उन्हें दिगम्बर लिखते हैं-'श्रमणा दिगम्बराः श्रमणा वातवसना इति'। इतना ही नहीं, वाल्मीकि ने तो शबरी को श्रमणी नाम से सम्बोधित किया है- [' श्रमणी शवरी नाम काकुत्स्थ! चिरजीविनी।'–रामा० अरण्य० ७३।२६] राम के मुखद्वार से भी वाल्मीकि ने 'शवरी' उच्चारण न कराकर 'श्रमणी' उच्चारण कराया है और उसे धर्मस्थित विशेषण से भूषित कराया है। इससे विदित होता है कि वह श्रमणी थी, धर्मनिष्ठ थी–हो सकता है वह ब्रह्मचारिणी हो। मालुम होता है कि 'शवरी' शब्द श्रमणी का विगड़ा रूप हो [१]। अन्यथा वाल्मीकि उसे श्रमणी के नाम से वारम्वार नहीं पुकारते। वे राम को (कवन्ध के मुख से) कहलाते हैं—

............' श्रमणां धर्मनिपुणामभिगच्छेति राघव !॥'-
वाल० रामा० १।५६

---

१. प्राकृत में श्रमण का रूप समण' है, मागधी में 'शमण', संस्कृत में 'श्रमण', अपभ्रंश में 'सवणु', कन्नड़ में 'श्रवण' यूनानी–मेगास्थनीज 'सरमनाई' (SARMANAI), चीनी यात्री ह्वेनसाँग 'श्रमणेरस' (SARMANERAS) है। हलायुध कोषकार ने पृ० ६७३ पर श्रमणा अर्थों में 'शवरीभेद' भी लिखा है।

हे राघव! आप धर्म निपुणा श्रमणी के पास जाओ।' इन सब प्रमाणों से श्रमण और श्रमणी की प्राचीनता सहज सिद्ध है, इसमें सन्देह नहीं।

'श्रमणब्राह्मणम्'–'येषां च विरोधः शाश्वतिकः इत्य-स्यावकाशः श्रमणब्राह्मणम् –पातञ्जलिमहाभाष्य २।४।९] पाणिनि के इस सूत्रका उदाहरण है। जिनका नित्य विरोध है, यह सूत्र का अर्थ है। यहाँ विरोध शाश्वतिक है, किसी हेतु विशेष से समुत्पन्न नहीं। शाश्वतिक विरोध सैद्धान्तिक ही हो सकता है। क्योंकि निमित्तजन्य दोष निमित्त के परिहार होने पर समाप्त हो जाता है। परन्तु महर्षि के 'शाश्वतिक' पद से यह सिद्ध होता है कि श्रमणों तथा ब्राह्मणों का कोई विरोध है जो शाश्वतिक (सनातन) है: इस आशय से यह निर्णय लिया जा सकता है कि ब्राह्मण वैदिक धारा का प्रति-निधित्व करते हुए एकेश्वरवाद तथा ज्ञान से मुक्ति मानते हैं तथा श्रमण परम्परा अनेकेश्वर अथवा अनेकान्त मत के साथ तप से, श्रम से जिसकी मूलसंगति आचार (सम्यक्चारित्र) के साथ है, मोक्ष मानते हैं। यही इनका शाश्वतिक विरोध है। वास्तव में तो ज्ञान और क्रिया का एकायन ही मोक्षहेतु है 'ज्ञान क्रियाभ्यां मोक्षः' इति सर्वज्ञोपदेशः'–सूत्रार्थमुक्तावली, ४५]

'तीर्थङ्कर वृषभदेव ने केवलज्ञान के पश्चात् धर्म का उपदेश दिया और अनेकों स्थानों पर विहार किया। उनके द्वारा उपदिष्ट अनेकों राजाओं, श्रेष्ठियों एवं सर्वसाधारण मानवों ने श्रमण मुनि की दीक्षा ग्रहण की। तीर्थङ्कर वृषभदेव

के शत [1](१००) पुत्र थे। वाहुवली आदिक पुत्रों ने भी श्रमण

१. ऋषभस्य शतंपुत्रास्तेजस्कान्तिसमन्विताः।
'श्रमण' व्रतमास्थाय संप्राप्ताः परमं पदम्॥'-पद्मपुराण ४।६०

श्री ऋषभदेवस्य शतपुत्रनामानि—१. भरत २. वाहुवली ३. शंखः ४. विश्वकर्मा ५. विमलः ६ सुभक्षणः ७. अमलः ८. चित्रांगः ९. ख्यातिकीर्ति १०. वरदत्तः ११ सागरः १२ यशोधरः १३ अमरः १४ रथवरः १५ कामदेवः १६ ध्रुवः १७ वच्छः १८ नन्दः १९ सूरः २० सुनन्दः २१ कुरुः २२ अंगः २३ वंगः २४ कौशलः २५ वीरः २६ कलिंगः २७ मागधः २८ विदेहः २९ संगमः ३० दशार्णः ३१ गम्भीरः ३२ वसुचर्मा ३३ सुवर्मा ३४ राष्ट्रः ३५ सुराष्ट्रः ३६ वुद्धिकरः ३७ विधिकरः ३८ सुयशाः ३९ यशस्कीर्तिः ४० यशस्करः ४१ कीर्तिकरः ४२ सूरणः ४३ व्रह्मसेनः ४४ विक्रान्तः ४५ नरोत्तमः ४६ पुरुषोत्तमः ४७ चन्द्रसेनः ४८ महासेनः ४९ नभःसेनः ५० भानुः ५१ सुकान्तः ५२ पुष्पयुतः ५३ श्रीधरः ५४ दुर्धर्षः ५५ सुसुमारः ५६ दुर्जयः ५७ अजेयमानः ५८ सुधर्मा ५९ धर्मसेनः ६० आनन्दनः ६१ आनन्दः ६२ नन्दः ६३ अपराजितः ६४ विश्वसेनः ६५ हरिषेणः ६६ जयः ६७ विजयः ६८ विजयन्तः ६९ प्रभाकरः ७० अरिदमनः ७१ मानः ७२ महावाहुः ७३ दीर्घवाहु. ७४ मेघः ७५ सुघोषः ७६ विश्वः ७७ वराहः ७८ सुसेनः ७९ सेनापतिः ८० कपिलः ८१ शैल-विचारी ८२ अरिंजय ८३ कुंजरवलः ८४ जयदेव ८५ नागदत्तः ८६ काश्यपः ८७ वलः ८८ धीरः ८९ शुभमतिः ९० सुमतिः ९१ पद्मनाभः ९२ सिंहः ९३ सुजातिः ९४ संजयः ९५ सुनाभः ९६ नरदेवः ९७ चित्ताहरः ९८ सुरवरः ९९ दृढरथः १०० प्रभंजनः–इति।'–

–आदिपुराण, भागवत एवं अभिधानराजेन्द्र कोषके आधार पर

दीक्षा ली। ये श्रमण परम्परा तब से ही अवाधितरूप में प्रच-लित रही और आज भी विद्यमान है। विमलसूरि के शब्दों में-

'उसभजिणस्स भगवो पुत्तसयं चन्दसूरसरिसाणं।
समणत्त पडिवन्नं सए य देहे निरवयक्खं ॥'
—पउमचरियं, विमलसूरि ४।३७

—भगवान वृषभदेव के चन्द्रसूर्य सदृश शत पुत्रों ने श्रमणत्व को धारण किया। वे सभी देह में निरपेक्ष (अनासक्त) थे। भरत जैसे चक्रवर्ती ने अपने १४ रत्न और नव-निधियों जैसी लौकिक विभूतियों को त्यागकर श्रमण दिगम्बर मुनिपद को धारण किया। क्योंकि –

'न चेन्द्रस्य सुखं किंचिन्नसुखं चक्रवर्तिनः।
सुखमस्ति विरक्तस्य मुनेरेकान्तजीविनः ॥'
–भागवत महात्म्य ४।७५

राग-द्वेशातीत वीतराग होना, श्रमणधर्मी को ही सम्भव है क्योंकि वह ही पक्षपात रहित सत्य-वस्तुतत्त्व का यथार्थ-वर्णन कर सकते हैं– स्याद्वाद उनकी विशेषता है और स्याद्वाद वचन कभी झूंठा हो नहीं सकता।

'उप्पू सप्पने यक्कु। कर्पूरवु करिदक्कु।
सर्पनिगे वाल वेरडक्कु। श्रवणता तप्पाडिघंतु सर्वज्ञः॥'-
सर्वज्ञ (वैदिक कन्नडकवि) १०१३

–कदाचित् काल प्रभावसे (कालदोष से) लवण क्षारत्व रहित हो सकता है, कर्पूर का शुक्लत्व कृष्णत्व में परिणत हो सकता है, परन्तु श्रमणमुनियों का (स्याद्वाद) वचन झूंठ नहीं हो सकता।

श्रमरण-संस्कृति के प्रभाव से प्रभावित ऐसे अनेकों शब्द हैं जो आज लोक भाषा में घुलमिल गये हैं और दीर्घकाल पश्चात् आज उनकी निष्पन्नता का ठीक २ भान होने में नहीं आरहा। जैसे 'चेला-चेली'। श्रमरणमुनि अचेलक कहलाते हैं और 'चेला-चेली' शब्द सचेलक (सवस्त्र) अचेलक (निर्वस्त्र) से बने हैं।

'चेला-चेली'—

ये शब्द शिष्य और शिष्या के अर्थ में व्यवहृत होते हैं और इनका शाब्दिक अभिप्राय वस्त्रधारी और वस्त्रधारिणी है। संभवतः ये शब्द दिगम्बर-आम्नाय के हैं। क्योंकि दिगम्बरत्व से पूर्वतन-अवस्था सचेलक है। जो चेलधारी है वह चेला है और जबतक चेला है, गुरु नहीं कहलाता। क्योंकि ['झायहि पंचवि गुरुवे'—भावपाहुड़ १२४] के अनुसार पंचपरमेष्ठी ही गुरु हैं। लोकश्रुति में इसी हेतु से चेला शिष्यार्थक है। 'परमात्म प्रकाश' में मुनियों को सावधान करते हुए इस शिष्यपरिकर से बचने का उपदेश किया गया है—

'चेल्ला चेल्ली पुत्थियहिं तूसइ मूढ णिमंतु।
एयहिं लज्जइ णाणियउ बंधह हेउ मुणंतु ॥
चट्टइ पट्टइ कुंडियहिं चेल्लाचेल्लियराहिं।
मोहजणेविणु मुणिवरहिं उप्पहिं पाडियतेहिं ॥'—

—परमात्म प्रकाश ८८,८९

इसी प्रकार के अनेकों अन्य शब्द भी हैं जो श्रमण संस्कृति और श्रमण-परम्परा की प्राचीनता और मौलिकता को सिद्ध करते हैं। अचेलक, दिगम्बर, श्रमण, महाव्रती, नग्न और क्षपणक आदि शब्दों का श्रमण शब्द से मौलिक संबंध है। महा-

भारत पौष्यपर्व तृ. अध्याय. १२६ में '........नग्नं क्षपणकमा-गच्छन्तं ...... ' इत्यादि इसी सन्दर्भ में आया है। मलिकमुहम्मद जायसी ने पद्मावत के सिंहलदीप वर्णन में लिखा है-

'...........................कोई दिगम्बर आछहिं नांगे।
सेवरा खेवरा वानपरस्ती ... ... ।।'

इसमें दिगम्बर और खेवरा शब्द हैं। 'खेवरा' क्षपणक भाव में दिगम्बर मुनि कर्मों का क्षपण (क्षय) करने से क्षपणक कहे गये हैं। 'क्षपण' शब्द जैनियों का पारिभाषिक शब्द है और गुणस्थानों से संबंधित है।

स्व. डॉ० कामता प्रसाद ने जैन धम के अनुसन्धान कार्य में अनुकरणीय योग दिया है, उन्होंने विदेशों में भी प्रचार का प्रयत्न किया। प्रस्तुत पुस्तक 'दिगम्बरत्व और दि० जैन मुनि' डॉ० महोदय की मौलिक कृति है। इसका प्रकाशन परम उपयोगी है।

आज साधारण जनता इस विषय की जिज्ञासा रखती है। जब मेरा विहार दिल्ली, मेरठ, बडौदा,हरिद्वार और ऋषिकेश की ओर हुआ, अनेकों लोगों ने मुझसे दिगम्बरत्व और दिगम्बरमुनि विषयक जानकारी चाही। धर्मानुरागी १०५ क्षु० शीतलसागर जी इस प्रकाशन से उक्त कार्य की पूर्ति करा रहे हैं, इसके लिये उन्हें जितना आशीर्वाद दिया जाय थोड़ा है, वे अभीक्षणज्ञानोपयोगी त्यागी हैं। भद्र परिणामी पं०भँवरलालजी न्यायतीर्थ की देखरेख में प्रकाशित होने से पुस्तक की उपयोगिता और भी बढ जातीहै। वे अत्यन्त जागरूप और योग्य व्यक्ति हैं। हमारी भावना है कि पुस्तक का लोक में अधिक से अधिक

प्रचार हो प्रकाशन के योजकों का कार्य सराहनीय है।

'यत्र स्याद्वादसिद्धान्तो, यत्र वीरो दिगम्बरः।
तत्र श्रीर्विजयो भाति ध्रुवानन्दो ध्रुवादरः ॥'

सहारनपुर
कार्तिक शुक्ला १.
वी० नि० सं० २४९६

—विद्यानन्द मुनि

मेरे दो शब्द

पिछली गरमी के दिन थे। "जैनमित्र" पढ़ते हुये मैंनें देखा कि श्री भा० दि० जैन शास्त्रार्थ संघ अम्वाला, दिगम्वर जैन मुनियों के सम्वन्ध में ऐतिहासिक वार्ता एकत्र करने के लिये प्रयत्नशील है। यह विज्ञप्ति पढ़कर मुझे बड़ा हर्ष हुआ। इतिहास से मुझे प्रेम है। मैं तव इस विज्ञप्ति के फल को देखने की उत्कण्ठा में था कि एक रोज मुझे संघ के महामंत्री प्रिय राजेन्द्रकुमारजी शास्त्री का पत्र मिला। मेरी उत्कण्ठा चिन्ता में पलट गई। पत्र में शीघ्रातिशीघ्र दिगम्वर मुनियों के इतिहास विषय की एक वृहत् पुस्तक लिख देने को प्रेरणा थी। उस प्रेरणा को यों ही टाल देने की हिम्मत भला कैसे होती? उस पर वह प्रेरणा वस्तुतः समय की आवश्यकता और धर्म की पुकार थी। मुनिधर्म मोक्ष का द्वार है—दिगंवरत्व उस धर्म की कुञ्जी है। ना समझ लोग उस कुञ्जी को

छीन लेने के लिये वार करने को उतारू हों, तो भला एक धर्मवत्सल कैसे चुप रहें ? बस, सामर्थ्य और शक्ति का ध्यान न करके बड़े संकोच के साथ मैंने संघ का उक्त प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। उस स्वीकृति का ही फल प्रस्तुत पुस्तक है !

पुस्तक क्या है ? कैसी है ? इन प्रश्नों का उत्तर देना मेरा काम नहीं है। मैंने तो मात्र धर्मभाव से प्रेरित होकर 'सत्य' के प्रचार के लिये उसको लिख दिया है। हिन्दू—मुसलमान—ईसाई—यहूदी—सबही प्रकार के लोग उसे पढ़ें और अपनी बुद्धि की तर्क (तराजू) पर उसे तौलें और फिर देखें, दिगम्बरत्व मनुष्य समाज की भलाई के लिये कितनी जरूरी और उपयोगी चीज है। इस रीति की परख ही उन्हें इस पुस्तक की उपयोगिता बता देगी। हां, यह लिख देना मैं अनुचित नहीं समझता कि अखिल भारतीय दि० मुनि रक्षक कमेटी ने इस पुस्तक को अपने काम में सहायक पाया है। 'असेम्बली' में दिगम्बर मुनिगण के निर्बाध विहार विषयक 'बिल' को उपस्थित कराने के भाव से इस पुस्तक से अंग्रेजी में 'नोट्स' तैयार कराकर माननीय असेम्बली मेम्बरों में वितरण किये गये थे। विश्वास है, उपयुक्त वातावरण में कमेटी का उक्त प्रयत्न सफल हो जायगा और उस दशामें मैं अपने श्रम को सफल हुआ समझूंगा।

अन्त में मैं अपने उन मित्रों का आभार स्वीकार करता हूं जिन्होंने मुझे इस पुस्तक को लिखने में किसी न किसी तरह उत्साहित किया है। संघ ने काफी साहित्य मेरे सामने उपस्थित कर दिया और पुस्तक को शीघ्र ही प्रकाशित होने दिया, इसके लिये मैं उपकृत हूं। यह सब कुछ भाई राजेन्द्रकुमारजी

के उत्साह का परिणाम है। श्रीइम्पीरियल लायब्रेरी कलकत्ता, आदि से मुझे जरूरी पुस्तकें पढ़ने को मिली हैं; इसलिये यहां उनको भी मैं भुला नहीं सकता हूं। "चैतन्य" प्रेस के मैनेजर भाई शान्तिचन्द्र ने आशा से अधिक शुद्ध और सुन्दर रूप में पुस्तक को छापा है। अतः उनका भी उल्लेख कर देना मैं आवश्यक समझता हूं। उन सबका मैं आभारी हूं।

आशा है, पुस्तक अपने उद्देश्य को सिद्ध हुआ प्रगट करने में सफल होगी। इतिशम्

अलीगंज, (एटा)
२५-२-१९३२

विनीत
कामताप्रसाद जैन

संकेताक्षर-सूची ।

नोट—प्रस्तुत पुस्तक को लिखने में जिन ग्रन्थों से सहायता ली गई है, उनका उल्लेख निम्नलिखित संकेताक्षरों में यथास्थान कर दिया गया है। पाठकगण संकेताक्षर का भाव इस पर से जान लें। उक्त प्रकार सहायता लेने के लिये इन ग्रन्थों के लेखकों के हम आभारी हैं:—

हस्तलिखित ग्रन्थ :—

१. **आठकर्मनी १४८ प्रकृतिनो विचार**— मुनि वैराग्यसागरकृत (श्री दि० जैन मंदिर अलीगंज)

२. **उत्तरपुराण भाषा**—कवि खुसालचन्द कृत (श्री दि० जैन मंदिर भंडार अलीगंज)

३. **पंचकल्याणक पूजा पाठ**—मुनि श्रीभूषणकृत(श्री दि० जैन मंदिर अलीगंज)

४. **भक्तामर चरित**—कवि विनोदीलालकृत (श्री दि० जैन मंदिर अलीगंज)

५. **भावत्रिभंगी**—जैन मंदिर अलीगंज (एटा)

६. **मैनपुरी जैन गुटका**—बड़ा पंचायती मंदिर, मैनपुरी में विराजमान।

७. **यशोधर चरित**—कवि पद्मनाभ कायस्थ विरचित (श्री दि० जैन मंदिर मैनपुरी)

८. **श्री जिनसहस्रनाम**—मुनि धमचन्द्र कृत (श्री दि० जैन मंदिर अलीगंज)

९. **श्री पद्मपुराण भाषा**—कवि खुसालचन्द कृत (श्री दि० जैनमंदिर अलीगंज)

१०. **श्री यशोधर चरित**—श्री सोमकीर्ति कृत (श्री दि० जैन-मंदिर अलीगंज)

संस्कृत-हिन्दी-गुजराती आदि मुद्रित ग्रंथ :—

१. **अष्ट०**—अष्टपाहुड़; श्री कुन्दकुन्दाचार्य कृत (श्री अनन्तकीर्ति ग्रन्थमाला बम्बई)

२. **आईन-इ-अकबरी**—(फ़ारसी) नवलकिशोर प्रेस लखनऊ (१८९३)

३. **आचा०**—आचाराङ्ग-सूत्र; श्वेताम्बर आगम-ग्रन्थ, श्वे० मुनि अमोलक ऋषिके हिंदी अनुवाद सहित (हैदराबाद दक्षिण संस्करण)

४. **आरोग्य०**—आरोग्यदिग्दर्शन, ले० महात्मा गाँधी (बम्बई, १९७३)

५. **ईशाद्य०**—ईशाद्यष्टोत्तरशतोपनिषद ed. W. L. Shastri-Paniskar (3rd. ed. Nirnaya-Sagar Press 1925)

६. **जैध०**—जैनधर्म, प्रो० ग्लाजेनाप्पके जर्मन ग्रंथ का गुजराती अनुवाद (भावनगर १९८७)

७. **जैप्र०**—जैनधर्म प्रकाश; ले० ब्र० शीतलप्रसाद जी (बिजनौर १९२७)

८. **जैप्रयलेसं०**—जैन प्रतिमा और यंत्र लेखसंग्रह; ले० बाबू छोटेलाल (कलकत्ता १९२३)

९. **जैम०**—जैनधर्म का महत्व; सं० श्री सूरजमल जी (बम्बई १९११)

१०. **जैशिसं०**—जैनशिलालेख संग्रह; ले० प्रो० हीरा लाल (मा० ग्रं० बम्बई)

११. **ठाणा०**—ठाणाङ्ग-सूत्र; श्वेताम्बर आगम ग्रंथ; श्वे० मुनि अमोलक ऋषिकृत हिन्दी अनुवाद सहित (हैदराबाद संस्करण)

१२. **द्रसं०**—द्रव्यसंग्रह; श्री नेमिचन्द्राचार्य कृत (S. B. J. Arrah 1917)

१३. **दाठा०**—दाठावंसो (बौद्धग्रन्थ); ed Dr. B. C. Law (Lahore 1925)

१४. **दाम०**—दानवीर माणिकचन्द्र, ब्र० शीतलप्रसाद (सूरत)

१५. **दिजैडा०**—दिगम्बर जैन डायरेक्टरी (श्री खेमराज कृष्णादास बम्बई, १९१४)

१६. **दिमु०**—दिगम्बर मुद्रा की सर्वमान्यता; के० भुजवलि शास्त्री (आरा, २४५६)

१७. **दिमुनि०**—दिगम्बर मुनि; ले० बा० कामताप्रसाद जैन (दिल्ली १९३१ ई०)

१८. दीघ०—दीघनिकाय (बौद्ध ग्रंथ), (Pali Texts Society Series)

१९. देजै०—देवगढ़ के जैनमंदिर; ले० श्री विश्वम्भर-दास गार्गीय ।

२०. प्राजैलेसं०—प्राचीन जैन लेखसंग्रह, ले० बा० कामताप्रसाद जैन (वर्धा १९२६)

२१. पंत०—पञ्चतन्त्र (इण्डियन प्रेस लि० प्रयाग)

२२. फाह्यान— फाह्यान का भारत भ्रमण (इण्डिय प्रेस लि० प्रयाग)

२३. बवि०—बनारसी विलास; कविवर बनारसीदास कृत (बम्बई २४३२ वी०)

२४. बंप्राजैस्मा०—बम्बई प्रान्त के जैनस्मारक; ब्र०-शीतलप्रसाद कृत (सूरत, १९२५)

२५. बंबिओजैस्मा०—बंगाल बिहार ओड़ीसाके जैन-स्मारक; ब्र० शीतलप्रसाद जी कृत ।

२६. भद्र०—भद्रबाहुचरित, श्री उदयलालजी (बनारस, २४३७)

२७. भपा०—भगवान पार्श्वनाथ; ले० बा० कामता-प्रसाद जैन (सूरत, २४५०)

२८. भम०—भगवान महावीर, ले० बा० कामता-प्रसाद जैन (सूरत २४५५)

२९. भमबु०—भगवान महावीर और म० बुद्ध, ले० बा० कामताप्रसाद जैन (सूरत, २४५३)

३०. भमी०—भट्टारकमीमांसा (गुजराती); (सूरत, २४३८)

३१. भाइ०—भारतवर्षका इतिहास; प्रो० ईश्वरी प्रसाद कृत (इण्डियन प्रेस)

३२. भाप्रारा०—भारतके प्राचीन राजवंश; सा० श्री विश्वेश्वरनाथ रेउकृत भाग १—३ (बम्बई १९२० व १९२५);।

३३. मजैइ०—मराठी जैनलोंकाचें इतिहास; श्री अनंततनय कृत (वेलगांव १९१८ ई०)

३४. मज्झिम०—मज्झिमनिकाय (बौद्ध ग्रंथ) (Pali Texts Society Series)

३५. मप्राजैस्मा०—मध्यप्रांतीय जैनस्मारक; ब्र० शीतलप्रसाद जी कृत (सूरत)

३६. मजैस्मा०—मद्रास, मैसूर प्रान्तीय जैनस्मारक; ब्र० शीतलप्रसाद जी कृत (सूरत, २४५४)

३७. मूला०—मुलाचार; श्री वट्टकेर स्वामी कृत

३८. रश्रा०—रत्नकरण्डक श्रावकाचार; सं० श्री युगलकिशोर मुख्तार (मा० ग्रं० बम्बई, १९८२)

३९. राइ०—राजपूताने का इतिहास; रा०ब०गौरीशङ्कर हीराचन्द ओझा (अजमेर १९८२)

४०, लाटी०—लाटीसंहिता; श्री पं० दरबारीलाल द्वारा संपादित (मा० ग्रं० बम्बई १९८४)

४१. विर०—विद्वद्रत्नमाला; श्री नाथूराम प्रेमीकृत (बम्बई १९१२ ई०)

४२. विको०—विश्वकोष; सं० श्री नगेन्द्रनाथ वसु (कलकत्ता)

४३. वृजैश०—वृहत् जैनशब्दार्णव भा० १; ले० श्री बा० बिहारीलाल जी 'चैतन्य' (बाराबङ्की १९२५ ई०)

४४. वेजै०—वेद पुराणादि ग्रंथों में जैनधर्म का अस्तित्व; श्री मक्खनलाल कृत (दिल्ली १९३०)

४५. सजै०—सनातनजैनधर्म; श्री चम्पतराय कृत

४६. सागार०—सागारधर्मामृत; सं० श्रीलालाराम जी (सूरत २४४२)

४७. संप्राजैस्मा०—संयुक्त प्रान्तीय जैनस्मारक; श्री ब्र० शीतलप्रसाद जी कृत (प्रयाग १९२३)

४८. सूस०—सूरीश्वर और सम्राट; ले० श्रीकृष्णलाल (आगरा १९८०)

४९. श्रुता०—श्रुतावतार कथा; श्री इन्द्रनन्दि कृत (बम्बई २४३४ वीर सं०)

५०. हुभा०—हुयेनसांग का भारतभ्रमण, श्री ठाकुरप्रसाद शर्मा (इण्डियन प्रेस प्रयाग १९२९ ई०)

पत्र-पत्रिकायें :—

५०. अ. अनेकान्त—मासिक पत्र; संपादक श्री जुगलकिशोर मुख्तार (दिल्ली)

५१. जैमि०- जैनमित्र, बम्बई प्रा० दि० जैन सभा का मुखपत्र (सूरत)

५२. जैसासं०—जैन साहित्य संशोधक, त्रैमासिक पत्र; सं० श्री जिनविजय (पूना)

५३. जैसिभा०—जैनसिद्धान्तभास्कर; सं० श्री पद्मराज जैन

५४. जैहि०—जैन हितैषी; सं० श्री नाथूराम—श्री जुगलकिशोर जी (बम्बई)

५५. दिजै०—दिगम्बर जैन; सं० श्रीमूलचन्द किसनदास कापड़िया (सूरत)

५६. पुरातत्व—गुजराती त्रैमासिक पत्र; सं० श्री जिनविजयजी (अहमदावाद)

५७. वीर—भा० दि० जैन परिषद का मुखपत्र; सं० बा० कामताप्रसाद जैन व पं० शोभाचन्द्र भारिल्ल (बिजनौर)

अंग्रेजी भाषा के ग्रन्थ :—

58 ADJB.='A Dictionary of Jain Bibliography' by V. S. Tank. (Arrah 1916)

59. AGT.='A Guide to Taxilla' by Sir John Marshall (Calcutta, 1918)

60. AI.='Ancient India' by J. W. Mc. Crindle (1877 & 1901)

61. AISJ.='An Indian Sect of the Jainas' by Prof. Buhler (London, 1903)

62. AIT.='Ancient Indian Tribes' by Dr. B. C. Law (Lahore, 1926)

63. AR.='Asiatic Researches', ed. Sir William Jones., Vol. III (1799)&Vol. IX (1809)

64. ASM.='A Study of the Mahavastu' by Dr. B. C. Law (Calcutta 1930)

65. Bernier="Travels in the Mogul Empire' by Dr. Francis Bernier (Oxford, 1914)

66. BS.='Buddhistic Studies' by Dr. B. C. Law (Calcutta 1931)

67. CHI.='Cambridge History of India', Vol. I ed. Prof. E. J. Rapson— 1922

68. DJ.='Der Jainismus' (German) by Prof. Dr. Helmuth Von Glassenapp· Ph.D. Berlin 1925)

69. EB.='Encyclopaedea Britannica' 11th. ed. Vol. XV)

70. EHI.='Early History of India' 4th. ed.) by Sir Vincient Smith (Oxford. 1224)

71. Elliot='History of India as told by its Historians' by Sir H. M. Elliot & Prof. John Dowson, Vol. 1 (1867) & III (London, 1871)

72. HARI.='History of Aryan Rule in India,' by E. B. Havell.

73. HDW.='Hindu Dramatic Works' by H. H. Wilson (Calcutta, 1901)

74. HG.='Historical Gleanings' by Dr.B.C. Law (Calcutta 1922)

75. HKL='History of Kanarese Literature' by E. P. Ria (Calcutta 1921)

76. IA.=Indian Antiquary (Bombay)

77. IHQ.=Indian Historical Quarterly, ed. Dr. N. N. Law (Calcutta)

78. JBORS.=Journal of Bihar & Orissa Research Society, ed. K. P. Jayaswal M. A. (Patna)

79. JG.=Jaina Gazette, ed. Mr. C. S. Mallinath (Madras)

80. JOAM.='Jaina & Other Antiquities of Mathura' by Sir V. Smith

81. JRAS.=Journal of the Royal Asiatic Society (London)

82. JS.='Jaina Sutras' ed. Prof. H. Jacobi (S.B.E., XLV)

83. KK.='Key of Knowledge' by Mr. C. R. Jain (3rd. ed. 1928)

84. LWB='Life & Work of Buddhaghosha' by Dr. B. C. Law (Calcutta)

85. NJ.='Nudity of the Jaina Saints' by Mr. C. R. Jain (Delhi 1931)

86. OII.='Original Inhabitants of India' by G. Oppert (Madras 1893)

87. Oxford.='Oxford History of India' by Sir Vincent A. Smith (Oxford 1917)

88. PB.='Psalms of Brethren' ed. Mrs. Rhys Davids (London, 1913)

89. PS.='Panchastikaya-sara (S. B. J., Arrah)' ed. Prof. A. Chakraverty.

90. QJMS.='Quarterly Journal of the Mythic Society (Bangalore)'

91. QKM.='Questions of King Milinda' by T.W. Rhys Davids (S.B.E.,—Vol. XXXV)

92. Rishabh.='Rishabhadeo, the Founder of Jainism' by Mr. C. R. Jain (Allahabad 1929)

93. SAI.='Ancient India' by Prof. S. K. Aiyangar, M. A. (London 1911)

94. S.C.='Some Contributions of South Indian Culture', by Prof. S.K. Aiyangar (1923)

95. SPCIV.='Survival of the Prehistoric Civilisation of the Indus Valley.' by R.B. Ramprasad chanda B.A. (Calcutta 1929)

96. SSIJ.='Studies in South Indian Jainism' by Prof. M. S. Ramaswami Ayyangar M.A. & B. Seshagiri Rao M.A. (Madras 1922)

शुद्धाऽशुद्धि-सूचना

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्धि	शुद्धि
४	१	इस इस	इस
१०	११	स्वभाविक	स्वाभाविक
१०	२२	यथा जातरूप	यथाजात रूप
१४	१२	यथाज्ञात	यथाजात
२०	२१	(महाध्नावम्)	(महाध्वानम्)
२२	९	में में	में
२४	११	मिम्न	निम्न
२६	२०	पृष्ठ	पृष्ठ-४१५
३७	८	पड़ता है	है
३८	२	लिए	लिए एक
५६	२१	भा०	भा० १२
६२	७	मार्गमृत्सृज्य	मार्गमुत्सृज्य
६४	१२/१५	नग्गाभावे	नग्गभावे
६६	१५	की	को
६७	१८	शब्द का	का
७०	१६	को	की
७१			

"वालग्ग कोडिमत्तं परिगहगहणं ण होइ साहूणं ।
भुंजेइ पाणिपत्ते दिण्णाणं इक्क ठाणम्मि ।।१७।।"
उक्त दोनों पंक्ति पृष्ठ ७१ की ९वीं पंक्तिके बाद पढ़ना चाहिये ।

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्धि	शुद्धि
७४	१४	इसिहास	इतिहास
७५	२२	वतलाया	वतलाता
८२	१८	नि०.......	निर्ग्रन्थो
८३	५	मवाप्तान्	मवाप्तवान्
८९	१	नपाल	नैपाल
९२	२३	संपुत्त०	संयुत
१०५	२२	२, भा०	जैहि०, भा०
१०६	१०	चन्द्रावदातस	चन्द्रावदात्स
१०७	१०	ने	ने भी
११३	११	यूनिना	यूनानी
११५	१२/१३	'उन्नति को प्राप्त हुये थे, वहाँ सुङ्गवंश के राजत्वकाल में ब्राह्मण धर्म' यह पुनः छपने से व्यर्थ है।	
१२०	१२	को	की
१२१	१४	पतिठाययति	पतिठापयति
१२६	१४	३५०	३६०
१३०	४	शान्िकीर्ति	शान्तिकीर्ति
१३६	२१।२२।२३	हुआ०	हुभा०
१३७	१८ से २२	हुआ०	हुभा०
१३८	१३ से १६	हुआ०	हुभा०
१४१	१८	अदि	आदि
१४१	२१	पृ १ ३	पृ० १०३
१४४	२	९६६	९६६
१४६	२१	सिहसनाधीश	सिंहासनाधीश

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्धि	शुद्धि
१४८	११	सम्यग्यदृष्टि	सम्यग्दृष्टि
१४६	५	सन् १०८२	सन् १०८३
१४६	२०	॥१६१॥"	॥१६३॥"
१५१	१७	उपदेशन	उपदेशेन
१५२	४	सममं	समय
१५२	२३	जैप्रा०	जैप्र०
१५४	१६	१. वेजै० पृ० ४६	
१५७	११	कुघियो	कुधियो
१६५	१७	जै ।ग्रन्थ	जैनग्रन्थ
१६६	७	था ।	था । उनके पास
१६७	१२	क्षत्रिराजा	क्षत्रियराजा
१६८	३	कणूरगण	कणूवगण
१७६	६	राचमल्ल	रायमल्ल
१८२	२	एक	एक जैन
२०६	१८	वतनेसहामातरै	यतनेसहामातरै
२०८	१२	या	था
२१०	१६	भी	श्री
२१५	१	शिसमें	जिसमें
२१५	३	नयननंदि	नयनंदि
२१८	११	मूमिदान	भूमिदान
२२१	१४	लागातार	लगातार

पृ० १४८ पंक्ति १६ में, कर्णाटवादि' के आगे 'प्रथम वचन खण्डनसमर्थ, पूर्ववादि मत्तमातङ्गमृगेन्द्र, नौलवादि' इतना छपने से रह गया है।

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्धि	शुद्धि
२२२	१६	मु न	मुनि
२२४	८	मंदिरोंकेके	मंदिरों के
२२५	१७	भ्रमरी-	भ्रमरी-
२२६	६	धर्मचन्द्रजी	धर्मचन्द्रजी
२२६	८	विजयसागर जी	विनयसागरजी
२२७	३	भारत को	भारत की
२२८	१८	माघवेन्दु	माधवेन्दु
२२९	१०	अभी	सभी
२३०	१०	मुन्निसुतिर्प्प	मन्निसुतिर्प्प
२३२	२	न्नरपत	न्नरपते
२३५	६	की यी	की थी
२३६	१८	नामाभून्	नाभाभूद्
२३८	१७	कुरुम्वों	कुटुम्वों
२४०	११		इन
२४२	२	इसलिते	इसलिये
२४२	१५	वाल्होक	बाल्हीक
२४२	२०	भषा०	भपा०,
२४५	१३	को	के
२५२	११	मुस्मिलमों को	मुस्लिमों को
२५२	१४	पृ९०	पृ०
२५२	१६	भा० २५	भा० १५
२५२	१७	जैघ० पृ० ३८	जैध. पृ० ६८
२५९	१	अपने अपने	अपने
२५९	१७	॥६३॥	॥६२॥
२६०	७	सं० १६८०	सं० १६८०

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्धि	शुद्धि
२६६	४/५	रियासकके	रियासत के
२६८	१६	जन्स	जन्म
२७१	३	भग ानदासजी	भगवानदासजी
२७२	१२	में	में ये
२७५	१५	से जाने	से ले जाने
२७५	२१	जिजाको	जिला की
२८०	१५	करत	करते
२८२	१	नहीं, है	नहीं है,
२८३	१२	सकत	सकते
२८६	१३	साधओं	साधुओं
२९४	२०	१७५, ८९	१७५, १८९
२९६	१४	१६१, ८१	१६१, १८१
२९८	६	७५	१७१
२९८	७	२३	१२३
२९८	१०	२२४	१२४
२९८	२०	कावेरीप्पूमट्टिटनम्	कावेरीप्पूमपट्टिनम्
२९९	५	२१९	२१७
२९९	२०	२२३	९४
२९९	२१	२३	२२३
३००	१०	५४	२५४
३००	१३	गुणनन्द्रि	गुणनन्दि
३००	१४	७४	१७४
३०१	२	२८	१२८
३०१	८	१३६	१३८

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्धि	शुद्धि
३०२	३	२२०	३२०
३०२	७	जन	जिन
३०२	८	५६	५७
३०३	५	१७२	१६२
३०४	१८	धूर्जटि	ध्रुवसेन
३०६	२१	१६	१७
३०८	९	बप्पसूरि	वप्प्रसूरि
३११	२४	२४	२४२
३१४	२	२८१ १३९	२७१ १२९
३१४	६	वातावसन	वातवसन
३१५	५	२३२	२३३
३१५	१४	२६१	२६२
३१६	९	१८, २५३	१८७, २३३
३१६	११	३३२	१३२
३१६	१३	ज्ञिवव्रतलाल	शिवव्रतलाल
३१६	१६	१ ३	१०३
३१७	१	शद्रम्चेट्टी	शूद्रम्चेट्टी
३१७	१०	२३६	२३७
३१७	१९	शिवमृगवेश	शिवमृगेश
३१९	४	२४४	२४५
३१९	१८	१४९	१४०
३२०	४	१६२	१७२

सूचना—रेफ, विन्दु और मात्राओं (ं, ं, ा, ि, ी, ु, ू, े, ै, ो, ौ,) के टूट जाने की साधारण अशुद्धियां कहीं २ पुस्तक में हैं। जिन्हें पाठक स्वयं सुधार लेंगे।

शुद्धि-पत्र—

(अंग्रेजी भाषा के ग्रन्थ)

पृष्ठ सं०	पंक्ति सं०	अशुद्धि	शुद्धि
ज	१६	70 (Oxford. 1224	(Oxford. 1924
२५	२५	34	84
२६	२०	Indian	India to India
		(अंग्रेजी भाषा का शुद्धि-पत्र)	
१७	२४	(J. G. XIV 9)	(J. G. XIV 90)
३०	१०	I H O	I H Q
३०	२२	I H O	I H Q
३४	१७	entaugled	entangled
३५	४	d cline	decline
३५	६	nourishmet	nourishment
३५	६	Fanaties	Fonatics
३५	१०	Respcet	Respect
३५	११	extrordinary	extraordinary
५७	२२	I H O	I H Q
६३	२०	hi hest	highest
६६	५	Nigranth s	Nirgranthas
६६	६	B dies	Bodies
६६	६	pulli g	pullng
६०	११	Nir ranthas	Nirgranthas
६०	२३	Bnddha's	Buddha's
६०	३०	bought	brought
६६	७	engagi g	engaging
६६	१६	J takas	Jatakas
६६	२३	That	Thus
१०६	११	Bel ef	Belief

११२	१६	(igambara)	(Digambara)
११३	१२	I tro	Intro
११६	१८	khaivela	kharvela
११६	२०	Kanvar	Kanvas
११६	२३	C H E	C H I
११७	१७	W o	who
१२७	५	Religions	Religious
१३२	१६	(iganthas)	(Niganthas)
१३६	१७	The r	Their
१३६	१६	Cotting	Rotting
१६६	१५	vetpatas	Svetpatas
१८०	२०	SIJ	SSIJ
२०१	६	R. R. Ramprasad Chanda	R. B. Ramprasad Chanda
२२६	२४	PIchs	Pichi
२४६	१०	The	Thee
२५३	१८	Eliot III. 206	Elliot III. 206
२५४	१७	sand	said
२५५	१७	n ticed	noticed
२५५	१८	Commuuity	Community
२५६	२२	Ellict	Elliot
३६३	१७	T em	Them
२७४	३	wo ship	worship
२७७	३	Alla abad	Allahabad
२८५	३	clot es	clothes
२८५	७	Salvat on	Salvati on
२८५	८	Niraranthas	Nirgranthas

ॐ

नमः सिद्धेभ्यः ।

दिगम्बरत्व और दिगम्बर मुनि

[१]

दिगम्बरत्व !

(मनुष्य की आदर्श स्थिति)

"मनुष्य मात्र की आदर्श स्थिति दिगम्बर ही है। आदर्श मनुष्य सर्वथा निर्दोष है—विकारशून्य होता है।" —म० गांधी।

"प्रकृति की पुकार पर जो लोग ध्यान नहीं देते, उन्हें तरह तरह के रोग और दुःख घेर लेते हैं; परन्तु पवित्र प्राकृतिक जीवन बिताने वाले जंगल के प्राणी रोगमुक्त रहते हैं और मनुष्य के दुर्गुणों और पापाचारों से बचे रहते हैं।" —रिटर्न टु नेचर।

दिगम्बरत्व प्रकृति का रूप है। वह प्रकृति का दिया हुआ मनुष्य का वेष है। आदम और हव्वा इसी रूप में रहे थे। दिशायें ही उनके अम्बर थे—वस्त्रविन्यास उनका वही प्रकृति-दत्त नग्नत्व था। वह प्रकृति के अञ्चल में सुख की नींद सोते

और आनन्दरेलियां करते थे। इसलिये कहते हैं कि मनुष्य की आदर्श स्थिति दिगम्बर है। नग्न रहना ही उनके लिये श्रेष्ठ है। इसमें उसके लिये अशिष्टता और असभ्यता की कोई बात नहीं है; क्योंकि दिगम्बरत्व अथवा नग्नत्व स्वयं अशिष्ट अथवा असभ्य वस्तु नहीं है। वह तो मनुष्य का प्राकृत रूप है। ईसाई मतानुसार आदम और हव्वा नङ्गे रहते हुए कभी न लजाये और न वे विकार के चंगुल में फंसकर अपने सदाचार से हाथ धो बैठे। किन्तु जब उन्होंने बुराई-भलाई, पाप-पुण्य का वर्जित फल खालिया, वे अपनी प्राकृत दशा को खो बैठे—सरलता उनकी जाती रही। वे संसार के साधारण प्राणी हो गये! बच्चे को लीजिये, उसे कभी भी अपने नग्नत्व के कारण लज्जा का अनुभव नहीं होता और न उसके माता-पिता अथवा अन्य लोग ही उनकी नग्नता पर नाक भौं सिकोड़ते हैं। अशक्त रोगी की परिचर्या स्त्री धाय करती है—वह रोगी अपने कपड़ों की सारसंभाल स्वयं नहीं कर पाता; किन्तु स्त्री धाय रोगी की सब सेवा करते हुए जरा भी अशिष्टता अथवा लज्जा का अनुभव नहीं करती। यह कुछ उदाहरण हैं जो इस बात को स्पष्ट करते हैं कि नग्नत्व वस्तुतः कोई बुरी चीज नहीं है। प्रकृति भला कभी किसी जमाने में बुरी हुई भी है? तो फिर मनुष्य नङ्गेपन से क्यों भिझकता है? क्यों आज लोग नङ्गा रहना समाज मर्यादा के लिये अशिष्ट और घातक समझते हैं? इन प्रश्नों का एक सीधासा उत्तर है—"मनुष्य का नैतिक पतन

चरम सीमा को आज पहुंच चुका है—वह पाप में इतना सना हुआ है कि उसे मनुष्य की आदर्श-स्थिति दिगम्बरत्व पर घृणा आती है। अपनेपन को गँवाकर पाप के पर्दे में कपड़ों की आड़ लेना ही उसने श्रेष्ट समझा है!" किन्तु वह भूलता है, पर्दा पापकी जड़ है—वह गंदगी का ढेर है। बस, जो जरासी समझ विवेक—से काम लेना जानता है, वह गंदगी को अपना नहीं सकता और नहीं ही अपनी आदर्श स्थिति दिगम्बरत्व से चिढ़ सकता है!

वस्त्रों का परिधान मनुष्य के लिए लाभदायक नहीं है और न वह आवश्यक ही है। प्रकृति ने प्राणीमात्र के शरीर की गठन इस प्रकार की है कि यदि वह प्राकृत वेश में रहे तो उसका स्वास्थ्य निरोग और श्रेष्ठ हो तथा उसका सदाचार भी उत्कृष्ट रहे। जिन विद्वानों ने उन भील आदिकों को अध्ययन की दृष्टि से देखा है, जो नंगे रहते हैं, वे इसी परिणाम पर पहुँचे हैं कि उन प्राकृत वेष में रहने वाले 'जंगली' लोगों का स्वास्थ्य शहरों में बसने वाले सभ्यताभिमानी 'सज्जनों' से लाख दर्जा अच्छा होता है और आचार, विचार में भी वे शहरवालों से बढ़े चढ़े होते हैं। इस कारण वे एक वस्त्र परिधान की प्रधानता-युक्त सभ्यता को उच्चकोटि पर पहुँचते स्वीकार नहीं करते*। उनका यह कथन है भी ठीक, क्योंकि प्रकृति की होड़ कृत्रिमता

---

*"Having given some study to the subject,

नहीं कर सकती ! म० गांधी के निम्न शब्द भी इस इस विषय में दृष्टव्य हैं :—

"वास्तव में देखा जाय तो कुदरत ने चर्म के रूप में मनुष्य को योग्य पोशाक पहनाई है। नग्न शरीर कुरूप देख पड़ता है, ऐसा मानना हमारा भ्रम मात्र है। उत्तम उत्तम सौन्दर्यके चित्र तो नग्न दशा में ही देख पड़ते हैं। पोशाक से साधारण अङ्गों को ढककर हम मानो कुदरत के दोषों को दिखला रहे हैं। जैसे जैसे हमारे पास ज्यादा पैसे होते जाते हैं वैसे ही वैसे हम सजावट बढ़ाते जाते हैं। कोई किसी भाँति और कोई किसी भांति रूपवान बनना चाहते हैं और बनठन कर काच में मुंह देख प्रसन्न होते हैं कि 'वाह मैं कैसा खूबसूरत हूँ ?' बहुत दिनों के ऐसे ही अभ्यास से अगर हमारी दृष्टि खराब न हो गई होतो

I may say that Rev. J. F. Wilkinson's remarks upon the superior morality of the races that do not wear clothes is fully borne out by the testimony of the travellers...................It is true that wearing of clothes goes with a higher state of the arts and to that extent with civilisation; but it is on the other hand attended by a lower state of health and morality so that no clothed civilisation can expect to attain to a high rank."

—"Daily News, London" of 18th April 1913.

हम तुरन्त देख सकेंगे कि मनुष्य का उत्तम से उत्तम रूप उसकी नग्नावस्था में ही है और उसी में उसका आरोग्य है।"❀

इस प्रकार सौन्दर्य और स्वास्थ्य के लिए दिगम्बरत्व अथवा नग्नत्व एक मूल्यमयी वस्तु है; किन्तु उसका वास्तविक मूल्य तो मानव समाज में सदाचार की सृष्टि करने में है। नग्नता और सदाचार का अविनाभावी सम्बन्ध है। सदाचार के बिना नग्नता कौड़ी मोलकी नहीं है। नंगा मन और नंगा तनही मनुष्य की आदर्श स्थिति है। इसके विपरीत गन्दा मन और नंगा तन तो निरी पशुता है। उसे कौन बुद्धिमान स्वीकार करेगा ?

लोगों का खयाल है कि कपड़े-लत्ते पहनने से मनुष्य शिष्ट और सदाचारी रहता है। किन्तु बात वास्तव में इसके बर-अक्स है। कपड़े लत्ते के सहारे तो मनुष्य अपने पाप और विकार को छुपा लेता है! दुर्गुणों और दुराचार का आगार बना रह कर भी वह कपड़े की ओट में पाखण्डरूप बना सकता है, किन्तु दिगम्बर वेष में यह असम्भव है। श्रीशुक्राचार्यजी के कथानक से यह बिल्कुल स्पष्ट है कि—**शुक्राचार्य युवा थे, पर दिगम्बर वेष में रहते थे। एक रोज वह वहां से जा निकले जहां तालाब में कई देव कन्यायें नङ्गी होकर जल क्रीड़ा कर रही थीं। उनके नङ्गे तन ने देव रमणियों में कुछ भी क्षोभ उत्पन्न न किया। वे जैसी की**

❀ आरोग्य० पृ० ५७।

तैसी नहाती रहीं और शुक्राचार्य अपने निकले चले गये। इस घटना के थोड़ी देर बाद शुक्राचार्य के पिता वहां आ निकले। उनको देखते ही देवकन्यायें नहाना-धोना भूल गईं। झटपट वे जलके बाहर निकलीं और अपने वस्त्र उन्होंने पहन लिये। एक नङ्गे युवा को देख कर तो उन्हें ग्लानि और लज्जा न आई किन्तु एक वृद्ध शिष्ट-से-दिखते 'सज्जन' को देख कर वे लजा गईं। भला इसका क्या कारण? यही न कि नंगा युवा अपने मन में भी नंगा था—उसे विकार ने नहीं आ घेरा था। इसके विपरीत उसका वृद्ध और शिष्ट पिता विकार से रहित न था। वह अपने शिष्ट वेष (?) में इस विकार को छिपाये रखने में सफल था; किन्तु दिगम्बर युवा के लिए वैसा करना असंभव था। इसी कारण वह निर्विकारी और सदाचारी था! अतः कहना होगा कि सदाचार की मात्रा नंगे रहने में अधिक है। नंगेपन-दिगम्बरत्व का वह भूषण है। विकारभाव को जीते बिना ही कोई नंगा रहकर प्रशंसा नहीं पा सकता। विकारी होना दिगम्बरत्व के लिए कलङ्क है। न वह सुखी हो सकता है और न उसे विवेक-नेत्र मिल सकता है। इसीलिये भगवद् कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं—

> णग्गो पावइ दुक्खं णग्गो संसार सागरे भमई।
> णग्गो न लहइ बोहिं, जिण भावणव्जिओ सुइरं !! *

---

* भाव पाहुड़ ६८ गाथा—अष्ट० पृ० २०९-२१०

भावार्थ—'नंगा दुःख पाता है, वह संसार सागर में भ्रमण करता है, उसे बोधि विज्ञानदृष्टि प्राप्त नहीं होती, क्योंकि नंगा होते हुए भी वह जिनभावना से दूर है! इसका मतलब यही है कि जिनभावना से युक्त नग्नता ही पूज्य है—उपयोगी है। और जिन भावना से मतलब रागद्वेषादि विकार भावों को जीत लेना है। इस प्रकार नंगा रहना उसी के लिए उपादेय है जो रागद्वेषादि विकार भावों को जीतने में लग गया है—प्रकृति का होकर प्राकृत वेष में रह रहा है। संसार के पाप-पुण्य, बुराई-भलाई का जिसे भान तक नहीं है, वही दिगम्बरत्व धारण करनेका अधिकारी है। और चूँकि सर्वसाधारण गृहस्थों के लिये इस परमोच्च स्थिति को प्राप्त कर लेना सुगम नहीं है, इसलिये भारतीय ऋषियों ने इसका विधान गृहत्यागी अरण्यवासी साधुओं के लिये किया है। दिगम्बर मुनि ही दिगम्बरत्व को धारण करने के अधिकारी हैं; यद्यपि यह बात जरूर है कि दिगम्बरत्व मनुष्य की आदर्श स्थिति होने के कारण मानव-समाज के पथ-प्रदर्शक श्री भगवान ऋषभदेव ने गृहस्थों के लिये भी महीने के पर्व दिनों में नंगे रहने की आवश्यकता का निर्देश किया था† और भारतीय गृहस्थ उनके इस उपदेश का पालन एक बड़े जमाने तक करते थे!

इस प्रकार उक्त वक्तव्य से यह स्पष्ट है कि दिगम्बरत्व

---

†सागार० अ० ७ श्लोक ७ व भमवु० पृ० २०५-२०७।

मनुष्य की आदर्श स्थिति है—आरोग्य और सदाचार का वह पोषक ही नहीं जनक है। किन्तु आज का संसार इतना पाप-ताप से झुलस गया है कि उस पर एक दम दिगम्बर-वारि डाला नहीं जा सकता ! जिन्हें विज्ञान-दृष्टि नसीब हो जाती है, वही अभ्यास करके एक दिन निर्विकारी दिगम्बर मुनि के वेष में विचरते हुए दिखाई पड़ते हैं। उनको देखकर लोगों के मस्तक स्वयं झुक जाते हैं। वे प्रज्ञा-पुञ्ज और तपोधन लोककल्याण में निरत रहते हैं। स्त्री-पुरुष, बालक-वृद्ध, ऊंच-नीच, पशु-पक्षी सब ही प्राणी उनके दिव्यरूप में सुख-शांति का अनुभव करते हैं। भला-प्रकृति प्यारी क्यों न हो ? दिगम्बरत्व साधु प्रकृति के अनुरूप है। उनका किसी से द्वेष नहीं—वे तो सबके हैं और सब उनके हैं—वे सर्वप्रिय और सदाचार की मूर्ति होते हैं। यदि कोई दिगम्बर होकर भी इस प्रकार जिनभावना से युक्त नहीं है तो जैनाचार्य कहते हैं कि उनका नग्नवेष धारण करना निरर्थक है—परमोद्देश्य से वह भटका हुआ है—इस लोक और परलोक, दोनों ही उसके नष्ट हैं। † बस, दिगम्बरत्व वहीं शोभनीय है जहां परमोद्देश्य दृष्टि से ओझल नहीं किया गया है ! तब ही तो वह मनुष्य की आदर्श स्थिति है।

---

† "निरट्ठिया नग्गरूई उ तस्स, जे उत्तमट्ठं विवज्जासमेइ।
इमे विसे नत्थि परे विलोए, दुहओ विसे झिज्जइ तत्थ लोए ।४६।"
उत्तराध्ययन सूत्र व्या० २०

"In vain he adopts nakednees, who errs

[२]

धर्म और दिगम्बरत्व !

—✻—

"णिच्चेलपाणिपत्तं उवइट्ठं परमजिणवरिंदेहिं ।
एक्को वि मोक्खमग्गो सेसा य अमग्गया सव्वे ॥१०॥

अर्थात्—अचेलक—नग्नरूप और हाथों को भोजनपात्र बनाने का उपदेश जिनेन्द्र ने दिया है। यही एक मोक्ष-धर्म-मार्ग है। इसके अतिरिक्त शेष सब अमार्ग है।

'धम्मो वत्थु सहावो'—धर्म वस्तु का स्वभाव है और दिगम्बरत्व मनुष्य का निजरूप है; उसका प्रकृत स्वभाव है। इस दृष्टि से मनुष्य के लिये दिगम्बरत्व परमोपादेय धर्म है। धर्म और दिगम्बरत्व में यहाँ कुछ भेद ही नहीं रहता! सच-मुच सदाचार के आधार पर टिका हुआ दिगम्बरत्व धर्म के सिवा और कुछ हो भी क्या सकता है?

जीवात्मा अपने धर्म को गंवाये हुये है। लौकिक दृष्टि से देखिये, चाहे आध्यात्मिक से, जीवात्मा भवभ्रमण के चक्कर में पड़ कर अपने निज स्वभाव से हाथ धोये बैठा है। लोक में वह नंगा आया है फिर भी समाज-मर्यादा के कृत्रिम भय के

---

about matters of paramount interest, neither this world nor the next will be his. He is a loser in both respects in the world." —Js. II P. 106

कारण वह अपने निजरूप—नग्नत्व—को खुशी २ छोड़ बैठता है। इसी तरह जीवात्मा स्वभाव में सच्चिदानन्द रूप होते हुये भी संसार की माया-ममता में पड़ कर उस स्वानुभवानन्द से वञ्चित है। इसका मुख्य कारण जीवात्मा की रागद्वेष जनित परिणति है। रागद्वेषमई भावों से प्रेरित होकर वह अपने मन, वचन और काय की क्रिया तद्वत् करता है। इसका परिणाम यह होता है कि उस जीवात्मा में लोक में भरी हुई पौद्गलिक कर्म-वर्गणायें आकर चिपट जाती हैं और उनका आवरण जीवात्मा के ज्ञान-दर्शन आदि गुणों को प्रकट नहीं होने देता। जितने अंशों में ये आवरण कम या ज्यादा होते हैं उतने ही अंशों में आत्मा के स्वभाविक गुणों का कम या ज्यादा प्रकाश प्रकट होता है। यदि जीवात्मा अपने निज-स्वभाव को पाना चाहता है तो उसे इन सब ही कर्म सम्बन्धी आवरणों को नष्ट कर देना होगा; जिनका नष्ट कर देना संभव है!

इस प्रकार जीवात्मा के धर्म—स्वभाव—के घातक उसके पौद्गलिक सम्बन्ध हैं। जीवात्मा को आत्म-स्वातंत्र्य प्राप्त करने के लिये इस पर-सम्बन्ध को बिल्कुल छोड़ देना होगा। पार्थिव संसर्ग से उसे अछूत हो जाना होगा। लोक और आत्मा दोनों ही क्षेत्रों में वह एक मात्र अपनी उद्देश्य-प्राप्ति के लिये सतत उद्योगी रहेगा। बाहरी और भीतरी सब ही प्रपंचों से उसका कोई सरोकार न होगा। परिग्रह नाम मात्र को वह न रख सकेगा। यथा जातरूप में रह कर वह अपने विभावमई

रागादि कषाय शत्रुओं को नष्ट करने पर तुल पड़ेगा। ज्ञान और ध्यान शस्त्र लेकर वह कर्म-सम्बन्धों को बिल्कुल नष्ट कर देगा। और तब वह अपने स्वरूप को पा लेगा! किन्तु यदि वह सत्य मार्ग से जरा भी विचलित हुआ और बाल बराबर परिग्रह के मोह में जा पड़ा तो उसका कहीं ठिकाना नहीं। इसीलिये कहा गया है कि—

बालग्गकोडिमत्तं परिग्गहगहणं ण होइ साहूणं।
भुंजेइ पाणिपत्ते दिण्णण्णं इक्कठाणम्मि ॥१७॥

भावार्थः—बाल के अग्रभाग—नोक के बराबर भी परिग्रह का ग्रहण साधु के नहीं होता है। वह आहार के लिये भी कोई बरतन नहीं रखता—हाथ ही उसके भोजनपात्र हैं और भोजन भी वह दूसरे का दिया हुआ एक स्थान पर और एक दफे ही ऐसा ग्रहण करता है जो प्रासुक है—स्वयं उसके लिये न बनाया गया हो!

अब भला कहिये, जब भोजन से भी कोई ममता न रक्खी गई—दूसरे शब्दों में जब शरीर से ही ममत्व हटा लिया गया तब अन्य परिग्रह दिगम्बर साधु कैसे रक्खेगा? उसे रखना भी नहीं चाहिये, क्योंकि उसे तो प्रकृत रूप आत्मस्वातंत्र्य प्राप्त करना है, जो संसार के पार्थिव पदार्थों से सर्वथा भिन्न है! इस अवस्था में वह वस्त्रों का परिधान भी कैसे रख सकेगा? वस्त्र तो उसके मुक्ति-मार्ग में अर्गला बन जायंगे। फिर वह

कभी भी कर्म-वन्धन से मुक्त न हो पायगा। इसीलिये तत्त्व-वेत्ताओं ने साधुओं के लिये कहा है कि—

जह जाय रूवसरिसो तिलतुसमित्तं ण गिहदि हत्तेसु।
जइ लेइ अप्पवहुयं तत्तो पुण जाइ णिग्गोदम् ॥१८॥

अर्थात्—मुनि यथाजातरूप है—जैसा जन्मता वालक नग्न-रूप होता है वैसा नग्नरूप दिगम्वर मुद्रा का धारक है—वह अपने हाथ में तिलके तुष मात्रभी कुछ ग्रहण नहीं करता। यदि वह कुछ भी ग्रहण करले तो वह निगोद में जाता है!

परिग्रहधारी के लिये आत्मोन्नति की पराकाष्ठा पा लेना असंभव है। एक लंगोटीवत् के परिग्रह के मोह से साधु किस प्रकार पतित हो सकता है, यह धर्मात्मा सज्जनों की जानी सुनी वात है। प्रकृति तो कृत्रिमता की सर्वाहुति चाहती है-तव ही वह प्रसन्न होकर अपने पूरे सौन्दर्य्य को विकसित करती है। चाहे पैगम्वर या तीर्थङ्कर ही क्यों न हो, यदि वह गृहस्थाश्रम में रह रहा है—समाज मर्यादा के आत्मविमुख वन्धन में पड़ा हुआ है—तो वह भी अपने आत्मा के प्रकृत रूप को नहीं पा सकता! इसका एक कारण है। वह यह कि धर्म एक विज्ञान है। उसके नियम प्रकृति के अनुरूप अटल और निश्चल हैं। उनमें कहीं किसी जमाने में भी किसी कारण से रंचमात्र अन्तर नहीं पड़ ससता है! धर्म विज्ञान कहता है कि आत्मा स्वाधीन और सुखी तव ही हो सकता है जव वह पर-सम्वन्ध, पुद्गल के संसर्ग से मुक्त हो जावे। अव इस नियम के होते हुये भी पार्थिव

वस्त्र-परिधान को रखकर कोई यह चाहे कि मुझे आत्मस्वातंत्र्य मिल जाय तो उसकी यह चाह आकाश-कुसुम को पाने की आशा से बढ़कर न कही जायगी। इसी कारण जैनाचार्य पहले ही सावधान करते हैं कि—

ण वि सिज्झइ वत्थधरो जिणसासण जइवि होई तित्थयरो।
णग्गो विमोक्खमग्गो सेसा उम्मग्गया सव्वे ॥२३॥

भावार्थ— जिन शासन में कहा गया है कि वस्त्रधारी मनुष्य मुक्ति नहीं पा सकता है; जो तीर्थंकर होवे तो वह भी गृहस्थदशा में मुक्ति को नहीं पाते हैं— मुनि दीक्षा लेकर जब दिगम्बर वेष धारण करते हैं तब ही मोक्ष पाते हैं। अतः नग्नत्व ही मोक्षमार्ग है— बाकी सब लिंग उन्मार्ग हैं!

धर्म के इस वैज्ञानिक नियम के कायल संसार के प्रायः सब ही प्रमुख प्रवर्तक रहे हैं, जैसे कि आगे के पृष्ठों में व्यक्त किया गया है और उनका इस नियम— दिगम्बरत्व— को मान्यता देना ठीक भी है; क्योंकि दिगम्बरत्व के बिना धर्म का मूल्य कुछ भी शेष नहीं रहता— वह धर्मस्वभाव रह ही नहीं पाता है। इस प्रकार धर्म और दिगम्बरत्व का सम्बन्ध स्पष्ट है!

[३]

दिगम्बरत्व के आदि प्रचारक ऋषभदेव

'भुवनाम्भोजमार्तण्डं धर्मामृतपयोधरम् ।
योगि कल्पतरुं नौमि देवदेवं वृषभध्वजम् । —ज्ञानार्णव

दिगम्बरत्व प्रकृति का एक रूप है। इस कारण उसका आदि और अन्त कहा ही नहीं जा सकता। वह तो एक सनातन नियम है, किन्तु उस पर भी इस परिच्छेद के शीर्षक में श्री ऋषभदेव जी को दिगम्बरत्व का आदि प्रचारक लिखा है। इसका एक कारण है। विवेकी सज्जनके निकट दिगम्बरत्व केवल नग्नता मात्र का द्योतक नहीं है; पूर्व परिच्छेदों को पढ़ने से यह बात स्पष्ट हो गई है। वह रागादि विभाव भाव को जीतने वाला यथाजात रूप है और नग्नता के इस रूप का संस्कार कभी न कभी किसी महापुरुष द्वारा जरूर हुआ होगा! जैनशास्त्र कहते हैं कि इस कल्पकाल में धर्म के आदि प्रचारक श्री ऋषभदेव जी ने ही दिगम्बरत्व का सबसे पहले उपदेश दिया था!

यह ऋषभदेव अन्तिम मनु नाभिराय के सुपुत्र थे और वह एक अत्यन्त प्राचीन काल में हुये थे, जिसका पता लगा लेना सुगम नहीं है। हिन्दू शास्त्रों में जैनों के इन पहले तीर्थ-

ङ्कर को ही विष्णु का आठवाँ अवतार माना है और वहां भी इन्हें दिगम्बरत्व का आदि प्रचारक बताया है। जैनाचार्य उन्हें 'योगिकल्पतरु' कहकर स्मरण करते हैं।

हिन्दुओं के श्रीमद्‌भागवत में इन्हीं ऋषभदेव का वर्णन है और उसमें उन्हें परमहंस— दिगम्बर— धर्मका प्रतिपादक लिखा है; यथा—

एवमनुशास्यात्मजान् स्वयमनुशिष्टानपि लोकानुशासनार्थं महानुभावः परमसुहृद् भगवानृषभोदेव उपशमशीलानामुपरत-कर्मणाम् महामुनीनां भक्तिज्ञानवैराग्यलक्षणम् **पारमहंस्य-धर्ममुपशिक्ष्यमाणः** स्वतनयशतज्येष्ठं परमभागवतं भगवज्जन-परायणं भरतं धरणीपालनायाभिषिच्य स्वयं भवन एवोर्वरितं **शरीरमात्र परिग्रह** उन्मत्त इव **गगनपरिधानः** प्रकीर्णक-केश आत्मन्यारो पिता हवनीयो ब्रह्मावर्त्तात् प्रवव्राज ॥२९॥' भागवतस्कंध ५ अ० ५

अर्थात्— "इस भांति महायशस्वी और सबके सुहृद् ऋषभ भगवान् ने, यद्यपि उनके पुत्र सब भांति से चतुर थे, परन्तु मनुष्यों को उपदेश देने के हेतु, प्रशांत और कर्मबन्धन से रहित महामुनियों को भक्तिज्ञान और वैराग्य के दिखाने वाले **परमहंस आश्रम की शिक्षा देने के हेतु,** अपने सौ पुत्रों में ज्येष्ठ परम भागवत, हरि भक्तों के सेवक भरत को पृथ्वी पालन के हेतु, राज्याभिषेक कर तत्काल ही संसार को छोड दिया और आत्मा में होमाग्नि का आरोप कर केश खोल उन्मत्त की भांति नग्न हो, केवल शरीर को संग ले, ब्रह्मावर्त्त से संन्यास धारण कर चल निकले।"

इस उद्धरण के मोटे टाइप के अक्षरों से ऋषभदेव का परमहंस— दिगम्बर-धर्म-शिक्षक— होना स्पष्ट है।

तथा इसी ग्रन्थ के स्कंध २, अध्याय ७, पृष्ठ ७६ में इन्हें "दिगम्बर और जैनमत का चलाने वाला" उसके टीकाकार ने लिखा है* । मूल श्लोक में उनके दिगम्बरत्व को ऋषियों द्वारा वंदनीय बताया है—

नाभेरसा वृषभ आससु देव सूनु—
र्योवैव चार समदृग् जड योगचर्याम् ।
यत् पारमहंस्यमृषय: पदमामनंति
स्वस्थ: प्रशांतकरण: परिमुक्त संग: ॥१०॥

उधर हिन्दुओं के प्रसिद्ध योगशास्त्र 'हठयोगप्रदीपिका' में सबसे पहले मंगलाचरण के तौर पर आदिनाथ ऋषभदेव की स्तुति की गई है और वह इस प्रकार है‡ —

श्री आदिनाथाय नमोऽस्तु तस्मै,
येनोपदिष्टा हठयोगविद्या ।
विभ्राजते प्रोन्नतराज योग—
मारोढुमिच्छोरधिरोहिणीव ॥१॥

अर्थात्— "श्री आदिनाथ को नमस्कार हो, जिन्होंने उस हठयोग विद्या का सर्वप्रथम उपदेश दिया जोकि बहुत ऊंचे राजयोग पर आरोहण करने के लिये नसैनी के समान है।"

---

* ज़िनेन्द्रमत दर्पण, प्रथम भाग पृ० १०

‡ "अनेकान्त" वर्ष १ पृ० ५३८

श्री १००८ दिगम्बरत्व के प्रचारक श्री ऋषभनाथजी
और अंतिम प्रचारक श्री महावीर स्वामी। (पृ० १५ व ८५)
[ब्रिटिश म्यूजियम लन्दन के सौजन्य व आज्ञा से]

हठयोग का श्रेष्ठतम रूप दिगम्बर है। परमहंस मार्ग ही तो उत्कृष्ट योगमार्ग है। इसीसे 'नारद परिव्राजकोपनिषद्' में 'योगी परमहंसाख्य: साक्षान्मोक्षकसाधनम्' इस वाक्य द्वारा परमहंस योगी को साक्षात् मोक्ष का एक मात्र साधन वतलाया है। सचमुच "अजैन शास्त्रों में जहां कहीं श्री ऋषभदेव—आदिनाथ—का वर्णन आया है, उनको परमहंस मार्ग का प्रवर्तक वतलाया है।"[1]

किन्तु मध्यकालीन साम्प्रदायिक विद्वेष के कारण अजैन विद्वानों को जैनधर्म से ऐसी चिढ़ हो गई कि उन्होंने अपने धर्मशास्त्रों में जैनों के महत्वसूचक वाक्यों का या तो लोप कर दिया अथवा उनका अर्थ ही वदल दिया।[2] उदाहरण के रूप में उपरोक्त 'हठयोग प्रदीपिका' के श्लोक में वर्णित आदिनाथ को उसके टीकाकार 'शिव' (महादेवजी) बताते हैं; किन्तु वास्तव में इसका अर्थ ऋषभदेव ही होना चाहिये, क्योंकि प्राचीन 'अमरकोषादि' किसी भी कोष ग्रन्थ में महादेव का नाम 'आदिनाथ' नहीं मिलता। इसके अतिरिक्त यह बात भी

---

१ अनेकान्त, वर्ष १ पृ० ५३६।

२ श्री टोडरमलजी द्वारा उल्लिखित हिन्दू शास्त्रों के अवतरणों का पता आजकल के छपे हुये ग्रन्थों में नहीं चलता; किन्तु उन्हीं ग्रन्थों की प्राचीन प्रतियों में उनका पता चलता है, यह बात पं० मक्खनलालजी जैन अपने 'वेद पुराणादि ग्रन्थों में जैनधर्म का अस्तित्व' नामक ट्रैक्ट (पृ०४१–५०) में प्रकट करते हैं। प्रो० सरच्चन्द्र घोषाल एम. ए. काव्य-तीर्थ आदि ने भी हिन्दू 'पद्मपुराण' के विषय में यही बात प्रकट की थी। (देखो J. G. XIV 9.)

ध्यान देने योग्य है कि श्री ऋषभदेव के ही सम्बन्ध में यह वर्णन जैन और अजैन शास्त्रों में मिलता है—किसी अन्य प्राचीन मत प्रवर्तक के सम्बन्ध में नहीं—कि वह स्वयं दिगम्बर रहे थे और उन्होंने दिगम्बर धर्म का उपदेश दिया था। उस पर 'परम हंसोपनिषद्' के निम्न वाक्य इस बात को स्पष्ट कर देते हैं कि परमहंस धर्म के स्थापक कोई जैनाचार्य थे :—

"तदेतद्विज्ञाय ब्राह्मणः **पात्रं कमण्डलुं कटिसूत्रं कौपीनं च तत्सर्वमप्सुविसृज्याथ जातरूपधरश्चरे** दात्मानमन्विच्छेद। **यथाजातरूपधरो निर्द्वंद्वो निष्परिग्रह**स्तत्त्वब्रह्ममार्गे सम्यक् संपन्नः शुद्धमानसः प्राणसंधारणार्थं यथोक्तकाले पंच गृहेषु **करपात्रेणायाचिताहारमाहरन्** लाभालाभे समो भूत्वा निर्ममः **शुक्लध्यानपरायणोऽध्यात्मनिष्ठः** शुभाशुभकर्म-निर्मूलनपरः **परमहंसः** पूर्णानन्दैकबोधस्तदब्रह्मोऽहमस्मीति ब्रह्मप्रणवमनुस्मरन्–भ्रमर कीटकन्यायेन शरीरत्रयमुत्सृज्य देह-त्यागं करोति स कृतकृत्यो भवतीत्युपनिषद्।'[1]

अर्थात्—"ऐसा जानकर ब्राह्मण (ब्रह्मज्ञानी) पात्र, कमण्डलु, कटिसूत्र और लंगोटी इन सब चीजों को पानी में विसर्जन कर जन्मसमय के वेष को धारण कर–अर्थात् बिल्कुल नग्न होकर–विचरण करे और आत्मान्वेषण करे। जो यथा-जातरूपधारी (नग्न दिगम्बर), निर्द्वंद्व, निष्परिग्रह, तत्त्व-

---

१ अनेकान्त, वर्ष १ पृ० ५३९-५४०

ब्रह्ममार्ग में भले प्रकार सम्पन्न, शुद्ध हृदय, प्राणधारण के निमित्त यथोक्त समय पर अधिक से अधिक पांच घरों में विहार कर कर-पात्र में अयाचित भोजन लेने वाला तथा लाभालाभ में समचित्त होकर निर्ममत्व रहने वाला, **शुक्लध्यान परायण,** अध्यात्मनिष्ठ, शुभाशुभ कर्मों के निर्मूलन करने में तत्पर परमहंस योगी पूर्णानन्द का अद्वितीय अनुभव करने वाला वह ब्रह्म मैं हूँ, ऐसे ब्रह्म प्रणव का स्मरण करता हुआ भ्रमरकीटक न्याय से–(कीड़ा भ्रमरी का ध्यान करता हुआ स्वयं भ्रमर बन जाता है, इस नीति से) तीनों शरीरों को छोड़कर देहत्याग करता है, वह कृतकृत्य होता है, ऐसा उपनिषदों में कहा है।'

इस अवतरण का प्रायः सारा ही वर्णन दिगम्बर जैन मुनियों की चर्या के अनुसार है; किन्तु इसमें विशेष ध्यान देने योग्य विशेषण 'शुक्लध्यानपरायणः' है, जो जैनधर्म की एक खास चीज है। "जैन के सिवाय और किसी भी योग ग्रन्थ में 'शुक्लध्यान' का प्रतिपादन नहीं मिलता। पतंजलि ऋषि ने भी ध्यान के शुक्लध्यान आदि भेद नहीं बतलाये। इसलिए योग ग्रंथों में आदि-योगाचार्य के रूप में जिन आदिनाथ का उल्लेख मिलता है वे जैनियों के आदि तीर्थङ्कर श्री आदिनाथ से भिन्न और कोई नहीं जान पड़ते।"[१]

'अथर्ववेद के जाबालोपनिषद्' (सूत्र ६) में परमहंस

---

१ अनेकान्त, वर्ष १ पृष्ठ ५४१।

संन्यासी का एक विशेषण **'निर्ग्रन्थ'** भी दिया है और[1] यह हर कोई जानता है कि इस नाम से जैनी ही एक प्राचीनकाल से प्रसिद्ध हैं। बौद्धों के प्राचीन शास्त्र इस बात का खुला समर्थन करते हैं[2]। जैनधर्म के ही मान्य शब्द को उपनिषद्कार ने ग्रहण और प्रयुक्त करके यह अच्छी तरह दर्शा दिया है कि दिगम्बर साधु मार्ग का मूल श्रोत जैनधर्म है। और उधर हिन्दू पुराण इस बात को स्पष्ट करते ही हैं कि ऋषभदेव, जैनधर्म के प्रथम तीर्थङ्कर ने हीं परमहंस दिगम्बर धर्म का उपदेश दिया था। साथ ही यह भी स्पष्ट है कि श्री ऋषभदेव वेद-उपनिषद् ग्रंथों के रचे जाने के बहुत पहले हो चुके थे। वेदों में स्वयं उनका और १६वें अवतार वामन का उल्लेख मिलता है[3]। अतः निस्संदेह भ० ऋषभदेव ही वह महापुरुष हैं जिन्होंने इस युग की आदि में स्वयं दिगम्बर वेष धारण करके[4] सर्वज्ञता प्राप्त की थी[5] और सर्वज्ञ होकर दिगम्बरधर्म का उपदेश दिया था। वही दिगम्बरत्व के आदि प्रचारक हैं।

---

१ "यथा जातरूपधरो निर्ग्रन्थोनिष्परिग्रहः" इत्यादि-दिमु० पृ० ८।

२ जैकोबी प्रभृति विद्वानों ने इस बात को सिद्ध कर दिया है। (Js. Pt. II. Intro.) ३ भपा: की प्रस्तावना तथा 'सजै' देखो!

४ "विष्णुपुराण" में भी श्री ऋषभदेव को दिगम्बर लिखा है॥ ["Rishabha Deva..................naked, went the way of the great road." (महाप्रस्थानम्)'—Wilson's Vishnu Purana, Vol. II (Book II ch. I) pp. 103-104].

५ श्रीमद्भागवत में ऋषभदेव को 'स्वयं भगवान् और कैवल्यपति बताया है। (विको० भा० ३ पृ० ४४४)

[४]
हिन्दू धर्म और दिगम्बरत्व !

"संन्यासः षड्विधो भवति कुटिचक-बहुदक-हंस-परमहंस-तुरियातीत-अवधूतश्चेति ।" —संन्यासोपनिषद् १३

भगवान् ऋषभदेव जब दिगम्बर होकर वन में जा रमे, तो उनकी देखादेखी और भी बहुत से लोग नंगे होकर इधर उधर घूमने लगे । दिगम्बरत्व के मूल तत्त्व को वे समझ न सके और अपने मनमाने ढंग से उदरपूर्ति करते हुये वे साधु होने का दावा करने लगे । जैन शास्त्र कहते हैं कि इन्हीं संन्यासियों द्वारा सांख्य आदि जैनेतर सम्प्रदायों की सृष्टि हुई थी[1] । और तीसरे परिच्छेद में स्वयं हिन्दूशास्त्रों के आधार से यह प्रकट किया जा चुका है कि श्री ऋषभदेव द्वारा ही सर्वप्रथम दिगम्बरत्व धर्म का प्रतिपादन हुआ था । इस अवस्था में हिन्दू ग्रंथों में भी दिगम्बरत्व का सम्माननीय वर्णन मिलना आवश्यक है ।

यह बात जरूर है कि हिन्दूधर्म के वेद और प्राचीन तथा वृहत् उपनिषदों में साधु के दिगम्बरत्व का वर्णन प्रायः नहीं मिलता । किन्तु उनके छोटे मोटे उपनिषदों एवं अन्य ग्रंथों में उसका खास ढंग पर प्रतिपादन किया गया मिलता

---

१ आदिपुराण पर्व १८, श्लो० ६२ व (Rishabh, p. 112).

है। 'भिक्षुकउपनिषद्'।[1] 'सात्यायनीय उपनिषद्'।[2] 'याज्ञवल्क्य उपनिषद्'— 'परमहंस-परिव्राजक-उपनिषद्' आदि में यद्यपि संन्यासियों के चार भेद— (१) कुटिचक, (२) बहुदक, (३) हंस, (४) परमहंस— बताये गये हैं, परन्तु 'संन्यासोपनिषद्' में उनको छः प्रकार का बताया गया है अर्थात् उपरोक्त चार प्रकार के संन्यासियों के अतिरिक्त (१) तुरियातीत और (२) अवधूत प्रकार के संन्यासी और गिनाये हैं[3]। इन छहों में से पहले तीन प्रकार के संन्यासी त्रिदण्ड धारण करने के कारण 'त्रिदण्डी' कहलाते हैं और शिखा या जटा तथा वस्त्र कौपीन आदि धारण करते हैं[4]। परमहंस परिव्राजक शिखा और यज्ञोपवीत जैसे द्विजचिह्न धारण नहीं करता और वह एक दण्ड ग्रहण करता तथा एक वस्त्र धारण करता है अथवा अपनी देही में भस्म रमा लेता है[5]।

---

१ "अथभिक्षुणाम् मोक्षार्थीनाम् कुटीचक— बहूदक— हंस— परमहंसाश्चेति चत्वारः।"

२ कुटिचको—बहूदको— हंसः— परमहंस— इत्येति परिव्राजकाः चतुर्विधा भवन्ति।

३ स संन्यासः षड्विधो भवति—कुटीचक—बहुदक—हंस—परमहंस-तुरीयातीतावधूताश्चेति।

४ कुटीचकः शिखायज्ञोपवीती दण्डकमण्डलुधरः कौपीनशाटीकन्थाधरः पितृमातृगुर्वाराधनपरः पिठरखनित्रशिक्यादिमात्रसाधनपरः एकत्रान्नादनपरः श्वेतोर्ध्वपुण्ड्रधारी त्रिदण्डः। बहूदकः शिखादिकन्थाधरस्त्रिपुण्ड्रधारी कुटीचकवत्सर्वसमो मधुकरवृत्त्याष्टकवलाशी। हंसो जटाधारी त्रिपुण्ड्रोर्ध्वपुण्ड्रधारी असंक्लृप्तमाधूकरान्नाशी कौपीनखण्डतुण्डधारी।

५ परमहंसः शिखायज्ञोपवीतरहितः पञ्चगृहेषु करपात्री एककौपीनधारी शाटीमेकामेकं वैणवं दण्डमेकशाटीधरो व भस्मोद्धूलनपरः।

हां तूरियातीत परिव्राजक बिल्कुल दिगम्बर होता है और वह सन्यास नियमों का पालन करता है[1]। अन्तिम अवधूत पूर्ण **दिगम्बर** और निर्द्वन्द है— वह संन्यास नियमों की भी परवाह नहीं करता[2]। तूरियातीत अवस्था में पहुंचकर परमहंस परिव्राजक को **दिगम्बर** ही रहना पड़ता है किन्तु उसे दिगम्बर जैन मुनि की तरह केशलुंच नहीं करना होता— वह अपना सिर मुंडाता (मुण्ड) है। और अवधूत पद तो तूरियातीत की मरण अवस्था है[3]। इस कारण इन दोनों भेदों का समावेश परमहंस भेद में ही गर्भित किन्हीं उपनिषदों में मान लिया गया है। इस प्रकार उपनिषदों के इस वर्णन से यह स्पष्ट है कि एक समय हिन्दू धर्म में भी दिगम्बरत्व को विशेष आदर मिला था और वह साक्षात् मोक्ष का कारण माना गया था! उस पर कापालिक संप्रदाय में तो वह खूब ही प्रचलित रहा; किन्तु वहां वह अपनी धार्मिक पवित्रता खो बैठा; क्योंकि वहां वह भोग की वस्तु रहा। अस्तु,

यहां पर उपनिषदादि वैदिक साहित्य में जो भी उल्लेख दिगम्बर साधु के सम्बन्ध में मिलते हैं, उनको उपस्थित कर

---

१ सर्वत्यागी तुरीयातीतो गोमुखवृत्त्यो फलाहारी अन्नाहारी चेद्गृहत्रये देहमात्रावशिष्टो दिगम्बरः कुणपवच्छरीरवृत्तिकः।

२ अवधूतस्त्वनियमः पतिताभिशस्तवर्जनपूर्वकं सर्वं वर्णेष्वजगरवृत्याहारपरः स्वरूपानुसंधानपरः।.................।

३ सर्वं विस्मृत्य तुरीयातीतावधूतवेषेणाद्वैतनिष्ठापरः प्रणवात्मकत्वेन देहत्यागं करोति यः सोऽवधूतः।

देना उचित है। देखिये "जाबालोपनिषत्" में लिखा है :—

"तत्र परमहंसानामसंवर्तकारुणिश्वेतकेतुदुर्वास ऋभुनिदाघ-जडभरत दत्तात्रेयरैवतक प्रभृतयोऽव्यक्तलिङ्गा अव्यक्ताचारा अनुन्मत्ता उन्मत्तवदाचरन्तस्त्रिदण्डं कमण्डलुं शिक्यं पात्रं जलपवित्रं शिखां यज्ञोपवीतं च इत्येतत्सर्वं भूः स्वाहेत्यप्सु परित्यज्यात्मानमन्विच्छेत् **यथाजातरूपधरो निर्ग्रन्थो निष्परिग्रहस्तत्तद्ब्रह्ममार्गे** सम्यक्संपन्नः–इत्यादि।"[१]

इसमें संवर्तक, आरुणि, श्वेतकेतु आदि को यथाजात रूपधर निर्ग्रन्थ लिखा है अर्थात् इन्होंने दिगम्बर जैन मुनियों के समान आचरण किया था।

'परमहंसोपनिषत्' में मिम्न प्रकार उल्लेख है :—

"इदमन्तरं ज्ञात्वा स परमहंस **आकाशाम्बरो** न नमस्कारो न स्वाहाकारो न निन्दा न स्तुतियादृच्छिको भवेत्स भिक्षुः।"[२]

सचमुच दिगम्बर (परमहंस) भिक्षु को अपनी प्रशंसा निन्दा अथवा आदर अनादर से सरोकार ही क्या ! आगे 'नारदपरिव्राजकोपनिषत्' में भी देखिये :—

यथाविधिश्चेज्जातरूपधरो भूत्वा.........................जातरूप धरश्चरेदात्मानमन्विच्छेद्यथा जातरूपधरो निर्द्वन्द्वो निष्परि-

---

१ ईशाद्य०, पृष्ठ १३१

२ ईशाद्य०, पृष्ठ १५०

श्री १०८ मुनि विद्यानन्दजी महाराज

ग्रहस्तत्त्वब्रह्ममार्गे सम्यक् सम्पन्नः । ८६- तृतीयोपदेशः ।[1]

"तुरीयः परमो हंसः साक्षान्नारायणो यतिः । एकरात्रं वसेत् ग्रामे नगरे पञ्चरात्रकम् ।।१४।। वर्साभ्योऽन्यत्र वर्षासु मासांश्च चतुरो वसेत् । ....मुनिः कौपीनवासाः स्यान्नग्नो वा ध्याननग्रपरः ।३२। ....जातरूपधरो भूत्वा.............. दिगम्बरः ।"— चतुर्थोपदेशः ।[2]

इन उल्लेखों में भी परिव्राजक को नग्न होने का तथा वर्षाऋतु में एक स्थान में रहने का विधान है । "मुनि कौपीन-वासा" आदि वाक्य में छहों प्रकार के सारे ही परिव्राजकों का मुनि 'शब्द' से ग्रहण कर लिया गया है । इसलिये उनके सम्बन्ध में वर्णन कर दिया कि चाहे जिस प्रकार का मुनि अर्थात् प्रथम अवस्था का अथवा आगे की अवस्थाओं का । इसका यह तात्पर्य नहीं है कि मुनि वस्त्र भी पहिन सकता है और नग्न भी रह सकता है; जिससे कि नग्नता पर आपत्ति की जा सके ! यह पहले ही परिव्राजकों के षड्भेदों में दिखाया जा चुका है कि उत्कृष्ट प्रकार के परिव्राजक नग्न ही रहते हैं और वह श्रेष्ठतम फल को भी पाते हैं, जैसे कि कहा है :—

आतुरो जीवति चेत्क्रम संन्यासः कर्त्तव्यः । .... आतुर कुटीचकयोर्भूलोक भुवर्लोको । वहूदकस्य स्वर्गलोकः ।

१ ईशाद्य०, पृ० २६७-२६८

२ ईशाद्य०, पृ० २६८-२६९

हंसस्य तपोलोकः । परमहंसस्य सत्यलोकः । तुरीयातीताव-धूतयोः स्वस्मन्येव कैवल्यं स्वरूपानुसंधानेन भ्रमर-कीट-न्यायवत् ।[१]

अर्थात्— "आतुर यानी संसारी मनुष्य का अन्तिम परिणाम (निष्ठा) भूलोक है; कुटीचक संन्यासी का भुवलोक स्वर्गलोक हंस सन्यासी का अन्तिम परिणाम है; परमहंस के लिये वही सत्यलोक है और कैवल्य तूरीयातीत और अवधूत का परिणाम है।"

अब यदि इन संन्यासियों में वस्त्र परिधान और दिगं-बरत्व का तात्त्विक भेद न होता तो उनके परिणाम में इतना गहन अन्तर नहीं हो सकता। दिगम्बर मुनि ही वास्तविक योगी है और वही कैवल्य-पद का अधिकारी है। इसीलिये उसे 'साक्षात् नारायण' कहा गया है। नारद परिव्राजकोप-निषद्' में आगे और भी उल्लेख निम्न प्रकार है:—

"ब्रह्मचर्येण संन्यस्य संन्यासाज्जातरूपधरो वैराग्य संन्यासो।"[२]

"तुरीयातीतो गोमुखः फलाहारी। अन्नाहारी चेद् गृह-त्रये देहमात्रावशिष्टो दिगम्बरः कुणपवच्छरीरवृत्तिकः। अव-धूतस्त्वनियमोऽभिशस्तपतितवर्जनपूर्वकं सर्ववर्णेष्वजगर वृत्या-हारपरः स्वरूपानुसंधानपरः। ……परमहंसादित्रयाणां

१ ईशाद्य०, पृष्ठ- संन्यासोपनिषत् ५६

२ ईशाद्य०, पृष्ठ २७१।

न कटिसूत्रं न कौपीनं न वस्त्रम् न कमण्डलुर्न दण्डः सार्ववर्णैकभैक्षाटनपरत्वं जातरूपधरत्वं विधिः ....। सर्वं परित्यज्य तत्प्रसक्तम् मनोदण्डं करपात्रं दिगम्बरं दृष्ट्वा परिव्रजेद्भिक्षुः ॥१॥..............अभयं सर्वभूतेभ्यो दत्त्वा चरति यो मुनिः। न तस्य सर्वभूतेभ्यो भयमुत्पद्यते क्वचित् ॥१६॥.... ....आशानिवृत्तो भूत्वा आशाम्बरधरो भूत्वा सर्वदामनोवाक्कायकर्मभिः सर्वसंसारमुत्सृज्य प्रपञ्चावाङ्मुखः स्वरूपानुसन्धानेन भ्रमरकीटन्यायेन मुक्तो भवतीत्युपनिषत् ॥ पञ्चमोपदेशः।"

दिगम्बरम् परमहंसस्य एक-कौपीनं वा तुरीयातीतावधूतयोर्जातरूपधरत्वं हंस परमहंसयोरजिनं न त्वन्येषाम्। —सप्तमोपदेशः[1]

वैराग्य संन्यासी भेद एक अन्य प्रकार से किया गया है। इस प्रकार से परिव्राजक संन्यासियों के चार भेद भी किये गए हैं- (१) वैराग्य संन्यासी, (२) ज्ञान संन्यासी, (३) ज्ञान वैराग्य संन्यासी और (४) कर्म संन्यासी। इन में से ज्ञान वैराग्य संन्यासी को भी नग्न होना पड़ता है।[2]

"भिक्षुकोपनिषत्" में भी लिखा है :-

अथ जातरूपधरा निर्द्वन्द्वा निष्परिग्रहाः शुक्लध्यानपरायणा आत्मनिष्ठाः प्राणसंधारणार्थं यथोक्तकाले भैक्षमाचरन्तः

---

१ ईशाद्य०, पृष्ट २७२।

२ क्रमेण सर्वमभ्यस्य सर्वमनुभूय ज्ञानवैराग्याभ्यां स्वरूपानुसंधानेन देहमात्रावशिष्टः संन्यस्य जातरूपधरो भवति स ज्ञानवैराग्यसंन्यासी। —नारदपरिव्राजकोपनिषद् १।५॥ तथा संन्यासोपनिषद्।

शून्यागारदेवगृहतृणकूटवल्मीकवृक्षमूलकुलाल-शालाग्निहोत्र-शालानदी-पुलिनगिरिकन्दर-कुहर-कोटर-निर्भरस्थण्डिले तत्र ब्रह्ममार्गे सम्यक्संपन्नाः शुद्धमानसाः परमहंसाचरणेन संन्यासेन देहत्यागं कुर्वन्ति ते परमहंसा नामेत्युपनिषत् ।[1]

'तुरीयातीतोपनिषत्' में उल्लेख इस प्रकार है :—

"संन्यस्य दिगम्बरो भूत्वा विवर्णजीर्णवल्कलाजिनपरिग्रहमपि संत्यज्य तदूर्ध्वममन्त्रवदाचरन्क्षौराभ्यङ्गस्नानोर्ध्वपुण्ड्रादिकं विहाय लौकिक वैदिकमप्युपसंहृत्य सर्वत्र पुण्यापुण्यवर्जितो ज्ञानाज्ञानमपि विहाय शीतोष्णसुखदुःख-मानावमानं निर्जित्य वासनात्रयपूर्वकं निन्दानिन्दागर्वमत्सर दम्भ दर्प द्वेष काम क्रोध लोभ मोह हर्षामर्षासूयात्म-संरक्षणादिकं दग्ध्वा ....इत्यादि ।[2]

'संन्यासोपनिषत्' में और भी उल्लेख इस प्रकार है :-

वैराग्य-संन्यासी-ज्ञान, संन्यासी, ज्ञान—वैराग्य-संन्यासी, कर्मसंन्यासीति चतुर्विध्यमुपागतः । तद्यथेति दृष्टानुश्रविक विषय वैतृष्ण्यमेत्य प्राक्पुण्यकर्मविशेषात्संन्यस्तः स वैराग्य-संन्यासी । ....क्रमेण सर्वमभ्यस्य सर्वमनुभूय ज्ञान-वैराग्याभ्यां स्वरूपानुसंधानेन देहमात्रावशिष्टः संन्यस्य जात रूपधरो भवति स ज्ञान वैराग्य संन्यासी ।[3]

'परमहंसपरिव्राजकोपनिषत्' में भी दिगम्बर मुनियों का उल्लेख है :—

---

१ ईशाद्य०, पृष्ठ ३६८ । २ ईशाद्य०, पृष्ठ ४१०,
३ ईशाद्य०, पृष्ठ ४१२

"**शिखामुत्कृष्य यज्ञोपवीतं छित्त्वा वस्त्रमपि भूमौ वाप्सु वा विसृज्य** ॐ भूः स्वाहा ॐ भुवः स्वाहा ॐ सुवः स्वाहेत्या तेन **जातरूपधरो** भूत्वा स्वं रूपं ध्यायन्पुनः पृथक् प्रणवव्याहृति पूर्वकं मनसा वचसापि संन्यस्तं मया.......... ।

यदालंवुद्धिर्भवेत्तदा कुटीचको वा बहूदको वा हंसो वा परमहंसो वा तत्रन्मन्त्रपूर्वकं कटिसूत्रं कौपीनं दण्डं कमण्डलुं सर्वमप्सु विसृज्याथ जातरूपधरश्चरेत् ।[१]

'याज्ञवल्क्योपनिषत्' में दिगम्बर साधु का उल्लेख करके उसे परमेश्वर होता बताया है; जैसे कि जैनों की मान्यता है:-

यथा जातरूपधरा निर्द्वन्द्वा निष्परिग्रहास्तत्त्वब्रह्ममार्गे सम्यक् संपन्नाः शुद्धमानसाः प्राणसंधारणार्थं यथोक्त काले विमुक्तो भैक्षमाचरन्नुदरपात्रेण लाभालाभौ समो भूत्वा कर-पात्रेण मा कमण्डलूदकयो भैक्षमाचरन्नुदरमात्र संग्रहः । ....आशाम्बरो न नमस्कारो न दारपुत्राभिलाषी लक्ष्या-लक्ष्यनिर्वर्तकः परिव्राट् परमेश्वरो भवति[२]

'दत्तात्रेयोपनिषत्' में भी है :—

दत्तात्रेय हरे कृष्ण उन्मत्तानन्द दायक । दिगम्बर मुने बालपिशाच ज्ञानसागर ।[३]

'भिक्षुकोपनिषद्' आदि में संवर्तक, आरुणी, श्वेतकेतु, जड़भरत, दत्तात्रेय, शुक, वामदेव, हारीतिकी आदि को

---

१ ईशाद्य० पृ० ४१८-४१९

२ ईशाद्य० पृ० ५२४

३ ईशाद्य० पृ० ५४२

दिगम्बर साधु बताया है । "याज्ञवल्क्योपनिषद्" में इनके अतिरिक्त दुर्वासा, ऋभु, निदाघ को भी तुरियातीत परमहंस बताया[1] है । इस प्रकार उपनिषदों के अनुसार दिगम्बर साधुओं का होना सिद्ध है ।

किन्तु यह बात नहीं है कि मात्र उपनिषदों में ही दिगम्बरत्व का विधान हो, वल्कि वेदों में भी साधु की नग्नता का साधारण सा उल्लेख मिलता है। देखिये 'यजुर्वेद' अ० १९ मंत्र १४ में है :—[2]

"आतिथ्यरूपं मासरम् महावीरस्य नग्नहु: ।
रूपमुपसदामेतस्त्रिस्रो रात्री सुरासुता ॥

अर्थ— (आतिथ्यरूपं) अतिथि के भाव (मासरं) महीनों तक रहने वाले (महावीरस्य) पराक्रमशील व्यक्ति के (नग्नहु:) नग्नरूप की उपासना करो जिससे (एतत्) ये (तिस्रो) तीनों (रात्री:) मिथ्या ज्ञान, दर्शन और चारित्ररूपी (सुर) मद्य (असुता) नष्ट होती है ।

इस मन्त्र का देवता अतिथि है । इसलिये यह मन्त्र अतिथियों के सम्बन्ध में ही लग सकता है, क्योंकि वैदिक देवता का मतलव वाच्य है जैसाकि निरुक्तकार का भाव है—

---

१ IHO, III. 259-260

२ मालूम होता है कि इस मंत्र द्वारा वेदकारने जैन तीर्थङ्कर महावीर के आदर्श को ग्रहण किया है। दूसरे धर्मों के आदर्श को इस तरह ग्रहण करने के उल्लेख मिलते हैं। - IHO. III, 472-485.

"याते नोच्यते सा देवता: ।" इसके अतिरिक्त 'अथर्ववेद' के पन्द्रहवें अध्याय में जिन व्रात्य और महाव्रात्य का उल्लेख है; उनमें महाव्रात्य दिगम्बर साधु का अनुरूप है । किन्तु यह व्रात्य एक वेदवाह्यसंप्रदाय था, जो वहुत कुछ निर्ग्रन्थ-संप्रदाय से मिलता-जुलता था । वल्कि यूं कहना चाहिये कि वह जैन-मुनि और जैन तीर्थङ्कर ही का द्योतक है[1] । इस अवस्था में यह मान्यता और भी पुष्ट होती है कि जैनतीर्थङ्कर ऋषभ-देव द्वारा दिगम्वरत्व का प्रतिपादन सर्वप्रथम हुआ था और जब उसका प्रावल्य बढ़ गया और लोगों को समझ पड़ गया कि परमोच्चपद पाने के लिए दिगम्बरत्व आवश्यक है तो उन्होंने उसे अपने शास्त्रों में भी स्थान दे दिया । यही कारण है कि वेद में भी इसका उल्लेख सामान्य रूप में मिल जाता है ।

अब हिन्दू पुराणादि ग्रंथों में जो दिगम्बर साधुओं का वर्णन मिलता है, वह भी देख लेना उचित है । श्री भागवत पुराण में ऋषभ अवतार के सम्वन्ध में कहा है :—

वर्हिषी तस्मिन्नेव विष्णु भगवान् परमर्षिभिः प्रसादितो नाभेः प्रियचिकीर्षया तदवरोधायने मरुदेव्यां धर्मान् दर्शयतु कामो वातरशनानां श्रमणानां ऋषीणामूर्ध्व मन्थिना शुक्लया तनु वावततार ।

अर्थ—"हे राजन् ! परीक्षित वा यज्ञ में परम ऋषियों करके प्रसन्न हो नाभि के प्रिय करने की इच्छा से वाके अन्तःपुर

---

१ देखो भपा० प्रस्तावना पृ० ३२-४६

में मरुदेवी में धर्म दिखायवे की कामना करके दिगम्बर रहिवेवारे तपस्वी ज्ञानी नैष्ठिक ब्रह्मचारी ऊर्ध्व रेता ऋषियों को उपदेश देने को शुक्लवर्ण की देह धार श्री ऋषभदेव नाम का (विष्णु ने) अवतार लिया।[१]

"लिङ्ग पुराण" (अ० ४७ पृ० ६८) में भी नग्न साधु का उल्लेख है—[२]

"सर्वात्मनात्म निस्थाप्य परमात्मा नमीश्वरं।
नग्नोजटो निराहारो चीरीध्वांत गतोहि सः ॥२५॥

"स्कंधपुराण-प्रभासखंड" में (अ० १६ पृ० २२१) शिव को दिगम्बर लिखा है—[३]

"वामनोपि ततश्चक्रे तत्र तीर्थावगाहनम्।
यादृग्रूपः शिवोदृष्टः सूर्यबिम्बे दिगम्बरः ॥६४॥"

श्री भर्तृहरि जी 'वैराग्यशतक' में कहते हैं—[४]

'एकाकी निःस्पृहः शान्तः पाणिपात्रो दिगम्बरः।
कदा शम्भो भविष्यामि कर्मनिर्मूलनक्षमः ॥५८॥'

अर्थ—"हे शम्भो ! मैं अकेला, इच्छा रहित, शांत, पाणिपात्र और दिगम्बर होकर कर्मों का नाश कब कर सकूंगा।" वह और भी कहते हैं—[५]

अशीमहि वयं भिक्षामाशावासो वसीमहि।
शयीमहि महीपृष्ठे कुर्वीमहि किमीश्वरैः ॥६०॥

---

१ वेजै० पृ० ३ २ वेजै० पृ० ६ ३ वेजै पृ० ३४
४ वेजै० पृ० ४६ ५ वेजै० पृ० ४७

अर्थ—"अब हम भिक्षा ही करके भोजन करेंगे, दिशा ही के वस्त्र धारण करेंगे अर्थात् नग्न रहेंगे और भूमि पर ही शयन करेंगे। फिर भला धनवानों से हमें क्या मतलब ?

सातवीं शताब्दी में जब चीनी यात्री हुएनसांग बनारस पहुंचा तो उसने वहां हिन्दुओं के बहुत से नङ्गे साधु देखे। वह लिखता है कि "महेश्वर भक्त साधु बालों को बांध कर जटा बनाते हैं तथा वस्त्र परित्याग करके दिगम्बर रहते हैं और शरीर में भस्म का लेप करते हैं। ये बड़े तपस्वी हैं[1]।" इन्हीं को परमहंस परिव्राजक कहना ठीक है। किन्तु हुएनसांग से बहुत पहिले ईस्वी पूर्व तीसरी शताब्दी में जब सिकन्दर महान ने भारत पर आक्रमण किया था, तब भी नंगे हिन्दू साधु यहां मौजूद थे।

अरस्तू का भतीजा स्यिडो कल्लिस्थैनस (Pseudo Kallisthenes) सिकन्दर महान् के साथ यहां आया था और वह बताता है कि "ब्राह्मणों का श्रमणों की तरह कोई संघ नहीं। ....उनके साधु प्रकृति की अवस्था में (State of nature)- नग्न नदी किनारे रहते हैं और नंगे ही घूमते हैं (Go about naked) उनके पास न चौपाहे हैं, न हल है, न लोहा-लङ्गड़ है, न घर है, न आग है, न रोटी है, न सुरा है—गर्ज यह कि उनके पास श्रम और आनन्द का कोई सामान नहीं है। इन साधुओं की स्त्रियां गङ्गा की दूसरी ओर

---

१ हुभा० पृ० ३२०

रहती हैं; जिनके पास जुलाई और अगस्त में वे जाते हैं। वैसे जंगल में रहकर वे वनफल खाते हैं।"[१]

सन् ८५१ में अरब देश से सुलेमान सौदागर भारत आया था। उसने यहां एक ऐसे नंगे हिन्दू योगी को देखा था जो सोलह वर्ष तक एक आसन से स्थित था।[२]

बादशाह औरङ्गजेब के जमाने में फ्रांस से आये हुए डा० बर्नियर ने भी हिन्दुओं के परमहंस (नंगे) संन्यासियों को देखा था। वह इन्हें 'जोगी' कहता है और इनके विषय में लिखता है :—[३]

"I allude particulary to the people called '*Jaugis*', a name which signifies 'united to God' Numbers are seen, day and night, seated or lying on ashes, entirely naked, frequently under the large trees near talabs or tanks of water, or in the galleries round the *Deuras* or idol temples. Some have hair hanging down to the calf of the leg, twisted and entangled into knots, like the coat of our shaggy dogs. I have seen several who hold one & some who hold both arms, perpetually lifted up above the head; the nails of

१ AI., P. 181.

२ Elliot., I, P-4

३ Bernier., P. 316

their hands being twisted, and longer than half my little finger, with which I measured them. Their arms are as small & thin as the arms of persons who die in a decline, because in so forced & unnatural a position they receive not sufficient nourishmet; nor can they be lowered so as to supply the mouth with food, the muscles having become contracted and the articulations dry & stiff. Novices wait upon these fanatics & pay them the utmost respacet, as persons endowed with extrordinary sanctity. No. *Fury* in the infernal regions can be conceived more horrible than the *Jaugise* with their naked and black skin, long hair, spindle arms, long twisted nails and fixed in the posture which I have mentioned."

भाव यही है कि वहुत से ऐसे जोगी थे जो तालाव अथवा मंदिरों में नंगे रात-दिन रहते थे। उनके वाल लम्बे लम्बे थे। उनमें से कोई अपनी वाहें ऊपर को उठाये रहते थे। नाखून उनके मुड़कर दूभर हो गये थे जो मेरी छोटी अंगुली के आधे बराबर थे। सूखकर वे लकड़ी हो गये थे। उन्हें खिलाना भी मुश्किल था; क्योंकि उनकी नसें तन गई थीं। भक्त जन इन नागों की सेवा करते हैं और इनकी बड़ी विनय करते हैं। वे

इन जोगियों से पवित्र किसी दूसरे को समझते नहीं और इनके क्रोध से भी बेढव डरते हैं। इन जोगियों की नंगी और काली चमड़ी है, लम्बे बाल हैं, सूखी बाहें हैं, लम्बे मुड़े हुए नाखून हैं और वे एक जगह पर ही उस आसन में जमे रहते हैं जिसका मैंने उल्लेख किया है। यह हठयोग की पराकाष्ठा है। परमहंस होकर वह यह न करते तो करते भी क्या ?

सन् १६२३ ई० में पिटर डेल्ला वॉल्ला नामक एक यात्री आया था। उसने अहमदाबाद में साबरमती नदी के किनारे और शिवालों में अनेक नागा साधु देखे थे; जिनकी लोग बड़ी विनय करते थे![1]

आज भी प्रयाग में कुम्भ के मेले के अवसर पर हजारों नागा संन्यासी वहां देखने को मिलते हैं—वे कतार बांध कर शरह-आम नंगे निकलते हैं।

इस प्रकार हिन्दू शास्त्रों और यात्रियों की साक्षियों से हिन्दू धर्म में दिगम्बरत्व का महत्व स्पष्ट हो जाता है। दिगम्बर साधु हिन्दुओं के लिये भी पूज्य-पुरुष हैं।

---

१ पुरातत्त्व, वर्ष २ अङ्क ४ पृ० ४४०।

इस्लाम और दिगम्बरत्व ।

"I am no apostle of new doctrines", said Muhammad, "neither know I what will be done with me or you." —Koran XLVI.

पैग़म्बर हज़रत मुहम्मद ने खुद फ़रमाया है कि "मैं किन्हीं नये सिद्धान्तों का उपदेशक नहीं हूँ और मुझे यह नहीं मालूम कि मेरे या तुम्हारे साथ क्या होगा ?"। सत्य का उपासक और कह ही क्या सकता है ? उसे तो सत्य को गुमराह भाइयों तक पहुँचाना पड़ता है। मुहम्मद सा० को अरब के असभ्यसे लोगों में सत्य का प्रकाश फैलाना था। वह लोग ऐसे पात्र न थे कि एकदम ऊंचे दर्जे का सिद्धान्त उनको सिखाया जाता। उस पर भी हज़रत मुहम्मद ने उनको स्पष्ट शिक्षा दी कि—

'The love of the world is the root of all evil"

"The world is as a prison and as a famine to Muslims; and when they leave it you may say they leave famine and a prison."—(Sayings of Mohammad)¹

---

१ KK., P. 738.

अर्थात्—"संसार का प्रेम ही सारे पाप की जड़ है। संसार मुसलमान के लिए .कैदख़ाना और क़हत के समान है और जब वे इसको छोड़ देते हैं तब तुम कह सकते हो कि उन्होंने क़हत और .कैदख़ाने को छोड़ दिया।" त्याग और वैराग्य का इससे बढ़िया उपदेश और हो भी क्या सकता है? हज़रत मुहम्मद ने स्वयं उसके अनुसार अपना जीवन बनाने का यथासंभव प्रयत्न किया था। उस पर भी उनके कम से कम वस्त्रों का परिधान और हाथ की अंगूठी उनकी नमाज़ में बाधक हुई थी।[१] किन्तु यह उनके लिये इस्लाम के उस जन्म काल में संभव नहीं था कि वह खुद नग्न होकर त्याग और वैराग्य—तर्क दुनिया—का श्रेष्ठतम उदाहरण उपस्थित करते! यह कार्य उनके बाद हुये इस्लामके सूफ़ी तत्ववेत्ताओं के भाग में आया। उन्होंने 'तर्क' अथवा त्याग धर्म का उपदेश स्पष्ट शब्दों में यूं दिया.—

"To abandon the world, its comforts and dress,—all things now and to come,—conformably with the Hadees of the Prophet '[२]

अर्थात्—"दुनियां का सम्बन्ध त्याग देना—तर्क कर देना—उसकी आशाइशों और पोशाक—सबही चीज़ोंको अब की और आगे की—पैंगम्बर सा० की हदीस के मुताबिक।"

---

१ Religious Attitude & Life in Islam, P.298 & KK. 739

२ The Dervishes—KK. P. 738

इस उपदेश के अनुसार इस्लाम में त्याग और वैराग्य को विशेष स्थान मिला। उसमें ऐसे दरवेश हुये जो दिगम्बरत्व के हिमायती थे और तुर्किस्तान में 'अब्दल' (Abdals) नामक दरवेश मादरजात नंगे रहकर अपनी साधना में लीन रहते बताये गये हैं।[१] इस्लाम के महान् सूफी तत्ववेत्ता और सुप्रसिद्ध 'मस्नवी' नामक ग्रन्थ के रचयिता श्री जलालुद्दीन रूमी दिगम्बरत्व का खुला उपदेश निम्न प्रकार देते हैं:—

१—"गुफ्त मस्त ऐ महतव बगुजार रव—अज़ बिरहना के तवां बुरदन गरव।" (जिल्द २ सफा २६२)

२—"जामा पोशां रा नजर परगाज़ रास्त—जामै अरियां रा तजल्ली जेवर अस्त।" —(जिल्द २ सफा ३८२)

३—"याज़ अरियानान बयकसू बाज़ रव—या चूं ईशां फारिग व बेजामा शव!"

४—"वरनमी तानी कि कुल अरियां शवी—जामा कम कुन ता रह औसत रवी!!"

—(जिल्द २ सफा ३८३)[२]

---

१ "The higher saints of Islam, called 'Abdals' *generally went about perfectly naked; as described* by Miss Lucy M. Garnet in her excellent account of the lives of Muslim Dervishes, entitled "Mysticism & Magic in Turkey."—NJ., P. 10

२ जिल्द और पृष्ठ के नम्बर "मस्नवी" के उर्दू अनुवाद "इल्हामे मन्ज़ूम" के हैं।

इन का उर्दू में अनुवाद 'इल्हामे मन्जूम' नामक पुस्तक में इस प्रकार दिया हुआ है—

१—मस्त बोला, महतब, कर काम जा—होगा क्या नङ्गे से तू अहदे वर आ !

२—है नज़र धोबी पै जामै-पोश की—है तजल्ली जेवर अरियां तनी ! !

३—या विरहनों से हो यकसू वाक़ई—या हो उनकी तरह बेजामै अखी !

४—मुतलक़न अरियां जो हो सकता नहीं—कपड़े कम यह है कि औसत के क़रीं ! !

भाव स्पष्ट है। कोई तार्किक मस्त नङ्गे दरवेश से आ उलझा। उसने सीधे से कह दिया कि जा अपना काम कर—तू नङ्गे के सामने टिक नहीं सकता। वस्त्रधारी को हमेशा धोबी की फिकर लगी रहती है; किन्तु नंगे तन की शोभा दैवी प्रकाश है। बस, या तो तू नङ्गे दरवेशों से कोई सरोकार न रख अथवा उनकी तरह आजाद और नङ्गा हो जा ! और अगर तू एक दम सारे कपड़े नहीं उतार सकता तो कम से कम कपड़े पहन और मध्यमार्ग को ग्रहण कर ! क्या अच्छा उपदेश है। एक दिगम्बर जैन साधु भी तो यही उपदेश देता है ! इस से दिगम्बरत्व का इस्लाम से सम्बन्ध स्पष्ट हो जाता है !

और इस्लाम के इस उपदेश के अनुरूप सैकड़ों मुसल-

मान फकीरों ने दिगम्बर वेषको गतकाल में धारण किया था। उनमें अबुलकासिम गिलानी[१] और सरमद शहीद उल्लेखनीय हैं।

सरमद बादशाह औरङ्गजेब के समय में दिल्ली में हो गुजरा है और उसके हजारों नङ्गे शिष्य भारत भर में बिखरे पड़े थे। वह मूल में कजहान (अरमेनिया) का रहने वाला एक ईसाई व्यापारी था। विज्ञान और विद्या का भी वह विद्वान् था। अरबी अच्छी खासी जानता था। व्यापार के निमित्त भारत में आया था। ठट्टा (सिंध) में एक हिन्दू लड़के के इश्क में पड़कर मजनूं बन गया।[२] उपरान्त इस्लाम के सूफी दरवेशों की संगति में पड़ कर मुसलमान हो गया। मस्त नङ्गा वह शहरों और गलियों में फिरता था। अध्यात्मवाद का प्रचारक था। घूमता-घामता वह दिल्ली जा डटा। शाहजहां का वह अन्त समय था। दारा शिकोह, शाहजहां बादशाह का बड़ा लड़का, उसका भक्त हो गया। सरमद आनन्द से अपने मत का प्रचार दिल्ली में करता रहा। उस समय फ्रांस से आये हुए डा० बरनियर ने खुद अपनी आंखों से उसे नंगा दिल्ली की गलियों में घूमते देखा था।[३] किन्तु जब शाहजहां और दारा को मार कर औरंगजेब बादशाह हुआ तो सरमद की आजादी

---

१ KK., P. 739 and NJ, P.P 8-9.
२ JG., XX PP. 158-159.
३ Bernier remarks: "I was for a long time disgusted with a celebrated *Fakire* named *Sarmet*,

में भी अडंगा पड़ गया। एक मुल्ला ने उसकी नग्नता के अप-राध में उसे फांसी पर चढ़ाने की सलाह औरङ्गजेब को दी; किन्तु औरङ्गजेब ने नग्नता को इस दण्ड की वस्तु न समझा[१] और सरमद से कपड़े पहनने की दरख्वास्त की। इसके उत्तर में सरमद ने कहा—

"आँकस कि तुरा कुलाह मुल्तानी दाद,
मारा हम ओ अस्बाब परेशानी दाद;
पोशानीद लबास हरकरा ऐबे दीद,
बे ऐबा रा लबास अर्यानी दाद!"

यानी "जिसने तुमको बादशाही ताज दिया, उसी ने हमको परेशानी का सामान दिया। जिस किसी में कोई ऐब पाया, उसको लिबास पहनाया और जिनमें ऐब न पाये उनको नङ्गेपन का लिबास दिया।"[२]

बादशाह इस रुबाई को सुनकर चुप हो गया; लेकिन सरमद उसके क्रोध से बच न पाया। अब के सरमद फिर अपराधी बनाकर लाया गया। अपराध सिर्फ यह था कि वह 'कलमा' आधा पढ़ता है जिसके माने होते हैं कि 'कोई खुदा नहीं है।' इस अपराध का दण्ड उसे फांसी मिली और

---

who paraded the streets of Delhi as naked as when he came into the world etc."—(Berniers Travels in the Mogul Empire, P. 317.)

१ Emperor told the Ulema that "Mere nudity cannot be a reason of execution" -JG. XX, P. 158.

२ जैम०, पृष्ठ ४ ॥

वह वेदान्तकी बातें करता हुआ शहीद होगया ! उसको फांसी दिये जाने में एक कारण यह भी था कि वह दारा का दोस्त था ।[१]

सरमद की तरह न जाने कितने नङ्गे मुसलमान दरवेश हो गुज़रे हैं ! बादशाह ने उसे मात्र नंगे रहने के कारण सजा न दी, वह इस बात का द्योतक है कि नग्नता को बुरी चीज नहीं समझता था । और सचमुच उस समय भारत में हजारों नंगे फकीर थे । ये दरवेश अपने नंगे तन में भारी २ जंजीरें लपेट कर बड़े लम्बे २ तीर्थाटन किया करते थे ।[२]

सारांशत: इस्लाम मजहब में दिगम्बरत्व साधु पद का चिन्ह रहा है और उसको अमली शक्ल भी हजारों मुसलमानों ने दी है ! और चूंकि हजरत मुहम्मद किसी नये सिद्धान्त के प्रचार का दावा नहीं करते, इसलिये कहना होगा कि ऋषभाचल से प्रगट हुई दिगम्बरत्व-गंगा की एक धारा को इस्लाम के सूफ़ी दरवेशों ने भी अपना लिया था ।

---

१ JG, Vol. XX, P. 159. "There is no God" said Sarmad omitting "but, Allah and Muhammad is His apostle."

२ "Among the vast number and endless variety of *Fakires* or *Dervishes*...........some carried a club like to *Hercules*, others had a dry & rough tiger-skin thrown over their shoulders........Several of these *Fakires* take long pilgrimages, not only naked, but laden with heavy iron chain, such as are put about the legs of elephants."—Bernier. P. 317.

ईसाई मज़हब और दिगम्बर साधु !

"And he stripped his clothes also, and prophesied before Samuel in like manner, and lay down naked all that day and all that night. Wherefore they said, is Saul also among the Prophets?"
—(Samuel XIX. -24)

"At the same time spake the Lord, by Isaiah the son of Amoz, saying, 'Go and loose the sack-cloth from off the loins, and put off thy shoe from thy foot. And he did so, walking naked and bare foot."

—(Isaiah XX. 2)

ईसाई मज़हब में भी दिगम्बरत्व का महत्व भुलाया नहीं गया है; वल्कि वड़े मार्क के शब्दों में उसका वहां प्रतिपादन हुआ मिलता है। इसका एक कारण है। **जिस महानुभाव द्वारा ईसाई धर्म का प्रतिपादन हुआ था वह जैन श्रमणों के निकट शिक्षा पा चुका था।**[1] उसने जैन धर्म की शिक्षा को ही अलंकृत-भाषा में पाश्चात्य-देशों में प्रचलित कर दिया। इस अवस्था में ईसाई मजहव दिगम्वरत्व के

१ विको०, भा० ३ पृष्ठ १२८

सिद्धान्त से खाली नहीं रह सकता। और सचमुच बाइबिल में स्पष्ट कहा गया है कि—

"और उसने अपने वस्त्र उतार डाले और सैमुयल के समक्ष ऐसी ही घोषणा की और उस सारे दिन तथा सारी रात वह नंगा रहा। इस पर उन्होंने कहा, 'क्या साल भी पैगम्बरों में से है?'"—(सैमुयल १६।२४)

"उसी समय प्रभू ने अमोज के पुत्र ईसाइया से कहा, जा और अपने वस्त्र उतार डाल और अपने पैरों से जूते निकाल डाल। और उसने यही किया, नंगा और नंगे पैरों वह विचरने लगा।"—(ईसाय्या २०।२)

इन उद्धरणों से यह सिद्ध है कि बाइबिल भी मुमुक्षु को दिगम्बर मुनि हो जाने का उपदेश देती है। और कितने ही ईसाई साधु दिगम्बर वेष में रह भी चुके हैं। ईसाइयों के इन नंगे साधुओं में एक सेन्टमेरी (St. Mary of Egypt.) नामक साध्वी भी थी। यह मिश्रदेश की सुन्दर स्त्री थी; किन्तु इसने भी कपड़े छोड़कर नग्न-वेष में ही सर्वत्र विहार किया था।[१]

यहूदी (Jews) लोगों की प्रसिद्ध पुस्तक "The Ascension of Isaiah" (p. 32) में लिखा है—

"(Those) who believe in the ascension into heaven withdrew and settled on the mountain....

---

१ The History of European Morals, ch. 4 & NJ., P. 6

........They were all prophets (Saints) and they had nothing with them and were naked."[१]

अर्थात्—वह जो मुक्ति की प्राप्ति में श्रद्धा रखते थे एकान्त में पर्वत पर जा जमे..........वे सब सन्त थे और उनके पास कुछ नहीं था और वे नंगे थे।

अपॉसल पीटर ने नंगे रहने की आवश्यकता और विशेषता को निम्न शब्दों में बड़े अच्छे ढंग पर "Clementine Homilies" में दर्शा दिया है :—

"For we, who have chosen the future things, in so far as we possess more goods than these, whether they be clothings, or...............any other thing, possess sins, *because we ought not to have anything.......... ... .To all of us possessions are sins... ....The deprivation of these, in whatever way it may take place is the removal of sins*"[२]

अर्थात्—क्योंकि हम जिन्होंने भविष्य की चीजों को चुन लिया है, यहां तक कि हम उनसे ज़्यादा सामान रखते हैं, चाहे वे फिर **कपड़े लत्ते** हों या दूसरी कोई चीज़, पाप को रक्खे हुये हैं; क्योंकि **हमें कुछ भी अपने पास नहीं रखना चाहिये। हम सब के लिये परिग्रह पाप है। जैसे भी हो वैसे इनका त्याग करना पापों को हटाना है!**

---

१ NJ, P. 6

२ Ante Nicene Christian Library, XVII. 240 & NJ. P. 7

दिगम्बरत्व की आवश्यकता पाप से मुक्ति पाने के लिये आवश्यक ही है। ईसाई ग्रंथकार ने इसके महत्व को खूब दर्शा दिया है। यही वजह है कि ईसाई मज़हब के मानने वाले भी सैकड़ों दिगम्बर साधु हो गुज़रे हैं!

[७]

दिगम्बर जैन मुनि!

"जधजादरूवजादं उप्पाडिद केसमंसुगं सुद्धं।
रहिदं हिंसादीदो अप्पडिकम्मं हवदि लिंगं॥५॥
मुच्छारंभविजुत्तं जुत्तं उवजोग जोग सुद्धीहिं।
लिंगं ण परावेक्खं अपुणब्भव कारणं जो एहं॥६॥"

—प्रवचनसार!

दिगम्बर जैन मुनि के लिये जैन शास्त्रों में लिखा गया है कि उनका लिंग अथवा वेश यथाजात रूप **नग्न है**—सिर और दाढ़ी केश उन्हें नहीं रखने होते—वे इन स्थानों के बालों को हाथ से उखाड़ कर फेंक देते हैं—यह उनकी केश-लुन्चन क्रिया है। इसके अतिरिक्त दिगम्बर जैन मुनि का वेश शुद्ध, हिंसादि रहित, शृंगार रहित, ममता-आरम्भ रहित, उपयोग और योग की शुद्धि सहित, पर द्रव्य की अपेक्षा रहित

मोक्ष का कारण होता है। सारांश रूप में दिगम्बर जैन मुनि का वेष यह है; किन्तु यह इतना दुर्द्धर और गहन है कि संसार-प्रपंच में फंसे हुए मनुष्य के लिये यह संभव नहीं है कि वह एक दम इस वेश को धारण करले ! तो फिर क्या यह वेश अव्यवहार्य है ! जैनशास्त्र कहते हैं, 'कदापि नहीं !' और यह है भी ठीक क्योंकि उनमें दिगम्बरत्व को धारण करने के लिये मनुष्य को पहले से ही एक वैज्ञानिक ढंग पर तैयार करके योग्य वना लिया जाता है और दिगम्बर पद में भी उसे अपने मूल उद्देश्य की सिद्धि के लिये एक वैज्ञानिक ढंग पर ही जीवन व्यतीत करना होता है। जैनेतर शास्त्रों में यद्यपि दिगम्बर वेश का प्रतिपादन हुआ मिलता है; किन्तु उनमें जैनधर्म जैसे वैज्ञानिक नियम-प्रवाह की कमी है। और यही कारण है कि परमहंस वानप्रस्थ भी उनमें सपत्नीक मिल जाते हैं।[1] जैन-धर्म के दिगम्बर साधुओं के लिये ऐसी वातें विल्कुल असंभव हैं !

अच्छा तो, दिगम्बर वेष धारण करने के पहले जैनधर्म मुमुक्षु के लिए किन नियमों का पालन करना आवश्यक वतलाता है ? जैन शास्त्रों में सचमुच इस वात का पूरा ध्यान रक्खा गया है कि एक गृहस्थ एक दम छलांग मार कर दिगम्बरत्व के उन्नत शैल पर नहीं पहुंच सक्ता। उसको वहां तक पहुंचने के लिए क़दम-ब-क़दम आगे बढ़ना होगा। इसी

१ यूनानी लेखकों ने उनका उल्लेख किया है। देखो। AI. p. 181

क्रम के अनुरूप जैनशास्त्रों में एक गृहस्थ के लिये ग्यारह दर्जे नियत किये हैं। पहले दर्जे में पहुंचने पर कहीं गृहस्थ एक श्रावक कहलाने के योग्य होता है। यह दर्जे गृहस्थ की आत्मोन्नति के सूचक हैं और इनमें पहले दर्जे से दूसरे में आत्मोन्नति की विशेषता रहती है। इनका विशद वर्णन जैन ग्रंथों में जैसे 'रत्नकरण्डश्रावकाचार' में खूब मिलता है। यहां इतना बता देना ही काफी है कि इन दर्जों से गुज़र जाने पर ही एक श्रावक दिगम्बर मुनि होने के योग्य होता है। दिगम्बर मुनि होने के लिये यह उनकी 'ट्रेनिङ्ग' है और सचमुच प्रोषधोपवासव्रत प्रतिमा से उसे नंगे रहने का अभ्यास करना प्रारम्भ कर देना होता है। मात्र पर्व—अष्टमी और चतुर्दशी के दिनों में वह अनारंभी हो—घर बाहर का काम-काज छोड़कर—व्रत-उपवास करता तथा दिगम्बर होकर ध्यान में लीन होता है।[1] ग्यारहवीं प्रतिमा में पहुंच कर वह मात्र लंगोटी का परिग्रह अपने पास रहने देता है और गृहत्यागी वह इसके पहले हो जाता है। ग्यारहवीं प्रतिमा का धारी वह 'ऐलक या क्षुल्लक' आदरपूर्वक विधिसहित यदि प्रासुक भोजन गृहस्थ के यहां मिलता है तो ग्रहण कर लेता है। भोजनपात्र का रखना भी उसकी खुशी पर अवलम्बित है! बस, यह श्रावक-पद की चरम-सीमा है। 'मुण्डकोपनिषद्' के 'मुण्डक श्रावक'

---

१. भमवु० पृ० २०५ तथा बौद्धों के 'अंगुत्तर निकाय' में भी इसका उल्लेख है।

इसके समतुल्य होते हैं; किन्तु वहां वह साधु का श्रेष्ठ रूप है।[1] इसके विपरीत जैनधर्म में उसके आगे मुनिपद और है। मुनिपद में पहुंचने के लिये ऐलक-श्रावक को लाजमी तौर पर दिगम्बर-वेष धारण करना होता है और मुनिधर्म का पालन करने के लिये मूल और उत्तर गुणों का पालन करना होता है। मुनियों के मूल गुण जैन शास्त्रों में इस प्रकार बताए गए हैं :—

'पंचय महव्वमाइं समिदीओ पच जिणवरोद्दिट्ठा।
पंचेविंदियरोहा छप्पि य आवासया लोचो ॥२॥
अच्चेल कमण्हाणं खिदिसयणमदंतघस्सणं चेव।
ठिदिभोयणेयभत्तं मूल गुणा अट्ठवीसा दु ॥३॥मूलाचार॥

अर्थात्—"पांच महाव्रत (अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य्य और अपरिग्रह), जिनवर कर उपदेशी हुई पांच समितियां (ईर्यासमिति, भाषासमिति, एषणा समिति, आदाननिक्षेपण समिति, मूत्रविष्ठादिक का शुद्ध भूमि में क्षेपण अर्थात् प्रतिष्ठापनासमिति), पांच इन्द्रियों का निरोध (चक्षु, कान, नाक, जीभ, स्पर्शन—इन पांच इन्द्रियों के विषयों का निरोध करना), छह आवश्यक (सामायिक, चतुर्विंशतिस्तव, वंदना, प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान, कायोत्सर्ग), लोच, आचेलक्य, अस्नान, पृथिवी-शयन, अदंतघर्षण, स्थितिभोजन, एक भक्त—ये जैन साधुओं के अट्ठाइस मूल गुण हैं।"

---

१ वीर वर्ष ८ पृ० २५१-२५५।

संक्षेप में दिगम्बर मुनि के इन अट्ठाइस मूलगुणों का विवेचनात्मक वर्णन यह है :—

(१) **अहिंसा महाव्रत**—पूर्णतः मन-वचन-काय पूर्वक अहिंसा धर्म का पालन करना;

(२) **सत्य महाव्रत**—पूर्णतः सत्य धर्म का पालन करना।

(३) **अस्तेय महाव्रत**— " अस्तेय " "

(४) **ब्रह्मचर्य महाव्रत**— " ब्रह्मचर्य " "

(५) **अपरिग्रह महाव्रत**— " अपरिग्रह " "

(६) **ईर्या समिति**—प्रयोजनवश निर्जीव मार्ग से चार हाथ जमीन देखकर चलना;

(७) **भाषा समिति**—पैशून्य, व्यर्थ हास्य, कठोर वचन, परनिंदा, स्वप्रशंसा, स्त्री कथा, भोजन कथा, राज-कथा, चोर कथा इत्यादि वार्ता छोड़कर मात्र स्वपरकल्याणक वचन बोलना;

(८) **एषणासमिति**—उद्गमादि छियालीस दोषों से रहित, कृतकारित नौ विकल्पों से रहित, भोजन में रागद्वेष रहित–समभाव से–बिना निमंत्रण स्वीकार करे, भिक्षा-बेला पर दातार द्वारा पड़गाहने पर इत्यादि रूप भोजन करना;

(९) **आदाननिक्षेपण समिति**–ज्ञानोपकरणादि–पुस्तकादि का–यत्नपूर्वक देख भाल कर उठाना-धरना;

(१०) **प्रतिष्ठापना समिति**–एकान्त, हरित व त्रसकाय रहित, गुप्त, दूर, बिल रहित, चौड़े, लोकनिन्दा व विरोध-रहित स्थान में मल-मूत्र क्षेपण करना;

(११) **चक्षुर्निरोध वृत**—सुन्दर व असुन्दर दर्शनीय वस्तुओं में राग-द्वेषादि तथा आसक्ति का त्याग;

(१२) **कर्णेन्द्रिय निरोध वृत**—सात स्वर रूप जीवशब्द (गान) और वीणा आदि से उत्पन्न अजीव शब्द रागादि के निमित्त कारण हैं; अतः इनका न सुनना;

(१३) **घ्राणेन्द्रिय निरोध वृत**—सुगन्धि और दुर्गन्धि में राग-द्वेष नहीं करना;

(१४) **रसनेन्द्रिय निरोध वृत**—जिह्वालम्पटता के त्याग सहित और आकांक्षा रहित परिणाम पूर्वक दातार के यहां मिले भोजन को ग्रहण करना;

(१५) **स्पर्शनेन्द्रिय निरोध वृत**—कठोर, नरम आदि आठ प्रकार का दुःख अथवा सुख रूप जो स्पर्श उसमें हर्ष विषाद न रखना;

(१६) **सामायिक**—जीवन-मरण, संयोग-वियोग, मित्र-शत्रु, सुख-दुख, भूख-प्यास आदि बाधाओं में राग द्वेष रहित समभाव रखना;

(१७) **चतुर्विशति-स्तव**—ऋषभादि चौवीस तीर्थङ्करों की मन-वचन-काय की शुद्धता-पूर्वक स्तुति करना;

(१८) **वन्दना**—अरहंतदेव, निर्ग्रन्थ गुरू और जिन शास्त्रको

मन-वचन-काय की शुद्धि सहित बिना मस्तक नमाये नमस्कार करना;

(१६) **प्रतिक्रमण**—द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव रूप किये गये दोष को शोधना और अपने आप प्रकट करना;

(२०) **प्रत्याख्यान**—नाम, स्थापना, द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव–इन छहों में शुभ मन, वचन, काय से आगामी काल के लिये अयोग्य का त्याग करना;

(२१) **कायोत्सर्ग**—निश्चित क्रिया रूप एक नियत काल के लिये जिन गुणों की भावना सहित देह में ममत्व को छोड़ कर स्थित होना;

(२२) **केशलौंच**—दो, तीन या चार महीने बाद प्रतिक्रमण व उपवास सहित दिन में अपने हाथ से मस्तक, दाढी, मूंछ के बालों का उखाड़ना;

(२३) **अचेलक**—वस्त्र, चर्म, टाट, तृण आदि से शरीर को नहीं ढकना, और आभूषणों से भूषित न होना;

(२४) **अस्नान**—स्नान-उबटन-अञ्जन-लेपन आदि का त्याग;

(२५) **क्षितिशयन**—जीव बाधा रहित गुप्त प्रदेश में दण्डे अथवा धनुष के समान एक करवट से सोना;

(२६) **अदन्तधावन**—अंगुली, नख, दांतौन, तृण आदि से दन्त मल को शुद्ध नहीं करना;

(२७) **स्थितिभोजन**—अपने हाथों को भोजनपात्र बनाकर भीत आदि के आश्रय रहित चार अंगुली के अन्तर

से समपाद खड़े रहकर तीन भूमियों की शुद्धता से आहार ग्रहण करना; और

(२८) **एक भक्त**–सूर्य के उदय और अस्तकाल की तीन घड़ी समय छोड़कर एक वार भोजन करना।

इस प्रकार एक मुमुक्षु दिगम्बर मुनि के श्रेष्ठपद को तब ही प्राप्त कर सकता है जब वह उपरोक्त अट्ठाईस मूल गुणों का पालन करने लगे। इनके अतिरिक्त जैन मुनिके लिए और भी उत्तर गुणों का पालन करना आवश्यक है; किन्तु ये अट्ठाइस मूल गुण ही ऐसे व्यवस्थित नियम हैं कि मुमुक्षु को निर्विकारी और योगी बना दें! और यही कारण है कि आज तक दिगम्बर जैन मुनि अपने पुरातन वेष में देखने को नसीव हो रहे हैं। यदि यह वैज्ञानिक नियम प्रवाह जैनधर्म में न होता तो अन्य मतान्तरों के नग्न साधुओं के सदृश आज दिगम्बर जैन साधुओं के भी दर्शन होना दुर्लभ हो जाते! दिगम्बर साधु—नङ्ग जैन साधु के लिये 'दिगम्बर साधु' पदका प्रयोग करना ही हम उचित समझते हैं—के उपरोक्त प्रारम्भिक गुणों को देखते हुये–जिनके विना वह मुनि ही नहीं हो सकता—दिगम्बर मुनि के जीवन के कठिनश्रम, इन्द्रियनिग्रह, संयम, धर्मभाव, परोपकारवृत्ति, निशङ्करूप इत्यादि का सहज ही पता लग जाता है। इस दशा में यदि वे जगद्वन्द्य हों तो आश्चर्य क्या?

दिगम्बर मुनियों के सम्बन्ध में यह जान लेना भी

ज़रूरी है कि उनके (१) आचार्य (२) उपाध्याय और (३) साधुरूप तीन भेदों के अनुसार कर्त्तव्य में भी भेद है। आचार्य साधु के गुणों के अतिरिक्त सर्वकाल सम्बन्धी आचार को जान कर स्वयं तद्वत् आचरण करे तथा दूसरों से करावे; जैनधर्म का उपदेश देकर मुमुक्षुओं का संग्रह करे और उनकी सारसंभार रक्खे। उपाध्याय का कार्य साधुकर्म के साथ साथ जैन शास्त्रों का पठन-पाठन करना है। और जो मात्र उपरोक्त गुणों को पालता हुआ ज्ञान-ध्यान में लीन रहता है, वह साधु है। इस प्रकार दिगम्बर मुनियों को अपने कर्तव्य के अनुसार जीवन-यापन करना पड़ता है। आचार्य महाराज का जीवन सङ्घ के उद्योत में ही लगा रहता है; इस कारण कोई कोई आचार्य विशेष ज्ञान-ध्यान करने की नियत से अपने स्थान पर किसी योग्य शिष्य को नियुक्त करके स्वयं साधुपद में आ जाते हैं! मुनि-दशा ही साक्षात् मोक्ष का कारण है।

[८]

दिगम्बर-मुनि के पर्यायवाची नाम।

दिगम्बर मुनि के लिये जैनशास्त्रों में अनेक शब्द व्यवहृत हुये मिलते हैं। तथापि जैनेतर साहित्य में भी वह एक से अधिक नामों से उल्लिखित हुये हैं। संक्षेप में उनका साधारण

सा उल्लेख कर देना उचित है; जिससे किसी प्रकार की शङ्का को स्थान न रहे। साधारणतः दिगम्बर मुनि के लिये व्यवहृत शब्द निम्नप्रकार देखने को मिलते हैं :—

अकच्छ, अकिञ्चन, अचेलक (अचेलव्रती), अतिथि, अनगारी, अपरिग्रही, अह्रीक, आर्य, ऋषि, गणी, गुरु, जिनलिङ्गी, तपस्वी, दिगम्बर, दिग्वास, नग्न, निश्चेल, निर्ग्रंथ, निरागार, पाणिपात्र, भिक्षुक, महाव्रती, माहण, मुनि, यति, योगी, वातवसन, विवसन, संयमी (संयत), स्थविर, साधु, संन्यस्थ, श्रमण, क्षपणक।

संक्षेप में इनका विवरण इस प्रकार है :—

१. **अकच्छ**—[1] लंगोटी रहित जैन मुनि;

२. **अकिञ्चन**—[2] जिनके पास किञ्चित् मात्र (जरा भी) परिग्रह न हो वह जैन मुनि;

३. **अचेलक या अचेलवृती**—चेल अर्थात् वस्त्र रहित साधु। इस शब्द का व्यवहार जैन और जैनेतर साहित्य में हुआ मिलता है। 'मूलाचार'[3] में कहा है :—

"अच्चेलकं लोचो वोसट्ठसरीरदा य पडिलिहणं।

एसो हु लिंगकप्पो चदुव्विधो होदिणादव्वो ॥९०८॥"

अर्थ—'आचेलक्य अर्थात् कपड़े आदि सब परिग्रह का त्याग, केश लोंच, शरीर संस्कार का अभाव, मोर पीछी—यह चार प्रकार लिंगभेद जानना।'

---

१. वृजंश०, पृ० ४। २. (Ibid) ३. पृष्ठ ३२६।

श्वेताम्बर जैन ग्रंथ "आचाराङ्गसूत्र" में भी अचेलक शब्द प्रयुक्त हुआ मिलता है :—

"जे अचेले परि वुसिए तस्सणं भिक्खुस्सणो एवभवद ।[१]–"
"अचेलए ततो चाई, तं वोसज्ज वत्थमणगारे ।"[२]

उनके 'ढाणाङ्गसूत्र' में है: "पंचहिं ठाणेहिं समणे निग्गंथे अचेलए सचेलयाहि निग्गंथीहिं सद्धिं सेवसयाणे नाइक्कमई ।" अर्थात् "और भी पांच कारण से वस्त्र रहित साधु वस्त्र सहित साध्वी साथ रहकर जिनाज्ञा का उल्लंघन करते हैं ।"[३]

बौद्ध शास्त्रों में भी जैनमुनियों का उल्लेख 'अचेलक' रूप में हुआ मिलता है । जैसे "पाटिकपुत्त अचेलो"—अचेलक पाटिक पुत्र, यह जैन साधु थे ।[४] चीनी त्रिपिटक में भी जैन-साधु "अचेलक" नाम से उल्लिखित हुये हैं ।[५] बौद्ध टीकाकार बुद्धघोष 'अचेलक' से भाव नग्न के लेते हैं ।[६]

४. अतिथि—ज्ञानादि सिद्धचर्थं तनुस्थित्यर्थान्नाय यः स्वयम्, यत्नेनाततति गेहं वा न तिथिर्यस्य सोऽतिथिः ।

—सागार धर्मामृत अ० ५ श्लो० ४२ ।

जिनके उपवास, व्रत आदि करने की गृहस्थ श्रावकके समान अष्टमी आदि कोई खास तिथि (तारीख) नियत न हो; जब चाहे करें ।

५. अनगार[७]—आगार रहित, गृहत्यागी दिगम्बर मुनि ।

---

१. आचा० पृ० १५१ । २. अध्याय ६ उद्देश १ सूत्र ४
३. ठाणा०, पृ० ५६१ । ४. भमबु०, पृ० २५५ । ५. "वीर" वर्ष ४ पृ. ३५३ ६. अचेलकोऽतिनिच्चेलो नग्गो ।' —IHO. III 245
७. वृजैश०, पृ० ४ ।

इस शब्द का प्रयोग—अणयारमहरिसीणं ······ मूलाचार, अनगारभावनाधिकार श्लो० २ में, अनगार महर्षिणां इसही श्लोक की संस्कृत छाया और "न विद्यतेऽगारं गृहं स्त्र्यादिकं येषां तेऽनगारा" इस ही श्लोक की संस्कृत टीका में मिलता है।

श्वेताम्बरीय "आचाराङ्ग सूत्र में है: "तं वोसज्ज वत्थ-मणगारे।"[1]

६. **अपरिग्रही**—तिलतुषमात्र परिग्रह रहित दिग० मुनि।

७. **अह्रीक**—लज्जाहीन, नगेमुनि। इस शब्द का प्रयोग अजैन ग्रंथकारों ने दिगम्बर मुनियों के लिए घृणा प्रकट करते हुए किया है; जैसे बौद्धों के 'दाठावंश में है:—[2]

'इमे अहिरिका सब्बे सद्धादिगुणवञ्जिता।
थद्धा सठाच दुप्पञ्चा सग्गमोक्ख विवन्धका ॥८८॥'

बौद्ध नैयायिक कमलशील ने भी जैनों का 'अह्रीक' नाम से उल्लेख किया है (अह्रीकादयश्चोदयन्ति; स्याद्वाद परीक्षा प्र० 'तत्वसंग्रह' पृ० ४८६)। वाचस्पति अभिधानकोष में ही 'अह्रीक' को दिगम्बर मुनि कहा है:—अह्रीक क्षपणके तस्य दिगम्बरत्वेन लज्जाहीनत्वात् तथात्वम्।" 'हेतुबिन्दुतर्कटीका' में भी जैन मुनि के धर्म का उल्लेख 'क्षपणक' और 'अह्रीक' नाम से हुआ है। तथा श्वेताम्बराचार्य श्री वादिदेवसूरि ने भी अपने 'स्याद्वाद-रत्नाकर' ग्रंथ में दिगम्बर जैनों का उल्लेख

---

१. आचा०, पृ० २१०   २. दाठा०, पृ० १४

अह्लीक नाम से किया है। (स्याद्वादरत्नाकर पृ० २३०)।[1]

८. आर्य—दिगम्बर मुनि। दिगम्बराचार्य शिवार्य अपने दिगम्बर गुरुओं का उल्लेख इसी नाम से करते हैं:—[2]

"अज्ज जिणणंदिगणि, सव्वगुत्तगणि अज्जमित्तणंदीणं।
अवगमिय पादमूले सम्मं सुत्तं च अत्थं च॥
पुव्वायरिय णिवद्धा उपजीविता इमा ससत्तीए।
आराधणा सिवज्जेण पाणिदलभोजिणा रइदा॥"

यह सब आर्य (साधु) पाणिपात्रभोजी दिगम्बर थे।

९. ऋषी—दिगम्बर साधु का एक भेद है (यह शब्द विशेषतया ऋद्धिधारी साधु के लिये व्यवहृत होता है)। श्री कुन्दकुन्दाचार्य इसका स्वरूप इस प्रकार निर्दिष्ट करते हैं:—[3]

'णय, राय, दोस, मोहो, कोहो लोहो य जस्स आयत्ता।
पंच महव्वयधारा आयदणं महरिसी भणियं॥६॥'

अर्थात्—मद, राग, दोष, मोह, क्रोध, लोभ, माया आदि से रहित जो पंचमहाव्रतधारी है, वह महा ऋषि है।

१०. गणी—मुनियों के गण में रहने के कारण दिगम्बर मुनि इस नाम से प्रसिद्ध होते हैं। 'मूलाचार' में इसका उल्लेख निम्न प्रकार हुआ है:—

---

१. पुरातत्व, वर्ष ५ अङ्क ४ पृ० २६६–२६७

२. जैहि०, भा० पृ० ३६०   ३. अष्ट०, पृ० ११४

"विस्समिदो तद्दिवसं मोमंसित्ता णिवेदयदि गणिणो।"[१]

११. गुरु—शिष्यगण—मुनि श्रावकादि के लिये धर्मगुरु होने के कारण दिगम्बर मुनि इस नाम से भी अभिहित है। उल्लेख यूं मिलता है:—

"एवं आपुच्छित्ता सगवर गुरूणा विसज्जिओ संतो।"[२]

१२. जिनलिङ्गी—[३]जिनेन्द्र भगवान द्वारा उपदिष्ट नग्न भेष का पालन करने के कारण दिगंबर मुनि इस नाम से भी प्रसिद्ध हैं।

१३. तपस्वी—विशेषतर तप में लीन होने के कारण दिगम्बर मुनि तपस्वी कहलाते हैं। 'रत्नकरण्ड श्रावकाचार' में इसकी व्याख्या निम्न प्रकार की गई है:—

"विषयाशावशातीतो निरारम्भोऽपरिग्रहः।
ज्ञान-ध्यान-तपोरक्तस्तपस्वी स प्रशस्यते ॥१०॥"[४]

१४. दिगम्बर—दिशायें उनके वस्त्र हैं इसलिये जन मुनि दिगम्बर हैं। मुनि कनकामर अपने को जैन मुनि हुआ दिगम्बर शब्द से ही प्रगट करते हैं:—

"वइरायहं हुवइं दियंवरेण।
सुपसिद्ध णाम कणयामरेण॥[५]

हिन्दू पुराणादि ग्रन्थों में भी जैन मुनि इस नाम से उल्लिखित हुए हैं।[६]

---

१. मूला०, पृ० ७५ २. मूला०, पृ०, ६७ ३. वृजैश०, पृ० ४
४. र० श्रा०, पृ० ८ ५. वीर, वर्ष ४ पृ० २०१
६. विष्णु पुराण में है: 'दिगम्बरो मुण्डो वर्हपत्रधरः' [५-२] 'पद्म-

१५. दिग्वास—यह भी नं० १४ के भाव में प्रयुक्त हुआ जैनेतर साहित्य में मिलता है। 'विष्णु पुराण' में (५।१०) में है—**दिग्वाससामयं धर्मः।**

१६. नग्न—यथाजातरूप जैन मुनि होते हैं, इसलिये वह नग्न कहे गए हैं। श्री कुन्दकुन्दाचार्यजी ने इस शब्द का उल्लेख यों किया है:—

"भावेण होइ णग्गो, वाहिरलिंगेण किं च णग्गेणं।"[1]

वराहमिहिर कहते हैं—"नग्नान् जिनानां विदुः।"[2]

१७. निश्चेल—वस्त्र रहित होने के कारण यह नाम है। उल्लेख इस प्रकार है:—

"णिच्चेल पाणिपत्तं उवइट्ठं परम जिणवरिंदेहिं।"[3]

१८. निर्ग्रन्थ—ग्रन्थ अर्थात् अन्तर-बाहर सर्वथा परिग्रह रहित होने के कारण दिगम्बर मुनि इस नाम से बहुत प्राचीन काल से प्रसिद्ध हैं। 'धर्मपरीक्षा' में निर्ग्रंथ साधु को बाह्याभ्यन्तर ग्रन्थ (परिग्रह) रहित नग्न ही लिखा है:—

'त्यक्तबाह्यान्तरग्रन्थो निःकषायो जितेन्द्रियः।
परीषहसहः साधुर्जातरूपधरो मतः ॥१८॥७६॥'

पुराण (भूमिखण्ड, अध्याय ६६), प्रबोधचन्द्रोदयनाटक अङ्क ३ (दिगम्बर सिद्धान्तः, पञ्चतन्त्रः "एकाकी गृहसंत्यक्त पाणिपात्रो दिगम्बरः।"

—पञ्चमतन्त्र।

१. अष्ट० पृ० २००   २. वराह मिहिर १६।६१

३. अष्ट० पृ० ६३

"मूलाचार" में भी अचेलक मूल गुण की व्याख्या करते हुये साधु को निर्ग्रंथ भी कहा है :—

"वत्थाजिणवक्केण य अहवा पत्तादिणा असंवरणं ।[1]
णिब्भूसण णिग्गंथं अच्चेलक्कं जगदि पुज्जं ॥३०॥"

'भद्रवाहु चरित्र' के निम्न श्लोक भी 'निर्ग्रंथ' शब्द का भाव दिगम्बर प्रकट करते हैं :—[2]

'निर्ग्रंथ-मार्गमुत्सृज्य सग्रन्थत्वेन ये जडाः ।
व्याचक्षन्ते शिवं नृणां तद्वचो न घटामटेत् ॥६५॥'

अर्थ—"जो मूर्ख लोग निर्ग्रन्थ मार्ग के विना परिग्रह के के सद्भाव में भी मनुष्यों को मोक्ष का प्राप्त होना वताते हैं उनका कहना प्रमाणभूत नहीं हो सकता !"

"अहो निर्ग्रन्थता शून्यं किमिदं नौतनं मतम् !
न मेऽत्र युज्यते गन्तुं पात्रदण्डादिमण्डितम् ॥१४५॥"

अर्थ—"अहो ! निर्ग्रन्थता रहित यह दण्ड पात्रादि सहित नवीन मत कौन है ? इनके पास मेरा जाना योग्य नहीं है ।"

'भगवन्मदाग्नहादग्न्या गृह्णीतामर-पूजिताम् ।
निर्ग्रन्थपदवीं पूतां हित्वा सङ्गं मुदाऽखिलम् ॥१४६॥'

अर्थ—"भगवन् ! मेरे आग्रह से आप सब परिग्रह छोड़ कर पहले ग्रहण की हुई देवताओं से पूजनीय तथा पवित्र निर्ग्रन्थ अवस्था ग्रहण कीजिये ।" 'सङ्ग' शब्द का अर्थ अगले श्लोक में 'सङ्गं वसनादिकमञ्जसा' किया है । अतः यह स्पष्ट

---

१. मूला० पृ० १३ २. भद्र० ७८ व ८६

है कि निर्ग्रन्थ अवस्था वस्त्रादि रहित दिगम्वर है! किन्तु दुर्भाग्य से जैन-समाज में कुछ ऐसे लोग हो गए हैं जिन्होंने शिथिलाचार के पोषण के लिए वस्त्रादि परिग्रहयुक्त अवस्था को भी निर्ग्रन्थ मार्ग घोषित कर दिया है। आज उनका संप्रदाय **'श्वेताम्बर जैन'** नाम से प्रसिद्ध है! यद्यपि उनके पुरातन ग्रन्थ दिगम्वर भेष को प्राचीन और श्रेष्ठ मानते हैं; किन्तु अपने को प्राचीन संप्रदाय प्रकट करने के लिये वह वस्त्रादि युक्त भी निर्ग्रन्थमार्ग प्रतिपादित करते हैं। यह मान्यता पुष्ट नहीं है। इसलिये संक्षेप में इस पर यहां विचार कर लेना समुचित है।

श्वेताम्वर ग्रन्थ इस वात को प्रकट करते हैं कि दिगम्बर (नग्न) धर्म को भगवान् ऋषभदेव ने पालन किया था—वह स्वयं दिगम्वर रहे थे[1] और दिगम्वर वेष इतर वेषों से श्रेष्ठ हैं।[2] तथापि भगवान् महावीर ने निर्ग्रन्थ श्रमण के लिए दिग-

---

१. 'कल्पसूत्र'—JS pt I. p २८५।

२. आचाराङ्ग सूत्र में कहा है:—

Those are called naked, who in this world, never returning (to a worldly state), (follow) my religion according to the commandment This *hi hest doctrine* has here been declared for men."—JS. I. p. 56.

"आउरण वज्जियाणं विसुद्धजिणकप्पियाणन्तु।"

अर्थ—"वस्त्रादि आवरणयुक्त साधु से आवरण रहित जिनकल्पि साधु विशुद्ध है। संवत् १६३४ में मुद्रित प्रवचनसारोद्धार भाग ३ पृष्ठ १३)।

म्बरत्व का प्रतिपादन किया था और आगामी तीर्थंकर भी उसका प्रतिपादन करेंगे, यह भी श्वेताम्बर शास्त्र प्रकट करते है।[1] अत: स्वयं उनके अनुसार भी वस्त्रादियुक्त वेप श्रेष्ठ और मूल निर्ग्रन्थ धर्म नहीं हो सकता!

"श्वेताम्बराचार्य श्री आत्मारामजी ने भी अपने "तत्व-निर्णयप्रासाद" में 'निर्ग्रन्थ' शब्दकी व्याख्या दिगम्बर भाव-पोषक रूप में दी है; यथा—

'कंथा कौपीनोत्तरा संगादीनाम् त्यागिनो यथा जातरूप-धरा निर्ग्रन्था निष्परिग्रहा:।'

जैनेतर साहित्य और शिलालेखीय साक्षी भी उक्त व्याख्या की पुष्टि करती है। वैदिक साहित्य में 'निर्ग्रन्थ' शब्द का

---

१. "सेजहानामए अज्जोमए समणाण निग्गंथाणं नग्गाभावे मुण्ड भावे अण्हाणए अदन्तवणे अच्छत्तए अणुवाहणए भूमिसेज्जा फलग-सेज्जा कट्ठसेज्जा केसलोए बंभचेरवासे लद्धावलद्ध वित्तीओजाव पण्ण-त्ताओ एवामेव महा पउमेवि अरहा समणाणं णिग्गंथाणं नग्गाभावे जाव लद्धावलद्ध वित्तीओ जाव पन्नवेहिंत्ति।" अर्थात्-भगवान महावीर कहते हैं कि श्रमण निर्ग्रन्थ को नग्नभाव मुण्डभाव अस्नान, छत्र, नहीं करना पगरखी नहीं पहनना, भूमिशैया, केशलोंच ब्रह्मचर्य पालन, अन्य के गृह में भिक्षार्थ जाना, आहार की वृत्ति जैसे मैंने कही वैसे महापद्म अरहंत भी कहेंगे। ठाणा०, पृ० ८१३

'नगिणापिंडोलगाहमा। मुण्डाकण्डू विणट्ठण ॥७२॥'

—सयडांग

'अहाइ भगवं एवं—से दंते दविए वोसट्ठकाएत्तिवच्चे—माहणेत्ति व, समणेत्ति वा, 'भिक्खूत्तिवा, णिग्गंथेत्ति वा पडिभाह भंते।'

—सूयडांग २५८

व्यवहार 'दिगम्बर' साधु के रूपमें ही हुआ मिलता है। टीका-कार उत्पल कहते हैं :—[१]

"निर्ग्रन्थो नग्नः क्षपणकः ।"

इसी तरह सायणाचार्य भी निर्ग्रन्थ शब्द को दिगम्बर मुनि का द्योतक प्रगट करते हैं :—[२]

"कथा कौपीनोत्तरा संगादिनाम् त्यागिना, यथाजातरूप-धरा निर्ग्रन्था—निष्परिग्रहाः । इति संवर्तश्रुतिः ।"

हिन्दू पद्मपुराण' में दिगम्बर जैन मुनि के मुख से कहलाया गया है :—

"अर्हन्तो देवता यत्र, निर्ग्रन्थो गुरुरुच्यते ।"

अब यदि निर्ग्रन्थ के भाव वस्त्रधारी साधु के होते तो दिगम्बर मुनि उसे अपने धर्म का गुरु न बताते। इससे स्पष्ट है कि यहां भी निर्ग्रन्थ शब्द दिगम्बर मुनि के रूप में व्यवहृत हुआ है।

"ब्रह्माण्डपुराण" के उपोद्घात ३ अ० १४ पृ० १०४ में है :—

"नग्नादयो न पश्येयुः श्राद्धकर्म—व्यवस्थितम् ।।३४।।"

अर्थात्—"जब श्राद्धकर्म में लगे तब नग्नादिकों को न देखे।" और आगे इसी पृष्ठ पर ३९ वें श्लोक में लिखा है कि नग्नादिक कौन हैं ?

---

१. IHQ. III., 245

२. ऱ्व. ... ५२३—व दि. जैं० १०-१-४८

"वृद्ध श्रावक निर्ग्रन्थाः इत्यादि"।[1]

वृद्ध श्रावक शब्द क्षुल्लक-ऐलक का द्योतक है तथा निर्ग्रन्थ शब्द दिगम्बर मुनि का द्योतक है। अर्थात् जैनधर्म के किसी भी गृहत्यागी साधु को श्राद्धकर्म के समय नहीं देखना चाहिये, क्योंकि संभव है कि वह उपदेश देकर उसकी निस्सारता प्रकट कर दें। अतः वैदिक साहित्य के उल्लेखों से भी निर्ग्रन्थ शब्द नग्न साधु के लिये प्रयुक्त हुआ सिद्ध होता है।

बौद्ध साहित्य भी इस ही बात का पोषण करता है। उसमें 'निर्ग्रन्थ' शब्द साधुरूप में सर्वत्र नग्नमुनि के भाव में प्रयुक्त हुआ मिलता है। भगवान महावीर को बौद्ध साहित्य में उनके कुल अपेक्षा **निर्ग्रन्थ नातपुत्त** कहा है[2] और श्वेताम्बर जैन साहित्य से भी यह प्रकट है कि निर्ग्रन्थ महावीर **दिगम्बर** रहे थे। बौद्ध शास्त्र भी उन्हें निर्ग्रन्थ और अचेलक[3] प्रकट करते हैं। इससे स्पष्ट है कि बौद्धों ने 'निर्ग्रन्थ' और 'अचेलक' शब्दों को एक ही भाव (Sense) में प्रयुक्त किया है अर्थात् नग्न साधु के रूप में। तथापि बौद्ध साहित्य के निम्न उद्धरण भी इस ही बात के द्योतक हैं:—

। दीघनिकाय ग्रन्थ (१। ७८–७९ में लिखा है कि:—[4]

"Pasendi, King of Kosal saluted Niganthas."

---

१. वेंजै०, पृ० १४।

२. मज्झिमनिकाय १।९२; अंगुत्तरनिकाय १।२२०।

३. जातक भा० २ पृ० १८२—भमबु० २४५।

४. Indian Historical Quarterly, vol. I. p. 153.

अर्थात्—कौशल का राजा पसेनदी (प्रसेनजित) निगन्थों (नग्न जैन मुनियों) को नमस्कार करता था।

बौद्धों के "महावग्ग" नामक ग्रन्थ में लिखा है कि "एक बड़ी संख्या में निर्ग्रन्थगण वैशाली में, सड़क-सड़क और चौराहे चौराहे पर शोर मचाते दौड़ रहे थे।" इस उल्लेख से दिगम्बर मुनियों का उस समय निर्बाध रूप में राज मार्गों से चलने का समर्थन होता है। वे अष्टमी और चतुर्दशी को इकट्ठे होकर धर्मोपदेश भी दिया करते थे।[1]

'विशाखावत्थु' में भी **निर्ग्रन्थ** साधु को नग्न प्रकट किया है।[2] 'द घनिकाय' के 'पासादिक-सुत्तन्त' में है कि "जब निगन्ठ नातपुत्त का निर्वाण हो गया तो **निर्ग्रन्थ** मुनि आपस में झगड़ने लगे। उनके इस झगड़े को देखकर श्वेत वस्त्रधारी गृहीश्रावक बड़े दुखी हुये।[3] अब यदि निर्ग्रन्थ साधु भी श्वेत-वस्त्र पहनते होते तो श्रावकों के लिये वह एक विशेषण रूप में न लिखे जाते। अतः इससे भी 'निर्ग्रन्थसाधु' का नग्न होना प्रगट है।

'दाठावंसो' में अहिरिका' शब्द के साथ साथ **निगण्ठ** शब्द शब्द का प्रयोग जैन साधु के लिये हुआ मिलता है।[4] और

---

१. महावग्ग २।१।१ और भ० महावीर और म० बुद्ध पृ० २८०

२. भमबु० पृ० २५२।

३. "तस्स कालकिरियाय भिन्ना निगण्ठ द्वेधिक जाता, भण्डन जाता, कलह जाता.......वधो एव खोमजेनिगण्ठेसु नाथपुत्तियेसु वत्तति ये पि निगन्ठस्स नाथपुत्तस्स सावका गिही ओदातवसना.......दु रक्खाते इत्यादि।" (PTS: III 117-118) भमबु, पृ० २१४।

४. 'इमे अहिरिका सब्बे सद्धादिगुणवज्जिता। यद्धा सठाच दुप्पञ्ञा

'अह्रीक' या 'अहिरिक' शब्द नग्नता का द्योतक है। इसलिये बौद्ध साहित्यानुसार भी निर्ग्रन्थ साधुको नग्न मानना ठीक है।

शिलालेखीय साक्षी भी इसी बात को पुष्ट करती है। कदम्बवंशी महाराज श्रीविजयशिवमृगेश वर्मा ने अपने एक दानपत्र में अर्हन्त् भगवान और श्वेताम्बर महाश्रमण संघ तथा निर्ग्रन्थ अर्थात् दिगम्बर महाश्रमण संघ के उपभोग के लिये कालवङ्ग नामक ग्राम को भेंट में देने का उल्लेख किया है।[1] यह ताम्रपत्र ई० पांचवीं शताब्दि का है। इससे स्पष्ट है कि तब के श्वेताम्बर भी अपने को निर्ग्रन्थ न कहकर दिगम्बर संघ को ही निर्ग्रन्थ संघ मानते थे। यदि यह बात न होती तो वह अपने को 'श्वेतपट' और दिगम्बर को 'निर्गन्थ' न लिखाने देते।

कदम्ब ताम्रपत्र के अतिरिक्त विक्रम सं० ११६१ का ग्वालियर से मिला एक शिलालेख भी इसी बात का समर्थन करता है। उसमें दिगम्बर जैन यशोदेव को 'निर्ग्रन्थनाथ' अर्थात् दिगम्बर मुनियों के नाथ श्रीजिनेन्द्र का अनुयायी लिखा

सग्गमोक्ख विवन्धका ॥८८॥ इति सो चिन्तयित्वान गुहसीवो नराधिपो। पव्वाजेसि सकारट्ठा निगण्ठे ते अपेसके ॥८९॥'

—दाठावंसो पृ० १४

१. '............कदम्बानां श्रीविजयशिवमृगेशवर्म्मा कालवङ्ग ग्रामं त्रिधा विभज्य दत्तवान् अत्रपूर्व्वमर्हच्छाला परमपुष्कलस्थान निवासिभ्यः भगवदर्हन्महाजिनेन्द्र देवताभ्य एकोभागः द्वितीयोर्हत्प्रोक्तसद्धर्म्मकरण परस्य, श्वेतपट महाश्रमणसंघोपभोगाय तृतीयो निर्ग्रन्थमहाश्रमणसंघोपभोगायेति...............।''

—जैहि० भा० १४ पृ० २२६

है। अतः इससे भी स्पष्ट है कि 'निर्ग्रन्थ' शब्द दिगम्बरमुनि का द्योतक है।[1]

चीनी यात्री ह्वानसांग के वर्णन से भी यही प्रकट होता है कि 'निर्ग्रन्थ' का भाव नग्न अर्थात् दिगम्बर मुनि है :—

"The Li-hi (Nigranth'es) distinguish themselves by leaving their b'dies naked and pulli g out their hair" (St. Julien, Vienna, p 224)

अतः इन सब प्रमाणों से यह स्पष्ट है कि 'निर्ग्रन्थ' शब्द का ठीक भाव दिगम्बर (नग्न) मुनि का है।

१९. **निरागार**—आगार—घर आदि परिग्रह रहित दिगम्बर मुनि। परिगहरहिओ निरायारो'।[2]

२०. **पाणिपात्र**—करपात्र ही जिनका भोजनपात्र है, वह दिगम्बर मुनि।

'णिच्चेल पाणिपत्तं उवइट्ठं परम जिणवरि देहिं।'.

२१. **भिक्षुक**—भिक्षावृत्ति का धारक होने के कारण दिगम्बर मुनि इस नाम से प्रसिद्ध होता है। इसका उल्लेख 'मूलाचार' में मिलता है :—

---

१. The Gwalior inscrips: of Vik. 1161 (1104 A. D.).

"It was composed by a Jaina Yasodeva, who was an adherent of the Digambara or nude sect (Nigranthanatha)."—Catalogue of Archaeological Exhibits in the U. P. P. Museum Lucknow. Pt. I. (1915) P. 44.

२. अष्ट०, पृ०, ७०

'मणवचकायपउत्ती भिक्खू सावज्जकज्जसंजुत्ता ।
खिप्पं णिवारयंतो तीहिं दु गुत्तो हवदि एसो ॥३३१॥'

२२. **महाव्रती**[1]—पंच महाव्रतों को पालन करने के कारण दिगम्बर मुनि इस नाम से प्रगट हैं ।

२३. **माहण**—ममत्व त्यागी होने के कारण माहण नाम से दिगम्बर मुनि अभिहित होता है ।

२४. **मुनि**—दिगम्बर साधु। श्री कुन्दकुन्दाचार्य इस का उल्लेख यूं करते हैं :—[2]

"पंच महव्वयजुत्ता पंचिंदिय संजमा णिरावेक्खा ।
सज्झायझयणजुत्ता मुणिवर वसहा णिइच्छंति ॥"

२५. **यति**—दि० मुनि। कुन्दकुन्द स्वामी कहते हैं—

"सुद्धं संजमचरणं जइधम्मं णिक्कलं वोच्छे।"[3]

२६. **योगी**—योगनिरत होने के कारण दि० साधु का यह नाम है । यथा[4]—

"जं जाणियूण जोई जो अत्थो जोइ ऊण अणवरयं ।
अव्वावाहमणंतं अणोवयं लहइ णिव्वाणं ॥"

२७. **वातवसन**—वायुरूपी वस्त्रधारी अर्थात् दिगम्बरमुनि । "श्रमण दिगम्बराः श्रमण वातवसनाः"—इतिनिघण्टुः ।

२८. **विवसन**—वस्त्र रहित मुनि । वेदान्तसूत्र को टीका में दिगम्बर जैन मुनि 'विवसन' और 'विसिच्' कहे गए हैं ।

---

१. वृजैश, पृ० ४   २. अष्ट० पृ० १४२
३. अष्ट० पृ० ६६   ४. अष्ट०, पृ० २६०
५. वेदान्तसूत्र २-२-३३ शाङ्करभाष्य—वीर वर्ष २ पृ० ३१७

२९. **संयमी (संयत्)**–यमनियमों का पालक सो दिगंबर मुनि। उल्लेख यूं है :—

"पंचमहव्वय जुत्तो तिहि गुत्तिहिं जो स संजदो होइ।"[1]

३०. **स्थविर**–दीर्घ तपस्वी रूप दिगम्बर मुनि। 'मूलाचार' में उल्लेख इस प्रकार है[2] :—

"तत्थ ण कप्पइ वासो जत्थ इमे णत्थि पंच आधारा।
आइरियउवज्झाया पवत्त थेरा गणधरा य॥"

३१. **साधु**–आत्मसाधना में लीन दिगम्बर मुनि। इनको भी कुछ परिग्रह न रखने का विधान है[3] :—

३२ **संन्यस्त**[4]–संन्यास ग्रहण किये हुए होने के कारण दि० मुनि इस नाम से भी प्रख्यात हैं।

३३. **श्रमण**–अर्थात् समरसीभाव सहित दिगम्बर साधु। उल्लेख यूं है—

'वन्दे तव **सावण्णा**' (वन्दे तपः श्रमणान्)[5]

'**समणो**मेत्ति य पढमं विदिभं सव्वत्थ संजदो मेत्ति।'[6]

३४. **क्षपणक**–नग्न साधु। दिगम्बराचार्य योगीन्द्र देव ने यह शब्द दिगम्बर साधु के लिए प्रयुक्त किया है[7] :—

---

१. अष्ट० पृ० ७१ २. मूला०, पृष्ट ७१ ३. अष्ट, पृ० ६७
४. वृजैश०, पृ० ४ ५. अष्ट०, पृ० ३७ ६. मूला०, पृ० ४५
७. 'परमात्म प्रकाश'—र० मा० पृ० १४०

"तरुणउ बूढउ रूपडउ सूरउ पंडिउ दिव्वु ।
खवणउ वंदउ सेवडउ मूढ़उ मण्णइ सव्व ॥८३॥"

श्वेताम्बर जैन ग्रंथों में भी दिगम्बर मुनियों के लिये यह शब्द व्यवहृत हुआ है :—[1]

"खोमाणराजकुलजोऽपिसमुद्र सूरि—
र्गच्छं शशास किल दमवण प्रमाण(?) ।
जित्वा तदां क्षपणकान्स्ववशं वितेने
नागेंद्रदे (?) भुजगनाथनमस्य तीर्थे ॥"

श्री मुनिसुन्दर सूरि ने अपनी गुर्वावली में इस श्लोक के भाव में 'क्षपणकान्' की जगह **'दिग्वसनान्'** पद का प्रयोग करके इसे दिगम्बर मुनि के लिये प्रयुक्त हुआ स्पष्ट कर दिया है ।[2] श्वेताम्बराचाय हेमचन्द्र ने अपने कोष में 'नग्न' का पर्यायिवाची शब्द **'क्षपणक'** भी दिया है[3] । यही वात श्रीधर-सेन के कोष से भी प्रकट है[4] । अजैन शास्त्रों में भी 'क्षपणक' शब्द दिगम्बर जैन साधुओं के लिए व्यवहृत हुआ मिलता है । 'उत्पल' कहता है[5] :—

"निर्ग्रन्थो नग्नः क्षपणकः ।"

"अद्वैतब्रह्मसिद्धि" (पृ० १६६) से भी यही प्रकट है:—
"क्षपणका जैनमार्गसिद्धान्तप्रवर्तका इति केचित् ।"

---

१. रश्रा०, पृ० १३६
२. रश्रा०, पृ० १४०
३. 'नग्नो विवाससि मागधे च क्षपणके ।'
४. 'नग्नस्त्रिषु विवस्त्रे स्यात्पुंसि क्षपणवन्दिनोः ।'
५. IHQ. III, 245

"प्रबोधचंद्रोदय नाटक" (अङ्क ३) में भी यही निर्दिष्ट किया गया है[१] :—

"क्षपणकवेशो दिगम्बर सिद्धान्तः ।"

"पंचतंत्र-अपरीक्षितकारकतंत्र"[२] "दशकुमार चरित्र"[३] तथा "मुद्राराक्षस-नाटक"[४] में भी "क्षपणक" शब्द दिगम्बर मुनि के लिए व्यवहृत हुआ मिलता है। मोनियर विलियम्स के 'संस्कृतकोष' में भी इसका अर्थ यही लिखा है।[५]

इस प्रकार उपरोक्त नामों से दिगम्बर जैन मुनि प्रसिद्ध हुये मिलते हैं। अतएव इनमें से किसी भी शब्द का प्रयोग दिगम्बर मुनि का द्योतक ही समझना चाहिये।

---

१. J. G. XIV 48

२. (क्षपणक विहार गत्वा)—'एकाकीगृहसंत्यक्तः पाणिपात्रो दिगम्बरः ।'

३. द्वितीय उच्छ्वास वीर वर्ष २ पृ० ३१७

४. मुद्राराक्षस अङ्क ४—वीर, वर्ष ५ पृ० ४३०

५. "Ksapnaka is a religious mendicant, specially a Jain mendicant who wears no garment." Monier William's Sanskrit Dictionary p. 326.

इतिहासातीतकालमें दिगम्बर मुनि ।

"आतिथ्यरूपं मासरं महावीरस्य नग्नहुः
रूपमुपसदा मेतत्तिस्रो रात्रीः सुरासुता ॥"

—यजुर्वेद अ० १६ मंत्र १४ ।

भारतवर्ष का ठीक-ठीक इतिहास ईस्वी पूर्व आठवीं शताब्दी तक जाना जाता है । इसके पहले की कोई भी बात विश्वसनीय नहीं मानी जाती; यद्यपि भारतीय विद्वान अपनी-अपनी धार्मिक-वार्ता इस काल से भी बहुत प्राचीन मानते और उसे विश्वसनीय स्वीकार करते हैं । उनकी यह वार्ता 'इतिहासातीत काल' की वार्ता समझनी चाहिये । दिगम्बर मुनियों के विषय में भी यही बात है । भगवान ऋषभदेव द्वारा एक अज्ञात अतीत में दिगम्बर मुद्रा का प्रचार हुआ और तब से वह ईस्वी पूर्व आठवीं शताब्दी तक ही नहीं बल्कि आज तक निर्बाध प्रचलित है । दिगम्बर मुद्रा के इस इसिहास की एक सामान्य रूपरेखा यहां प्रस्तुत करना अभीष्ट है !

इतिहासातीत काल में प्राचीन जैन शास्त्र अनेक जैन-सम्राट और जैन तीर्थंकरों का होना प्रकट करते हैं और उनके द्वारा दिगम्बर मुद्रा का प्रचार भारत में ही नहीं बल्कि दूर-दूर देशों तक हो गया था । दिगम्बर जैन आम्नाय के प्रथमानुयोग

सम्बन्धी शास्त्र इस कथा-वार्ता से भरे हुये हैं, उनको हम यहां दुहराना नहीं चाहते; प्रत्युत जैनेतर शास्त्रों के प्रमाणों को उपस्थित करके हम यह सिद्ध करना चाहते हैं कि दिगम्बर मुनि प्राचीन काल से होते आये हैं और उनका विहार सर्वत्र निर्वाध रूप में होता रहा है।

भारतीय साहित्य में वेद प्राचीन ग्रंथ माने गये हैं। अतः सबसे पहिले उन्हीं के आधार से उक्त व्याख्या को पुष्ट करना श्रेष्ठ है। किन्तु इस सम्बन्ध में यह वात ध्यान देने योग्य है कि वेदों के ठीक-ठीक अर्थ आज नहीं मिलते और भारतीय धर्मों के पारस्परिक विरोध के कारण वहुत से ऐसे उल्लेख उनमें से निकाल दिये गये अथवा अर्थ वदलकर रक्खे गए हैं जिनसे वेद-वाह्य सम्प्रदायों का समर्थन होता था। इसी के साथ यह वात भी है कि वेदों के वास्तविक अर्थ आज ही नहीं मुद्दतों पहले लुप्त हो चुके थे[1] और यही कारण है कि एक ही वेद के अनेक विभिन्न भाष्य मिलते हैं। अतः वेदों के मूल वाक्यों के अनुसार उक्त व्याख्या की पुष्टि करना यहां अभीष्ट है!

'यजुर्वेद' अ० १९ मन्त्र १४ में, जो इस परिच्छेद के आरंभ में दिया हुआ है, अन्तिम तीर्थंकर महावीर का स्मरण नग्न विशेषण के साथ किया गया है। 'महावीर' और 'नग्न' शव्द

१. इ० पूर्व ७वीं शताव्दिका वैदिक विद्वान् कौत्स्य वेदों को अनर्थक वतलाया है। [अनर्थका हि मंत्राः। यास्क, निरुक्त १५-१] यास्क इसका समर्थन करता है। [निरुक्त १६।२ देखो 'Asur India'p. 1.V

जो उक्त मन्त्र में प्रयुक्त हुये हैं उनके अर्थ कोष ग्रन्थों में अंतिम जैन तीर्थंकर और दिगम्बर ही मिलते हैं।[1] इसलिये इस मंत्र का सम्बन्ध भगवान् महावीर से मानना ठीक है। वैसे बौद्ध साहित्यादि से स्पष्ट है कि महावीर स्वामी नग्न साधु थे। इस अवस्था में उक्त मंत्र में 'महावीर' शब्द 'नग्न' विशेषण सहित प्रयुक्त हुआ इस बात का द्योतक है कि उसके रचयिता को तीर्थंकर महावीर का उल्लेख करना इष्ट है। इस मंत्र में जो शेष विशेषण हैं वह भी जैन तीर्थंकर के सर्वथा योग्य हैं और इस मन्त्र का फल भी जैन शास्त्रानुकूल है। अतः यह मन्त्र भ० महावीर को दिगम्बर मुनि प्रकट करता है!

किन्तु भगवान महावीर तो ऐतिहासिक महापुरुष मान लिये गये हैं; इसलिये उनसे पहले के वैदिक उल्लेख प्रस्तुत करना उचित है। सौभाग्य से हमें ऋक्संहिता' (१०।१३६-२) में ऐसा उल्लेख निम्न शब्दों में मिल जाता है :—

"मुनयो वातवसनाः।"

भला यह वातवसन—दिगम्बर मुनि कौन थे? हिन्दू पुराण ग्रन्थ बताते हैं कि वे दिगम्बर जैन मुनि थे; जैसे कि हम पहले देख चुके हैं। और भी देखिये, श्रीमद्भागवत में जैन तीर्थङ्कर ऋषभदेव ने जिन ऋषियों को दिगम्बरत्व का उपदेश दिया था, वे 'वातरशनानां श्रमण' कहे गये हैं।[2] प्रो० अल्बर्ट

---

१. वेजैं०, पृ० ५५-६०

२. वेजै, पृ० ३

वेवर भी उक्त वाक्य को दिगम्बर जैन मुनियों के लिये प्रयुक्त हुआ व्यक्त करते हैं ![1]

इसके अतिरिक्त अथर्ववेद (अ० १५) में जिन 'व्रात्य' पुरुषों का उल्लेख है, वे दिगम्बर जैन ही हैं; क्योंकि व्रात्य 'वैदिक संस्कार हीन' बताये गये हैं[2] और उनकी क्रियायें दिगम्बर जैनों के समान हैं। वे वेदविरोधी थे। भल्ल, मल्ल, लिच्छवि, ज्ञातृ, करण खस और द्राविड़ एक व्रात्य क्षत्रीकी सन्तान बताये गये हैं[3] और ये सब प्रायः जैनधर्मभुक्त थे। ज्ञातृवंश में तो स्वयं भगवान् महावीर का जन्म हुआ था तथापि मध्यकाल में भी जैनी 'व्रती' (Verteis) नाम से प्रसिद्ध रह चुके हैं, जो 'व्रात्य' से मिलता जुलता शब्द है।[4] अच्छा तो इन जैनधर्म भुक्त व्रात्यों में दिगम्बर जैन मुनि का होना लाज़मी है।[5] 'अथर्ववेद' भी इस बात को प्रकट करता है। उसमें व्रात्य के दो भेद 'हीन व्रात्य' और 'ज्येष्ठ व्रात्य'

---

१. IA., Vol. XXX, p. 280

२. अमरकोष २।८ व मनु०, १०।२०; सायणाचार्य भी यही कहते हैं:—"व्रात्यो नाम उपनयनादि संस्कारहीनः पुरुषः। सोऽर्थाद् यज्ञादिवेद-विहिताः क्रियाः कर्तुं नाधिकारी। इत्यादि।"—अथर्ववेद संहिता पृ० २९३

३. मनु०, १०।२२

४. सुस०, पृ० ३९८ व ३९९

५. "व्रात्य" जैनी हैं, इसके लिए "भ० पार्श्वनाथ" की प्रस्तावना देखिए।

किये हैं। इनमें ज्येष्ठव्रात्य दिगम्बर मुनि का द्योतक है; क्योंकि उसे 'समनिचमेद्र' कहा गया है, जिसका भाव होता है 'अपेत-प्रजनना:'।[1] यह शब्द 'अह्रीक' शब्द के अनुरूप है और इससे ज्येष्ठव्रात्य का दिगम्बरत्व स्पष्ट है।

इस प्रकार वेदों से भी दिगम्बर मुनियों का अस्तित्व सिद्ध है।[2] अब देखिये उपनिषद् भी वेदों का समर्थन करते हैं। 'जाबालोपनिषत्' निर्ग्रन्थ शब्द का उल्लेख करके दिगम्बर साधु का अस्तित्व उपनिषद् काल में सिद्ध करता है :—

"यथाजातरूपधरो निर्ग्रन्थो निष्परिग्रह:..................

शुक्लध्यानपरायण:............।" (सूत्र ६)

निर्ग्रन्थ साधु यथाजात रूप धारी तथा शुक्ल ध्यान परायण होता है। सिवाय निर्ग्रन्थ (जैन) मार्ग के अन्यत्र

---

१. भपा०, प्रस्तावना पृ० ४४-४५

२. जैन ग्रन्थकार प्रातःस्मरणीय स्व० पं॰ टोडरमलजी ने आज से लगभग दो-ढाई सौ वर्ष पहले (!) निम्न वेद मंत्रों का उल्लेख अपने ग्रंथ 'मोक्षमार्ग प्रकाश' में किया है और ये भी दिगम्बर मुनियों के द्योतक हैं :—

१. ऋग्वेद में आया है—"ओ३म् त्रैलोक्य प्रतिष्ठितान् चतुर्विंशति तीर्थंकान् ऋषभाद्या वर्द्धमानान्तान् सिद्धान् शरणं प्रपद्य। ओ३म् पवित्रं नग्नमुपविप्रसामहे एषां नग्ना जातिर्येषां वीरा इत्यादि।"

२. यजुर्वेद में है—ओ३म् नमो अर्हंतो ऋषभो ॐ ऋषभपवित्रं पुरुहूत-मध्वरं यज्ञेषु नग्नं परममाह सस्तुतं वरं शत्रुं जयंतं पशुरिंद्रमाहूतिरिति स्वाहा।"—'ॐ नग्नं सुधीरं दिग्वाससं ब्रह्मगर्भं सनातनं उपैमि वीरं पुरुषमर्हंतमादित्य वर्णा तमसः पुरस्तात् स्वाहा।" (पृ० २०२)

कहीं भी शुक्ल ध्यान का वर्णन नहीं मिलता, यह पहले भी लिखा जा चुका है। 'मैत्रेयोपनिषद्' में 'दिगम्बर' शब्द का प्रयोग भी इसी बात का द्योतक है।[1] 'मुण्डकोपनिषद्' की रचना भृगु अङ्गरिस नामक एक भ्रष्ट दिग० जैन मुनि द्वारा हुई थी और उसमें अनेक जैन मान्यतायें तथा पारिभाषिक शब्द मिलते हैं। 'निर्ग्रन्थ' शब्द, जो खास जैनों का पारिभाषिक शब्द है, इसमें व्यवहृत हुआ है और उसका विशेषण केशलौंच (शिरोव्रतं विधिवद्यैस्तु चीर्णं) दिया है।[2] तथा 'अरिष्टनेमि' का स्मरण भी किया है, जो जैनियों के बाईसवें तीर्थङ्कर हैं।[3] इससे भी उस काल में दिगम्बर मुनियों का होना प्रमाणित है।

अब रामायणकाल' में दिगम्बर मुनियों के अस्तित्व को देखिये। 'रामायण' के 'बालकाण्ड' (सर्ग १४ श्लोक० २२)में राजा दशरथ श्रमणों को आहार देते बताये गये हैं ("तापसा भुञ्जते चापि श्रमणा भुञ्जते तथा") और 'श्रमण' शब्द का अर्थ 'भूषणटीका' में दिगम्बर मुनि किया गया है,[4] जो ठीक है, क्योंकि दिगम्बर मुनि का एक नाम 'श्रमण' भी है। तथापि जैन शास्त्र राजा दशरथ और रामचन्द्रजी आदि को जैनभक्त प्रगट करते हैं।[5] 'योगवाशिष्ट' में रामचन्द्रजी 'जिनभगवान'

१. "देशकालविमुक्तोऽस्मि दिगम्बर सुखोस्म्यहम् ।"—दिमु, पृ० १०

२. वीर, वर्ष ८ पृ० २५३

३. 'स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः ।' —ईशाद्य, पृ० १४

४. "श्रमणा दिगम्बराः श्रमणा वातवसनाः ।" ५. पद्मपुराण देखो

के समान होने की इच्छा प्रकट करके अपनी जैनभक्ति प्रकट करते हैं।[१] अतः रामायण के उक्त उल्लेख से उस काल में दिगम्बर मुनियों का होना स्पष्ट है।

"महाभारत" में भी 'नग्न क्षपणक' के रूप में दिगम्बर मुनियों का उल्लेख मिलता है,[२] जिससे प्रमाणित है कि "महाभारतकाल" में भी दिगम्बर जैन मुनि मौजूद थे। जैन-शास्त्रानुसार उस समय स्वयं तीर्थंकर अरिष्टनेमि विद्यमानथे।

हिन्दू पुराण ग्रंथ भी इस विषय में वेदादिग्रंथों का समर्थन करते हैं। प्रथम जैन तीर्थङ्कर ऋषभदेवजी को श्रीमद्भागवत और विष्णुपुराण दिगम्बर मुनि प्रगट करते हैं, यह हम देख चुके। अब 'विष्णुपुराण' में और भी उल्लेख है वह देखिये।[३] वहां मैत्रेय पाराशरऋषिसे पूछते हैं कि 'नग्न किसको कहते हैं?' उत्तर में पाराशर कहते हैं कि "जो वेदको न माने वह नग्न है।" अर्थात् वेदविरोधी नंगे साधु 'नग्न' हैं। इस संबंध में देव और असुर संग्राम की कथा कहकर किस प्रकार विष्णु के द्वारा जैनधर्म की उत्पत्ति हुई, यह वह कहते हैं। इसमें भी जैनमुनि का स्वरूप 'दिगम्बर' लिखा है :—

---

१. योगवासिष्ट अ० १५ श्लो० ८

२. आदिपर्व, अ० ३ श्लो० २६–२७

३. विष्णुपुराण तृतीयांश अ० १७ व १८–वेजै०, पृ० २५ व पुरातत्व ४।१८०

"ततो दिगम्वरो मुंडो वर्हिपत्र धरो द्विज।"

देवासुर युद्ध की घटना इतिहासातीत काल की है। अतः इस उल्लेख से भी उस प्राचीन काल में दिगम्बर मुनि का अस्तित्व प्रमाणित होता है। तथा वह निर्वाध विहार करते थे, यह भी इससे प्रकट है; क्योंकि इसमें कहा गया है कि वह दिगम्बर मुनि नर्मदा तट पर स्थित असुरों के पास पहुंचा और उन्हें निजधर्म में दीक्षित कर लिया![1]

'पद्मपुराण' प्रथम सृष्टि खण्ड १३ (पृ० ३३) पर जैनधर्म की उत्पत्ति के सम्बन्ध में एक ऐसी ही कथा है, जिसमें विष्णु द्वारा मायामोह रूप दिगम्बर मुनि द्वारा जैनधर्म का निकास हुआ बताया गया है:—

वृहस्पति साहाय्यार्थं विष्णुना मायामोह समुत्पादवम् दिगम्वरेण मायामोहेन दैत्यान् प्रति जैनधर्मोपदेश:दानवानां मायामोह मोहितानां गुरुणा दिगंवर जैनधर्म दीक्षा दानम्।

मायामोह को इसमें "योगी दिगम्वरो मुण्डो वर्हिपत्रधरो ह्यय" लिखा है।[2] इससे भी उक्त दोनों बातों की पुष्टि होती है।

इसी 'पद्मपुराण' में (भूमिखंड अ० ६६)[3] में राजा वेण की कथा है। उसमें लिखा है कि एक दिगम्वर मुनि ने उस राजा को जैनधर्म में दीक्षित किया था। मुनि का स्वरूप यूं लिखा है:—

---

१. पुरातत्व ४।१७६ २. वेजै० पृ० १५

३. R. C. Dutt, Hindu Shastras, pt. VIII pp 213-22 व JG XIV 89

"नग्नरूपो महाकाय: सितमुण्डो महाप्रभ: ।
मार्ज्जनीं शिखिपत्राणां कक्षायां स हि धारयन् ।।
गृहीत्वा पानपात्रश्च नारिकेलमयंकरे ।
पठमानो मरच्छास्त्रं वेदशास्त्रविदूषकम् ।।
यत्रवेणो महाराजस्तत्रोपापात्त्वरान्वित: ।
सभायां तस्य वेणस्य प्रविवेश सपापवान् ।।"

वह नग्न साधु महाराज वेण की राजसभा में पहुंच गया और धर्मोपदेश देने लगा ।[1] इससे प्रकट है कि दिगम्बर मुनि राजसभा में भी बे रोक टोक पहुंचते थे । वेण ब्रह्मा से छटी पीढ़ी में थे ।[2] इसलिये वह एक अतीव प्राचीनकाल में हुये प्रमाणित होते हैं ।

'वायुपुराण' में भी निर्ग्रन्थ श्रमणों का उल्लेख है कि श्राद्ध में इनको न देखना चाहिये ।[3]

'स्कंधपुराण' (प्रभासखण्ड के वस्त्रापथ क्षेत्र माहात्म्य अ० १६ पृ० २२१) में जैनतीर्थङ्कर नेमिनाथ को दिगम्बर शिव के अनुरूप मानकर जाप करने का विधान है :—[4]

---

१. उसने बताया कि मेरे मत में—

"अर्हन्तो देवता यत्र नि० ...... गुरुरुच्यते ।
दया वै परमो धर्मस्तत्र मोक्षः प्रदृश्यते ।"

यह सुनकर वेण जैनी हो गया । (एवं वेणस्य वै राज्ञः सृष्टिरेस्व महात्मनः । धर्माचार परित्यज्य कथं पापे मतिर्भवेत्।।) जैन सम्राट् खारवेल के शिलालेख से भी राजा वेण का जैनी होना प्रमाणित है । (जर्नल ऑव दी विहार एण्ड ओडीसा रिसर्च सोसाइटी, भा० १३ पृ० २२४)

२. JG. XIV 162 ३. पुरातत्व, पृ० ४ पृ० १८१

४. वेजे०, पृ० ३४ ।

"वामनोपि ततश्चक्रे तत्र तीर्थविगाहनम्
यादृग्रूप शिवोदृष्ट: सूर्यबिम्बे दिगम्बर ।।६४।।
पद्मासनस्थित: सौम्यस्तथातं तत्र संस्मरन् ।
प्रतिष्ठाप्य महामूर्ति पूजयामासवासरम् ।।६५।।
मनोभीष्ठार्थ–सिद्धचर्थं तत: सिद्धमवाप्तान् ।
नेमिनाथ शिवेत्येवं नामचक्रे शवामन: ।।६६।।"

इस प्रकार हिन्दूपुराण ग्रन्थ भी इतिहासातीतकाल में दिगम्वर जैन मुनियों का होना प्रमाणित करते हैं।

वौद्ध शास्त्रों में भी ऐसे उल्लेख मिलते हैं जो भगवान् महावीर के पहले दिगम्वर मुनियों का होना सिद्ध करते हैं। वौद्ध साहित्य में अन्तिम तीर्थङ्कर निर्ग्रन्थ महावीर के अतिरिक्त श्री सुपार्श्व[1] अनन्तजिन[2] और श्री पुष्पदन्त[3] के भी नामोल्लेख मिलते हैं। यद्यपि उनके सम्वन्ध में यह स्पष्ट उल्लेख नहीं है कि वे जैनतीर्थङ्कर और नग्न थे, किन्तु जब जैन साहित्य

१, 'महावग्ग' (१।२२–२३ SEB. p. 144) में लिखा है कि वुद्ध राजगृहमें जव पहले पहले धर्म प्रचार को आए तो लाठी वनमें "सुप्पतित्थ्य" के मंदिरमें ठहरे। इसके वाद इस मंदिर में ठहरनेका उल्लेख नहीं मिलत। इसका यही कारण है कि इस जैन मंदिर के प्रवन्धकोंने जव यह जान लिया कि म० वुद्ध अव जैनमुनि नहीं रहे तो उन्होंने उनका आदर करना रोक दिया। विशेष के लिये देखो ममवु० पृ० ५०-५१

२, उपक आजीवक अनन्तजिनको अपना गुरू वताता है। आजीविकोंने जैनधर्म से वहुत कुछ लिया था। अतः यह अनन्तजिन तीर्थङ्कर ही होना चाहिए। आरिय-परियेषण-सुत IHQ III, 247

३. 'महावस्तु में पुष्पदन्तको एक वुद्ध और ३२ लक्षणयुक्त महापुरुष वताया है। —ASM. p. 30.

में उस नामके दिगम्बर वेषधारी तीर्थङ्कर महामुनीश मिलते हैं, तब उन्हें जैन और नग्न मानना अनुचित नहीं है। वैसे बौद्ध साहित्य भ० पार्श्वनाथके तीर्थवर्ती मुनियों को नग्न प्रगट करता है[१]। अतः इस श्रोत से भी प्राचीनकाल में दिगम्बर मुनियों का होना सिद्ध है।

इस अवस्था में जैनशास्त्रों का यह कथन विश्वसनीय ठहरता है कि भ० ऋषभनाथ के समय से वरावर दिगम्बर जैन मुनि होते आरहे हैं और उनके द्वारा जनता का महत कल्याण हुआ है। जैन तीर्थङ्कर सवही राजपुत्र थे और वड़े २ राज्यों को त्यागकर दिगम्बर मुनि हुये थे। भारत के प्रथम सम्राट् भरत, जिनके नामसे यह देश भारतवर्ष कहलाता है, दिगम्बर मुनि हुये थे। उनके भाई श्रीवाहुवलिजी अपनी तपस्याके लिए प्रसिद्ध हैं। तपस्वी रूपमें उनकी महान् मूर्ति आजभी श्रवणवेलगोल में दर्शनीय वस्तु है। उनकी उस महाकाय नग्नमूर्ति के दर्शन करके स्त्री-पुरुष, वालक-वृद्ध भारतीय तथा विदेशी अपने को सौभाग्यशाली समझते हैं। रामचन्द्रजी, सुग्रीव, युधिष्ठर आदि अनेक दिगम्बर मुनि इस कालमें हुये हैं; जिनके भव्य-चरित्रोंसे जैन शास्त्र भरे हुये हैं। सारांशतः गतकाल में भारत में दिगम्बरत्व अपनी अपूर्व छटा दर्शा चुका है।

---

१. महावग्ग' [-७०-३] में है कि वौद्ध भिक्षुओंने नंगे और भोजन पात्रहीन मनुष्यों को दीक्षितकर लिया; जिसपर लोग कहने लगे कि वौद्धभी "तित्थियों" की तरह करने लगे। तित्थिय म. वुद्ध और भ. महावीर से प्राचीन साधु और खासकर दि. जैन साधु थे। इसलिये इन्हें भ. पार्श्वनाथ के तीर्थका मुनि मानना ठीक है। भमवु., पृ. २३६–२३७ व जैसिभा., १।२-३।२४-२६; तथा IA., august 1930.

[१०]

भ० महावीर और उनके समकालीन दिगम्बर मुनि !

'निगण्ठो, आवुसो नाथपुत्तो सव्वञ्ञु, सव्वदस्सावी अपरिसेसं ञाण दस्सनं परिजानाति: ।'

—मज्झिमनिकाय ।

'निगण्ठो नातपुत्तो संघी चेव गणी च गणाचार्यो च ञातो यसस्सी तित्थकरो साधु सम्मतो वहुजनस्स रत्तस्सू चिर पव्वजितो अद्धगतो वयो अनुप्पत्ता ।' —दीघनिकाय !

भगवान् महावीर वर्द्धमान ज्ञातृवंशी क्षत्रियों के प्रमुखराजा सिद्धार्थ और प्रियकारिणी त्रिशला के सुपुत्र थे । रानीत्रिशला वज्जियन राष्ट्रसंघ के प्रमुख लिच्छवि-अग्रणी राजा चेटक की सुपुत्री थी । लिच्छवि क्षत्रियोंका आवास समृद्धिशाली नगरी वैशाली में था । ज्ञातृक क्षत्रियों की वसती भी उसी के निकट थी । कुण्डग्राम और कोल्लगसन्निवेश उनके प्रसिद्ध नगर थे । भगवान् महावीर वर्द्धमान का जन्म कुण्डग्राम में हुआ था और वह अपने ज्ञातृवंश के कारण "ज्ञातृपुत्र" के नाम से भी प्रसिद्ध थे । वौद्ध ग्रन्थों में उनका उल्लेख इसी नाम से हुआ मिलता है और वहां उन्हें भ० गौतम बुद्ध का समकालीन वताया गया है । दूसरे शब्दों में कहें तो भ० महावीर आज से

लगभग ढाई हजार वर्ष पहले इस धरातल को पवित्र करते थे और वह क्षत्री राजपुत्र थे।[1]

भरी जवानी में ही महावीरजी ने राजपाट का मोह त्याग कर दिगम्बर मुनिका वेष धारण किया था और तीस वर्ष तक कठिन तपस्या करके वह सर्वज्ञ और सर्वदर्शी तीर्थ-ङ्कर होगये थे। 'मज्झिमनिकाय' नामक बौद्ध ग्रन्थ में उन्हें सर्वज्ञ, सर्वदर्शी और अशेष ज्ञान तथा दर्शनका ज्ञाता लिखा है[2]। तीर्थङ्कर महावीरने सर्वज्ञ होकर देश-विदेश में भ्रमण किया था और उनके धर्म प्रचार से लोगों का आत्मकल्याण हुआ था। उनका विहार संघ सहित होता था और उनकी विनय हर कोई करता था। बौद्ध ग्रंथ 'दीघनिकाय' में लिखा है कि "**निर्ग्रन्थ ज्ञातृपुत्र (महावीर) संघ के नेता हैं,** गणाचार्य हैं, दर्शन विशेष के प्रणेता हैं, विशेष विख्यात हैं, तीर्थङ्कर हैं, बहु मनुष्यों द्वारा पूज्य हैं, अनुभवशील हैं, बहुत कालसे साधु अवस्था का पालन करते हैं और अधिक वय प्राप्त हैं।"[3]

जैन शास्त्र 'हरिवंश पुराण' में लिखा है कि "भगवान महावीरने मध्यके (काशी, कौशल, कौशल्य, कुसंध्य, अश्वष्ट,

---

१. विशेषके लिये हमारा "भगवान महावीर और म० बुद्ध" नामक ग्रन्थ देखो।

२. मज्झिमनिकाय (P.T.S.) भा. १ पृ० ९२–९३

३. दीघनिकाय। (P.T S) भा. १ पृ० ४८–४९

त्रिगर्तपञ्चाल, भद्रकार, पाटच्चार, मौक, मत्स्य, कनीय, सूरसेन एवं वृकार्थक), समुद्रतट के (कलिङ्ग, कुरुजाङ्गल, कैकेय, आत्रेय, कांबोज, वाल्हीक, यवनश्रुति, सिंधु, गांधार, सौवीर, सूर, भोरु, दशेरुक, वाडवान, भारद्वाज और काथतोय) और उत्तर दिशा के (तार्ण, कार्ण, प्रच्छाल आदि) देशों में विहार कर उन्हें धर्म की ओर ऋजु किया था।"[1]

भगवान् महावीर का धर्म अहिंसा प्रधान तो था ही; किन्तु उन्होंने साधुओं के लिये दिगम्बरत्व का भी उपदेश दिया था।[2] उन्होंने स्पष्ट घोषित किया था कि जैनधर्म में दिगम्बर साधु ही निर्वाण प्राप्त कर सकता है। विना दिगम्बर वेष धारण किये निर्वाण प्राप्त कर लेना असंभव है। और उनके इस वैज्ञानिक उपदेश का आदर आवाल-वृद्ध-वनिताने किया था!

विदेह में जिस समय भ० महावीर पहुंचे तो उनका वहां लोगों ने विशेष आदर किया। वैशाली में उनके शिष्यों की संख्या अधिक थी। स्वयं राजा चेटक उनका शिष्य था। अङ्गदेश में जव भगवान पहुंचे तो वहां के राजा कुणिक अजात शत्रु के साथ सारी प्रजा भगवान की पूजा करने के लिये उमड़ पड़ी। राजा कुणिक कौशाम्बी तक महावीर स्वामी को पहुंचाने गये। कौशाम्बी नरेश ऐसे प्रतिबुद्ध हुये कि वह दिगम्बर मुनि हो गये। मगधदेश में भी भगवान् महा-

---

१. हरिवंशपुराण (कलकत्ता) पृ० १८
२. भमबु० ५४-८० व ठाणा, पृ० ८१३

वीर का खूब विहार हुआ था और उनका अधिक समय राज-गृह में व्यतीत हुआ था। सम्राट् श्रेणिक विम्बसार भगवान् के अनन्य भक्त थे और उन्होंने धर्मप्रभावना के अनेक कार्य किये थे। श्रेणिक के अभयकुमार, वारिषेण आदि कई पुत्र दिगम्बर मुनि हो गये थे। दक्षिण भारत में जब भगवान् का विहार हुआ तो हेमांग देश के राजा जीवंधर दिगम्बर मुनि हो गये थे। इस प्रकार भगवान् का जहां-जहां विहार हुआ वहां वहां दिगम्बर धर्म का प्रचार हो गया। शतानीक, उदयन, आदि राजा; अभय, नंदिषेण आदि राजकुमार; शालिभद्र, धन्यकुमार, प्रीतंकर आदि धनकुवेर; इन्द्रभूति, गौतम आदि ब्राह्मण विद्वान्; विद्युच्चर आदि सदृश पतितात्मायें—अरे न जाने कौन-कौन भगवान् महावीर की शरण में आकर मुनि हो गये।[१]

सचमुच अनेक धर्म-पिपासु भगवान के निकट आकर धर्मामृत पान करते थे। यहां तक कि स्वयं म० गौतमबुद्ध और उनके संघ पर भगवान के उपदेश का प्रभाव पड़ा था। बौद्ध भिक्षुओं ने भी नग्नता धारण करने का आग्रह म० बुद्ध से किया था।[२] इस पर यद्यपि म. बुद्धने नग्न वेषको बुरा नहीं बतलाया, किन्तु उससे कुछ ज्यादा शिष्य पाने का लाभ न देखकर उसे उन्होंने अस्वीकार कर दिया![३] पर तो भी एक

---

१. भमबु०, पृष्ठ ६५-६६ २. भमबु०, पृ० १०२-११०

३. 'महावग्ग' (८-२८-१) में है कि "एक बौद्ध भिक्षु ने म० बुद्ध के पास नंगे हो आकर कहा कि भगवन् ने संयमी पुरुष की बहुत प्रशंसा की
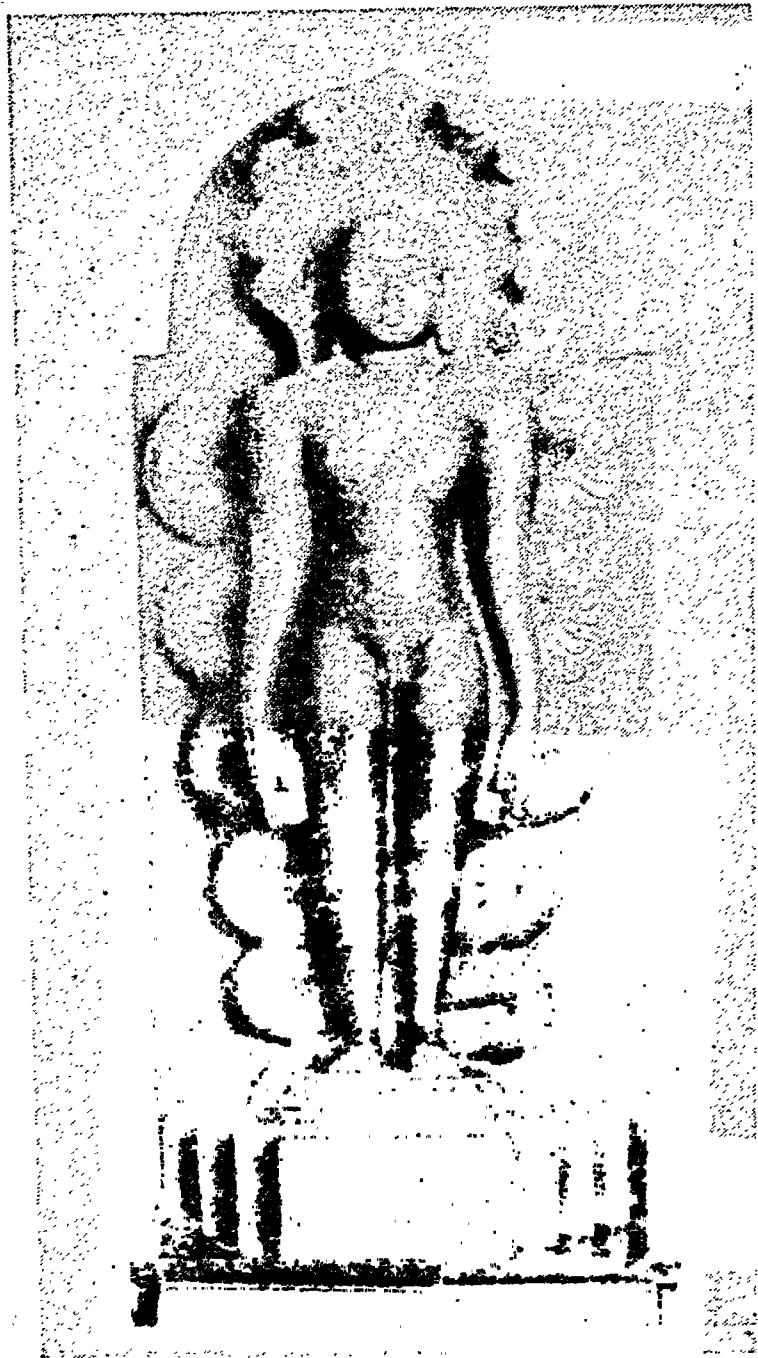
श्री १००८ भगवान पार्श्वनाथजी (पृष्ठ ८४)

(विक्टोरिया एण्ड अलबर्ट म्यूजियम लण्डन के सौजन्य व आज्ञा से)

समय नपाल के तांत्रिक वौद्धों में नग्न साधुओं का अस्तित्व हो गया था।[1] सच वात तो यह है कि नग्नवेष को साधुपद के भूषण रूप में सब ही को स्वीकार करना पड़ता है। उसका विरोध करना प्रकृति को कोसना है। उस पर म० बुद्ध के जमाने में तो उसका विशेष प्रचार था। अभी भ० महावीर ने धर्मोपदेश देना प्रारम्भ नहीं किया था कि प्राचीन जैन और आजीविक आदि साधु नंगे घूमकर उसका प्रचार कर रहेथे![2]

है, जिसने पापों को धो डाला है और कषायों को जीत लिया है तथा जो दयालु विनयी और साहसी है। हे भगवन्! यह नग्नता कई प्रकार से संयम और संतोष को उत्पन्न करने में कारणभूत है—इससे पाप मिटता, कषाय दवते, दयाभाव वढ़ता तथा विनय और उत्साह आता है। प्रभो! यह अच्छा हो यदि आप भी नग्न रहने की आज्ञा दें।" बुद्ध ने उत्तर में कहा कि "भिक्षुओं के लिये यह उचित न होगी—एक श्रमण के लिये यह अयोग्य है। इसलिये इसका पालन नहीं करना चाहिये। हे मूर्ख! तित्थियों की तरह तू भी नग्न कैसे होगा? हे मूर्ख, इससे नये लोग भी दीक्षित न होंगे।"

१. 'नेपाल में गूढ़ और तांत्रिक नाम कीं एक वौद्धधर्म की शाखा है। मि० हाग्सन ने लिखा है कि, इस शाखा में नग्न यति रहा करते हैं।'—जैसिभा०, १।२-३। पृ० २५

२. जेम्स एल्वी, प्रो० जैकोवी तथा डा० वुल्हर इस ही वात का समर्थन करते हैं कि दिगम्वरत्व म० बुद्ध के पहले से प्रचलित था और आजीविक आदि तीर्थंकों पर जैनधर्म का प्रभाव पडा था; यथाः—

"In James d' Alwis' paper (Ind. Anti. VIII) on the Six *Tirthakas* the "Digambaras" appear to have been regarded as an old order of ascetics and all of these heretical teachers betray the influence of Jainism in their doctrines."—IA, IX, 161.

Prof. Jacobi remarks: "The preceding four

देखिये वौद्ध ग्रन्थों के आधार से इस विषय में डॉ० स्टीवेन्सन लिखते हैं[१] :—

Tirthakas (Makkhali Goshal etc.) appear all to have adopted some or other doctrines or practices, which makes part of the Jaina system, probably from the Jains themselves ....It appears from the preceding remarks that Jaina ideas and practices must have been current at the time of Mahavira and independently of him This combined with other arguments, leads us to the opinion that the *Nir ranthas* were really in existence long before Mahavira."—(IA. IX, 162).

Prof. T. W. Rhys Davids notes in the "Vinaya Texts" that "the sect now called Jains are divided into two classes, Digambara & Swetambara; the latter of which eat naked They are known to be the successors of the school called Niganthas in the Pali Pitakas "—S B.E XIII 41.

Dr. Buhler writes, "From Buddhist accounts in their canonical works as well as in other books, it may be seen that this rival (Mahavira) was a dangerous and influential one and that even in Buddha's time his teaching had spread, considerably....Also they say in their description of other rivals of Buddha that these, in order to gain esteem, copied the *Nirgranthas* and went unclothed, or that they were looked upon by the people as *Nirgrantha* holy ones, because they happened to lost their clothes " —AISJ , p. 36

१. जैसिभा०, १।२-३।२४ "The people bought clothes in abundance for him, but he (Kassapa) refused them as he thought that if he put them on, he would not be treated with the same respect

"(एक तीर्थंक नग्न हो गया) लोग उसके लिये वहुतसे वस्त्र लाये, किन्तु उनको उसने स्वीकार नहीं किया। उसने यही सोचा-कि, यदि मैं वस्त्र स्वीकार करता हूं तो संसार में मेरी अधिक प्रतिष्ठा नहीं होगी। वह कहने लगा कि लज्जा रक्षक के लिए ही वस्त्रधारण किया जाता है और लज्जा ही पापका कारण है; हम **अर्हत्** हैं, इसलिए विषयवासना से अलिप्त होने के कारण हमें लज्जा की कुछ भी परवाह नहीं।' इसका यह कथन सुनकर वड़ी प्रसन्नता से वहां इसके पांच सौ शिष्य वन गए; वल्कि जंवूद्वीप में इसी को लोग सच्चा वुद्ध कहने लगे।"

यह उल्लेख संभवतः मक्खलि गोशाल अथवा पूर्ण काश्यप के सम्बन्ध में है। ये दोनों साधु भ० पार्श्वनाथ की शिष्यपरंपरा के मुनि थे।[१] मक्खलि गोशाल भ० महावीर से रुष्ट होकर अलग धर्मप्रचार करने लगा था और वह "आजीविक" संप्रदाय का नेता वन गया था। इस संप्रदाय का निकास प्राचीन जैनधर्म से हुआ था[२] और इसके साधु भी नग्न रहते थे।[३] पूरण-काश्यप गोशाल का साथी और वह भी दिगम्वर

Kassapa said, "Clothes are for the covering of shame and the shame is the effect of sin. I am an Arahat. As I am free from evil desires, I know no shame." etc. —BS, pp. 74-75

१. भमवु०, पृ० १७-२१

२. वीर, वर्ष ३ पृ० ३१२ व भमवु० पृ० १७-२१

३. 'आजीविको ति नग्न-समणको।'—पपञ्च-सूदनी १।२०६,—IHQ, III, 248.

रहा था। सचमुच दिगम्बर जैनधर्म पहले से ही चला आ रहा था, जिसका प्रभाव इन लोगों पर पड़ा था!

उस पर भगवान महावीर के अवतीर्ण होते ही दिगम्बरत्व का महत्व और भी बढ़ गया। यहां तक कि दूसरी सम्प्रदायों के लोग भी नग्न-वेष धारण करने को लालायित हो गये; जैसे कि ऊपर प्रकट किया गया है।

बौद्धशास्त्रों में निर्ग्रन्थ (दिगम्बर) महामुनि महावीर के विहार का उल्लेख भी मिलता है। 'मज्झिम निकाय' के 'अभय राजकुमार सुत्त' से प्रगट है कि वे राजगृह में एक समय रहे थे।[१] 'उपालीसुत' से भ० महावीर का नालन्द में विहार करना स्पष्ट है। उस समय उनके साथ एक बड़ी संख्या में निर्ग्रन्थ साधु थे।[२] 'सामगामसुत्त' से यह प्रगट है कि भगवान् ने पावा से मोक्ष प्राप्त की थी।[३] 'दीघनिकाय' का 'पासादिक सुत्त' भी इसी बात का समर्थन करता है।[४] 'संयुत्तनिकाय' से भगवान महावीर का संघसहित 'मच्छिकाखण्ड' में विहार करना स्पष्ट है।[५] 'ब्रह्मजालसुत्त' में

---

१. मज्झिम० (P. T. S.) भा० १ पृ० ३९२-भमवु० पृ० १९१

२, मज्झिम० १।३७१ व "The M N tells us that once Nigantha Nathaputta was at Nalanda with a big retinue of the Niganthas."—AIT., p. 147

३. मज्झिम० १।९३—भमवु० २०२

४. दीघ०, III 117-118,—भमवु० पृ० २१४

५. संयुत्त० ४। २८७—भमवु० पृ० २१६

राजगृह के राजा अजातशत्रु को भगवान महावीर के दर्शन के लिये गया लिखा है।[१] 'विनयपिटक' के महावग्ग' ग्रंथ से महावीर स्वामी का वैशाली में धर्मप्रचार करना प्रमाणित है।[२] एक 'जातक' में भ० महावीर को **'अचेलक नातपुत्त'** कहा गया है।[३] 'महावस्तु' से प्रकट है कि अवन्ती के राजपुरोहित का पुत्र नालक बनारस आया था। वहां उसने **निर्ग्रन्थ नाथपुत्त** (महावीर को) धर्म प्रचार करते पाया।[४] 'दीघनिकाय' से यह स्पष्ट है कि कौशल के राजा पसेनदी ने निर्ग्रन्थ नातपुत्त (महावीर) को नमस्कार किया था।[५] उसकी रानी मल्लिका ने निर्ग्रन्थों के उपयोग के लिये एक भवन बनवाया था।[६] सारांशत: बौद्ध शास्त्र भी भगवान् महावीर के दिगन्तव्यापी और सफल विहार की साक्षी देते हैं।

भगवान् के विहार और धर्मप्रचार से जैनधर्म का विशेष उद्योत हुआ था। जैनशास्त्र कहते हैं कि उनके सङ्घ में चौदह हजार दिगम्बर मुनि थे; जिनमें ९९०० साधारण मुनि, ३०० अङ्गपूर्वधारी मुनि, १३०० अवधिज्ञानधारी मुनि, ९०० ऋद्धिविक्रिया युक्त, ५०० चार ज्ञान के धारी, ७०० केवलज्ञानी

---

१. भमबु, पृ० २२२
२. महावग्ग ६ । ३१-११—भमबु पृ० २३१-२३६
३. जातक २ । १८२
४. ASM., p. 159.
५. दीघ० १।७८-७९—IHQ. I, 153.
६. LWB , p. 109

और ६०० अनुत्तरवादी थे। महावीर सङ्घ के ये दिगम्बर मुनि दस गणों में विभक्त थे और ग्यारह गणधर उनकी देख-रेख रखते थे।[१] इन गणधरों का संक्षिप्त वर्णन निम्न प्रकार है:—

(१) इन्द्रभूति गौतम, (२) वायुभूति, (३) अग्निभूति, ये तीनों गणधर मगध देश के गौर्वर ग्राम निवासी वसुभूति (शांडिल्य) ब्राह्मण की स्त्री पृथ्वी (स्थिण्डिला) और केसरी के गर्भ से जन्मे थे। गृहस्थाश्रम त्यागने के बाद ये क्रम से गौतम, गार्ग्य और भार्गव नाम से भी प्रसिद्ध हुये थे। जैन होने के पहले ये तीनों वेदधर्मपरायण ब्राह्मण विद्वान् थे। भ० महावीर के निकट इन तीनों ने अपने कई सौ शिष्यों सहित जैन-धर्म की दीक्षा ग्रहण की थी और ये दिगम्बर मुनि होकर मुनियों के नेता हुये थे। देश देशान्तर में विहार करके इन्होंने खूब धर्म प्रभावना की थी![२]

चौथे गणधर व्यक्त कोल्लग सन्निवेश निवासी धनमित्र ब्राह्मण की वारुणी[३] नामक पत्नी की कोख से जन्मे थे। दिगम्बर मुनि होकर यह भी गणनायक हुये थे।

पांचवे सुधर्म नामक गणधर भी कोल्लग सन्निवेश के निवासी धम्मिल ब्राह्मण के सुपुत्र थे। इनकी माता का नाम भद्दिला था। भ० महावीर के उपरान्त इनके द्वारा जैनधर्म का विशेष प्रचार हुआ था।[४]

---

१. भम०, ११७। २. वृजैश०, पृ० ६०-६१।

३. वृजैश०, पृ० ८। ४. वृजैश०, पृ० ८।

छठे मण्डिक नामक गणधर मौर्य्याख्यदेश निवासी धनदेव ब्राह्मण को विजया देवी स्त्री के गर्भ से जन्मे थे। दिगम्बर मुनि होकर यह वीर सङ्घ में सम्मिलित हो गये थे और देश-विदेश में धर्म प्रचार किया था।

सातवें गणधर मौर्यपुत्र भी मौर्याख्य देश के निवासी 'मौर्यक' ब्राह्मण के पुत्र थे। इन्होंने भी भ० महावीर के निकट दिगम्बरीय दीक्षा ग्रहण करके सर्वत्र धर्म-प्रचार किया था।

आठवें गणधर अकम्पन थे, जो मिथिलापुरी निवासी देव नामक ब्राह्मण की जयन्ती नामक स्त्री के उदर से जन्मे थे। इन्होंने भी खूब धर्मप्रचार किया था।

नवें धवल नामक गणधर कोशलापुरी के वसु विप्रके सुपुत्र थे। इनकी मां का नाम नन्दा था। इन्होंने भी दिगम्बर मुनि हो सर्वत्र विहार किया था।

दसवें गणधर मैत्रेय थे। वह वत्सदेशस्थ तुङ्गिकाख्य नगरी के निवासी दत्त ब्राह्मण की स्त्री करुणा के गर्भ से जन्मे थे। इन्होंने भी अपने गण के साधुओं सहित धर्म प्रचार किया था।

ग्यारहवें गणधर प्रभास राजगृह निवासी बल नामक ब्राह्मण की पत्नी भद्रा की कुक्षिसे जन्मे थे। और दिगम्बर मुनि तथा गणनायक होकर सर्वत्र धर्म का उद्योत करते हुए विचरे थे।[1]

---

१. वृजैश०, पृ० ८

इन गणधरों की अध्यक्षता में रहे उपरोक्त चौदह हज़ार दिगम्वर मुनियों ने तत्कालीन भारत का महान् उपकार किया था। विद्या, धर्मज्ञान और सदाचार उनके सद उद्योग से भारत में खूव फैले थे। जैन और बौद्धशास्त्र यही प्रकट करते हैं:—

"The Buddhist and Jaina texts tell us that the itinerant teachers of the time wandered about in the country, engagi g tl emselves where-ever they stopped in serious discussion cn matters relating to religion, philosophy, ethics morals and polity"[१]

भावार्थ—वौद्ध और जैन शास्त्रों से ज्ञात होता है कि तत्कालीन धर्म-गुरु देश में सर्वत्र विचरते थे और जहां वे ठहरते थे वहां धर्म, सिद्धांत, आचार, नीति और राष्ट्रवार्ता विपयक गम्भीर चर्चा करते थे। सचमुच उनके द्वारा जनता का महान् हित हुआ था।

वौद्ध शास्त्रों में भी भ० महावीर के सङ्घ के किन्हीं दिगम्वर मुनियों का वर्णन मिलता है; यद्यपि जैनशास्त्रों में उनका पता लगा लेना सुगम नहीं है। जो हो, उनसे यह स्पष्ट है कि भ० महावीर और उनके दिगम्वर शिष्य देश में निर्वाध विचरते और लोक कल्याण करते थे।

---

१. LWB., p. 50

सम्राट् श्रेणिक विम्वसार के पुत्र राजकुमार **अभय** दिगम्बर मुनि हो गये थे, यह वात बौद्धशास्त्र भी प्रकट करते हैं।[1] उन राजकुमार ने ईरान देश के वासियों में भी धर्मप्रचार कर दिया था। फलतः उस देश का एक राजकुमार आर्द्रक निर्ग्रन्थ साधु हो गया था।[2]

बौद्ध शास्त्र वैशाली के दिगम्बर मुनियों में सुणक्खत्त, कलारमत्थुक, और पाटिकपुत्र का नामोल्लेख करते हैं। सुणक्खत्त एक लिच्छवि राजपुत्र था और वह बौद्धधर्म छोड़कर निर्ग्रन्थ मत का अनुयायी हुआ था।[3]

वैशाली के सन्निकट एक कन्डरमसुक नामक दिगम्बर मुनि के आवास का भी उल्लेख बौद्ध शास्त्रों में मिलता है। उन्होंने यावत् जीवन नग्न रहने और नियमित परिधि में विहार करने की प्रतिज्ञा ली थी।[4]

श्रावस्ती के कुल पुत्र (Councillor's son) अर्जुन भी दिगम्बर मुनि होकर सर्वत्र विचरे थे।[5]

---

१. P.B., p 30 व भमबु०, पृ० २६६।

२. ADJB., I. p. 92 ३. भमबु, पृ० २५५।

४. "अचेलो कन्डरमसुको वेसालियम् पटिवसति लाभग्ग-प्पतोच एव पसग्ग, प्पत्तोच वज्जिगा में। तस्स सत्तवत्त-पदानि समत्तानि समादिन्नानि होन्ति—'यावजीवम् अचेलको अस्सम्, नय्त्थम् परिदहेय्यम्: यावजीवम् ब्रह्मचारी अस्सम् न मेथनुम् पटिसेवेय्यम्..........इत्यादि।" —दीघनिकाय (P. T. S.) भा० ३ पृ० ६-१० व भमबु., पृ० २१३।

५. PB. p. 83 व भमबु०, पृ० २६७।

यह दिगम्बर मुनि और इनके साथ जैन साध्वियाँ भी सर्वत्र धर्मोपदेश देकर मुमुक्षुओं को जैनधर्म में दीक्षित करते थे।[१] इसी उद्देश्य को लेकर वे नगरों के चौराहों पर जाकर धर्मोपदेश देते और वाद भेरी बजाते थे। बौद्ध शास्त्र कहते हैं कि "उस समय तीर्थंक साधु—प्रत्येक पक्षकी अष्टमी, चतुर्दशी और पूर्णमासी को एकत्र होते थे और धर्मोपदेश करते थे। लोग उसे सुनकर प्रसन्न होते और उनके अनुयायी बन जाते थे।"[२]

इन साधुओं को जहां भी अवसर मिलता था वहाँ ये अपने धर्म की श्रेष्ठता को प्रमाणित करके अवशेष धर्मों को गौण प्रकट करते थे।

भ० महावीर और म० गौतम बुद्ध दोनों ने ही अहिंसा धर्मका उपदेश दिया था; किन्तु भ० महावीर की अहिंसा में मन, वचन, काय पूर्वक जीवहत्या से विलग रहने का विधान था—भोजन या मौज शौक के लिये भी उसमें जीवों का प्राण-व्यपरोपण नहीं किया जा सकता था। इसके विपरीत म० बुद्ध की अहिंसामें बौद्ध भिक्षुओं को मांस और मत्स्य भोजन ग्रहण करने की खुली आज्ञा थी। एक वार नहीं अनेक वार स्वयं म० बुद्ध ने मांस-भोजन किया था।[३] ऐसे ही अवसरों पर दिगम्बर मुनि

---

१. बौद्धों के थेर-थेरी गाथाओं से यह प्रकट है। भमबु० पृ० २५६—२६८।

२. महावग्ग २।१।१ व भमबु०, पृ० २४० ३. भमबु० पृ० १७०

बौद्ध भिक्षुओं को आड़े हाथों लेते थे। एक मरतबा जब भगवान महावीर ने बुद्ध के इस हिंसक कर्म का निषेध किया, तो बुद्ध ने कहा: "भिक्षुओ, यह पहला मौका नहीं है बल्कि नातपुत्त (महावीर) इससे पहिले भी कई मरतबा खास मेरे लिये पके हुए मांस को मेरे भक्षण करने पर आक्षेप कर चुके हैं।"[१] एक दूसरी बार जब वैशाली में म० बुद्ध ने सेनापति सिंह के घर पर मांसाहार किया तो, बौद्ध शास्त्र कहता है कि "निर्ग्रन्थ एक बड़ी संख्या में वैशाली में सड़क-सड़क चौराहे-चौराहे पर यह शोर मचाते कहते फिरे कि आज सेनापति सिंहने एक बैल का वध किया है और उसका आहार श्रमण गौतम के लिये बनाया है। श्रमण गौतम जानबूझ कर कि यह बैल मेरे आहार के निमित्त मारा गया है पशु का मांस खाता है; इसलिए वही उस पशुके मारने के लिए वधक है।"[२] इन उल्लेखों से उस समय दिगम्बर मुनियों का निर्बाधरूप में जनता के मध्य विचरने और धर्मोपदेश देने का स्पष्टीकरण होता है।

---

१. Cowell J.takas II, 182—भमबु०, पृ० २४६।

२. "At that time a great numbar of the Nigathas (running) through Vaisali, from road to road, cross-way to cross-way, with outstretched arms cried, 'Today Siha, the General has killed a great ox and has made a meal for the Samana Gotama, the Samana Gotama knowingly eats this meat of an animal killed for this very purpose, & has that become virtually the author of that deed."—Vinaya Texts, S.B.E., Vol. XVII, p. 116 & HG., p. 85.

बौद्ध गृहस्थों ने कई मरतबा दिगम्बर मुनियों को अपने घर के अन्तःपुर में बुलाकर परीक्षा की थी।[1] सारांशतः दि० मुनि उस समय हाट—बाज़ार, घर—महल, रंक—राव—सब ठौर सब ही को धर्मोपदेश देते हुए विहार करते थे। अब आगे के पृष्ठों में भगवान महावीर के उपरान्त दिगम्बर मुनियों के अस्तित्व और विहार का विवेचन कर देना उचित है।

---

१. HG., pp. 89—95 व भमबु०, पृ० २४६—२५६।

[११]

नन्द-साम्राज्य में दिगम्बर-मुनि !

"King Nanda had taken away 'image' known as 'The Jina of Kalinga' .... Carrying away idols of worship as a mark of trophy and also showing respect to the particular idol is known in later history. The datum (1) proves that Nanda was a Jaina and (2) that Jainism was introduced in Orissa very early...."

—K. P. Jayaswal.[1]

शिशुनागवंश में कुणिक अजातशत्रु के उपरान्त कोई पराक्रमी राजा नहीं हुआ और मगधसाम्राज्य की बागडोर नन्दवंश के राजाओं के हाथ में आ गई। इस वंश में 'वर्द्धन्' (Increaser) उपाधि-धारी राजा नन्द विशेष प्रख्यात और प्रतापी था। उसने दक्षिण पूर्व और पश्चिमीय समुद्रतटवर्त्ती देश जीत लिये थे तथा उत्तर में हिमालय प्रदेश और काश्मीर एवं अवन्ती और कलिङ्ग देश को भी उसने अपने आधीन कर लिया था।[2] कलिङ्ग-विजय में वह वहां से 'कलिङ्गजिन' नामक एक प्राचीन मूर्त्ति ले आया था और उसे विनय के साथ उसने अपनी राजधानी पाटलीपुत्र में स्थापित किया

---

१. JBORS., Vol, XIII p 245.
२. Ibid., Vol. I. pp. 78-79.

था। उसके इस कार्य से नन्दवर्द्धन का जैनधर्मावलम्वी होना स्पष्ट है। 'मुद्राराक्षस नाटक' और जैनसाहित्य से इस वंश के राजाओं का जैनी होना सिद्ध है और उनके मन्त्री भी जैन थे। अन्तिम नन्द का मन्त्री राक्षस नामक नीतिनिपुण पुरुष था। मुद्राराक्षस' नाटक में उसे जीवसिद्धि नामक क्षपणक अर्थात् दिगम्वर जैन मुनि के प्रति विनय प्रगट करते दर्शाया गया है तथा यह जीवसिद्धि सारे देश में—हाटबाज़ार और अन्तःपुर—सव ही ठौर वेरोक टोक विहार करता था, यह वात भी उक्त नाटक से स्पष्ट है।[1] ऐसा होना है भी स्वाभाविक; क्योंकि जव नन्दवंश के राजा जैनी थे तो उनके साम्राज्य में दिगम्वर जैन मुनि की प्रतिष्ठा होना लाज़मी थी। जनश्रुति से यह भी प्रगट है कि अन्तिम नन्दराजा ने 'पञ्चपहाड़ी' नामक पाँच स्तूप पटना में वनवाये थे।[2] 'पञ्चपहाड़ी' (राजगृह) जैनों का प्रसिद्ध तीर्थ है। नन्द ने उसी के अनुरूप पाँच स्तूप पटना

---

१. Chanaka says:—

"There is a fellow of my studies, deep
The Brahman Indusarman, him I sent,
When just I vowed the death of Nanda, hither;
And here repairing as a Buddha (क्षपणक) mendicant."*

* Having the marks of a Ksapanaka .... the Individual is a Jaina........Raksasa repose in him implicit confidence.-HDW., p. 10

२. "Sir G. Grierson informs me that the Nandas were reputed to be bitter enemies of the Brahmans ....the Nandas were Jainas and therefore hateful to

में बनवाये प्रतीत होते हैं। यह कार्य्य भी उनकी मुनि-भक्ति का परिचायक है।

जैन कथाग्रन्थों से विदित है कि एक नन्द राजा स्वयं दिगम्बर जैन मुनि हो गये थे तथा उनके मंत्री शकटालभी जैनी थे।[1] शकटाल के पुत्र स्थूलभद्र भी दिगम्बर मुनि हो गये थे।[2] सारांश यह कि नन्द-साम्राज्य के प्रसिद्ध पुरुषों ने स्वयं दिगम्बर मुनि होकर तत्कालीन भारत का कल्याण किया था और नन्दराजा जैनों के संरक्षक थे।[3]

शिशु नागवंश के अन्त और नन्दराज्य के आरम्भ काल में जम्बू स्वामी अन्तिम केवली सर्वज्ञ ने नग्नवेष में सारे भारत का

---

the Brahmans ......The supposition that the last Nanda was either a Jaina or Buddhist is strengthened by the fact that one form of the local tradition attributed to him the erection of the Panch Pahari at Patna, a group of ancient stupas, which be either Jaina or Buddhist."—EHI., p 44

उनका जैन होना ठीक है, क्योंकि नन्दवर्द्धन के जैन होने में संदेह नहीं है और "मुद्राराक्षस" नन्दमंत्री आदि को जैन प्रगट करता है।

१. हरिषेण कथाकोष तथा आराधना कथाकोष देखो।

२. सातवीं गुजराती साहित्य परिषद् रिपोर्ट, पृष्ठ ४१ तथा "भद्रबाहु चरित्र" (पृष्ठ ४१) में स्थूलभद्रादिको दिगम्बर मुनि लिखा है। (रामल्यस्थूल भद्राख्य स्थूलाचार्यादियोगिनः।)

३. "Nanda were Jains"—CHI., Vol. I. p. 164

The nine kings of the Nanda dynasty of Magadha were patrons of the Order (Sangha of Mahavira)."—HARI, p. 59.

भ्रमण किया था। कहते हैं कि बंगाल के कोटिकपुर नामक स्थान पर उन्होंने सर्वज्ञता प्राप्त की थी।[१] उनका विहार बंगाल के प्रसिद्ध नगर पुंड्रवर्द्धन, ताम्रलिप्त आदि में हुआ था। एक दफा वह मथुरा भी पहुंचे थे। अन्त में जब वह राजगृह विपुलाचल से मुक्त हो गये, तो मथुरा में उनकी स्मृति में एक स्तूप बनाया गया था।[२]

मथुरा जैनों का प्राचीन केन्द्र था। वहां भ० पार्श्वनाथजी के समय का एक स्तूप मौजूद था।[३] इसके अतिरिक्त नन्दकाल में वहां पांच सौ एक स्तूप और बनाये गये थे; क्योंकि वहां से इतने ही दिगम्बर मुनियों ने समाधिमरण किया था। ये सब मुनि श्री जम्बूस्वामी के शिष्य थे। जिस समय जम्बूस्वामी दिगंबर मुनि हुये तो उस समय विद्युच्चर नामक एक नामी डाकू भी अपने पाँच सौ साथियों सहित दिगम्बर मुनि हो गया था। एक दफा यह मुनिसङ्घ देश-विदेश में विहार करता हुआ शाम को मथुरा पहुंचा। वहां महाउद्यान में वह ठहर गया। उपरान्त रात को उन मुनियों पर वहां महा

---

१. "In Kotikapur Jambu attained emancipation (? Omniscience)"

—वीर, वर्ष ३ पृ० ३७।

२. अनेकान्त, वर्ष १ पृ० १४१:—
"मगधादिमहादेश मथुरादिपुरीस्तथा। कुर्वन् धर्मोपदेशं स केवलज्ञान-लोचनः॥११८॥१२॥ वर्षाण्टादशपर्यन्तं स्थितस्तत्र जिनाधिपः, ततो जगाम निर्वाणं केवली विपुलाचलात्॥११६॥—जम्बूस्वामी चरित्

३. JOAM., p. 13
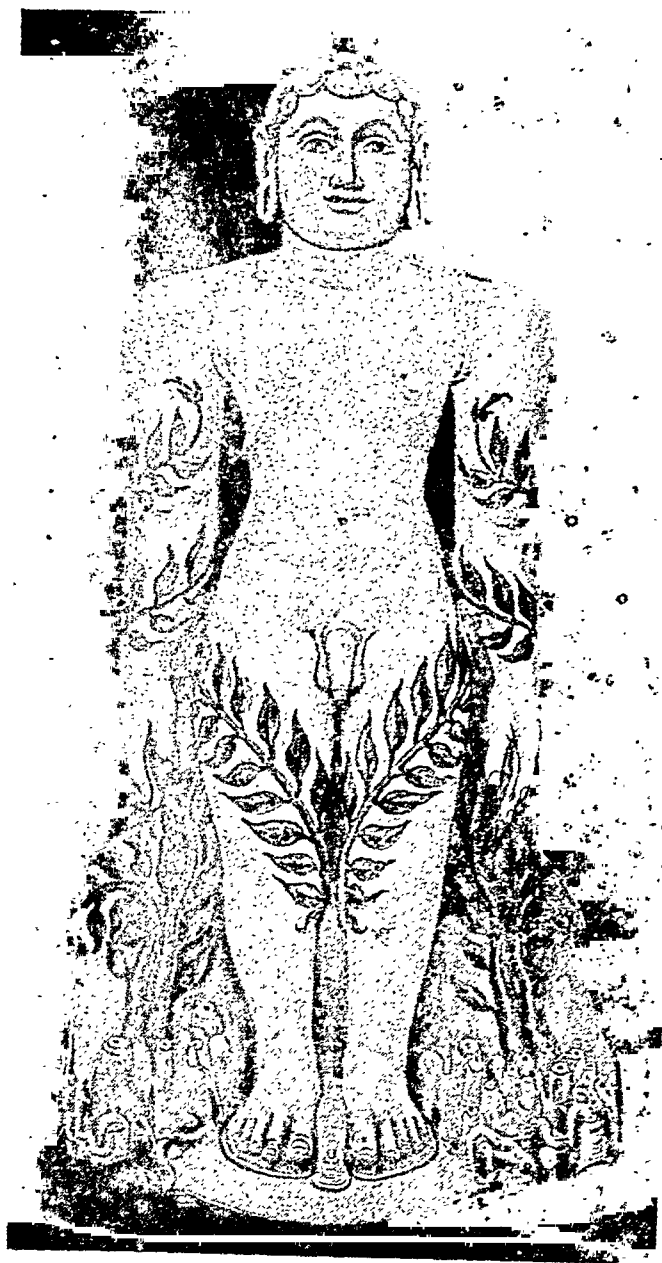
श्री बाहुबलि गोम्मट स्वामी, श्रवण बेलगोला। [पृ० ८४]

उपसर्ग हुआ और उसके परिणामरूप मुनियों ने साम्यभाव से प्राण त्याग किये। इस महत्वशाली घटना की स्मृति में ही वहां पांच सौ एक स्तूप बना दिये गये थे।[1]

इस प्रकार न जाने कितने मुनि-पुङ्गव उस समय भारत में विहार करके लोगों का हितसाधन करते थे! उनका पता लगा लेना कठिन है! नन्द-साम्राज्य में उनको पूरा-पूरा संरक्षण प्राप्त था!

[१२]

मौर्य्य-सम्राट और दिगम्बर मुनि!

"भद्रबाहुवचः श्रुत्वा चन्द्रगुप्तो नरेश्वरः।
अस्यैवयोगिनं पार्श्वे दधौ जैनेश्वरं तपः ॥३८॥
चन्द्रगुप्तमुनिः शीघ्रं प्रथमो दशपूर्विणाम्।
सर्वसंघाधिपो जातो विशाखाचार्यसंज्ञकः ॥३९॥
अनेन सह संघोपि समस्तो गुरुवाक्यतः।
दक्षिणापथदेशस्थ पुन्नाट विषयं ययौ ॥४०॥"

—हरिषेण कथाकोष[2]

---

१. अनेकान्त वर्ष १ पृ० १३९-१४१—

'अथ विद्युच्चरो नाम्ना पर्यटन्निह सन्मुनिः ॥
एकादशांगविद्यायामधीतो विदधत्तपः।
अथान्येद्युः सनिःसंगो मुनि पंचशतैर्वृतः ॥
मथुरायां महोद्यान–प्रदेशेष्वगमन्मुदा।
तदागच्छत्तस वैलक्ष्यं भानुरस्ताचलं श्रितः ॥इत्यादि॥"

२, भा० १४ पृ० २१७।

'मउउधरेसु चरिमो जिणदिक्खं धरदि चन्दगुत्तो य ।'

—त्रिलोक प्रज्ञप्ति[१]

नन्द राजाओं के पश्चात् मगध का राजछत्र चन्द्रगुप्त नामके एक क्षत्रिय राजपुत्र के हाथ लगा था। उसने अपने भुजविक्रम से प्रायः सारे भारत पर अधिकार कर लिया था और 'मौर्य्य' नामक राजवंश की स्थापना की थी। जैनशास्त्र इस राजा को दिगम्बर मुनि श्रमणपति श्रुतकेवली भद्रबाहु का शिष्य प्रकट करते हैं।[२] यूनानी राजदूत मेगास्थनीज़ भी चन्द्रगुप्त को श्रमण-भक्त प्रकट करता है।[२] सम्राट चन्द्रगुप्त ने

---

१. जैहि०, भा० १३ पृ० ५३१

२. "चन्द्रावदातसत्कीर्तिश्चन्द्रवन्मोदकर्तृणाम्। चन्द्रगुप्तिर्नृपस्तत्रा ऽचकच्चारुगुणोदयः ॥७॥२॥

ज्ञानविज्ञानपारीणो जिनपूजापुरंदरः। चतुर्द्धा दान दक्षो यः प्रतापजित भास्करः ॥८॥" —भद्र०

"समासाद्य स सूरीशं (भद्रबाहु) परीत्य प्रश्रयान्वितः। समभ्यर्च्य गुरोः पादावन्गंधसदकादिकैः ॥२६॥"—भद्र०

२. "That Chandragupta was a member of the Jaina community is taken by their writers as a matter of course, and treated as a known fact, which needed neither argument nor demonstration. The documentory evidence to this effect is of comparatively early date, and apparently absolved from all suspicion............The testimony of Megasthenes would likewise seem to imply that Chandragupta submitted to the devotional teaching

अपने वृहत् साम्राज्य में दिगम्बर मुनियों के विहार और धर्म-प्रचार करने की सुविधा की थी। श्रमणपति भद्रवाहु के संघ की वह राजा वहुत विनय करता था। भद्रवाहुजी वङ्गाल देश के कोटिकपुर नामक नगर के निवासी थे।[१] एक दफ़ा वहाँ श्रुतकेवली गोवर्द्धन स्वामी अन्य दिगम्बर मुनियों सहित आ निकले; भद्रवाहु उन्हींके निकट दीक्षित होकर दिगम्बर मुनि हो गये। गोवर्द्धन स्वामी ने संघसहित गिरनारजी की यात्रा का उद्योग किया था।[२] इस उल्लेख से स्पष्ट है कि उनके समय में दिगम्बर मुनियों को विहार करने की सुविधा प्राप्त थी। भद्रवाहुजी ने संघसहित देश-देशान्तर में विहार किया था और वह उज्जैनी पहुंचे थे। वहीं से उन्होंने दक्षिण देश की ओर संघ सहित विहार किया था; क्योंकि उन्हें मालूम हो गया था कि उत्तरापथ में एक द्वादशवर्षीय विकराल दुष्काल पड़ने को है जिसमें मुनिचर्या का पालन दुष्कर होगा।[३] सम्राट् चन्द्रगुप्त ने भी इसी समय अपने पुत्र को राज्य देकर भद्रवाहु स्वामी के निकट जिनदीक्षा धारण की थी और वह अन्य दिगम्बर मुनियों

---

of the *Sramanas* as opposed to the doctrines of the Brahmanas. (Strabo, XV. i 60)."—JRAS, Vol IX pp. 175-176.

१. "तमालपत्रवत्तस्य देशोऽभूत्पौण्ड्रवर्द्धनः।"—"तत्र कोट्टपुरं रम्यं द्योतते नाकखण्डवत्।"

'भद्रवाहुरितिख्यातिं प्राप्तवान्बन्धुवर्गतः।" इत्यादि"—भद्र०, पृ० १०—२३।

२. "चिकीर्पुर्नेमितीर्थेशयात्रां रैवतकाचले।"—भद्र० पृ० १३।

३. भद्र० पृ० २७—५१

के साथ दक्षिण भारत को चले गये थे।[1] श्रवणबेलगोल का कटवप्र नामक पर्वत उन्हींके कारण "चन्द्रगिरि" नाम से प्रसिद्ध हो गया है, क्योंकि उस पर्वत पर चन्द्रगुप्त ने तपश्चरण किया था और वहीं उनका समाधिमरण हुआ था।[2]

विन्दुसार ने जैनियों के लिये क्या किया ? यह ज्ञात नहीं है; किन्तु जब उसका पिता जैन था, तो उस पर जैन प्रभाव पड़ना अवश्यम्भावी है।[3] उस पर उसका पुत्र अशोक अपने

---

१. Jaina tradition avers that Chandragupta Maurya was a Jaina, and that, when a great twelve years' famine occurred, he abdicated accompanied Bhadrabahu, the last of the saints called *Srutakevalins*, to the, South, lived as an ascetic at Sravanabelgola in Mysore and ultimately committed Suicide by Starvation at that place, where his name is still held in remembrance. In the second edition of this book I rejected that tradition and dismissed the tale as 'imaginary history, But on reconsideration of the whole evidence and the objections urged against the credibility of the story, I am now disposed to believe that the tradition probably is true in its main outline and that chandragupta really abdicated and became a Jaina ascetic."

—Sir Vincient Smith, EHI, p. 154

२. Narasimhachar's Sravanabelagcla, p. 25-40, विको०, भाग ७ पृ० १५६-१५७ तथा जैशिसं० भूमिका पृ० ५४—७०

३. "We may conclude that Vindusara followed the faith (Jainism) of his father (Chandragupta)

प्रारम्भिक जीवन में जैनधर्मपरायण रहा था; वल्कि अन्त समय तक उसने जैनसिद्धान्तों का प्रचार किया, यह अन्यत्र सिद्ध किया जा चुका है।[१] इस दिशा में विन्दुसार का जैनधर्म प्रेमी होना उचित है। अशोक ने अपने एक स्तम्भलेख में स्पष्टतः निर्ग्रन्थ साधुओं की रक्षा का आदेश निकाला था।[२]

सम्राट् सम्प्रति पूर्णतः जैनधर्म परायण थे। उन्होंने जैन मुनियों के विहार और धर्मप्रचार की व्यवस्था न केवल भारत में ही की, वल्कि विदेशों में भी उनका विहार कराकर जैनधर्म का प्रचार करा दिया।[३]

उस समय में दशपूर्व के धारक विशाख, प्रोष्ठिल, क्षत्रिय

---

and that, in the same bel ef, whatever it may prove to have been, his childhood's lessons were first learnt by Asoka." —E thomas, JRAS. IX. 181.

१. हमारा "सम्राट अशोक और जैनधर्म" नामक ट्रैक्ट देखो।

२. स्तम्भलेख नं० ७

"The founder of the Maurayan dynasty, Chandragupta, as well as his Brahmin minister, Chanakya, were also inclined towards Mahavira's doctrines and even Asoka is said to have been laid towards Buddhism by a previous study of Jain teaching." —E. B. Havell, HARI., p. 59.

३. कुणालसूनुस्त्रिखण्डभरताधिपः परमार्हतो अनार्य्यदेशेष्वपि प्रवर्तित श्रमणविहारः सम्प्रति महाराजाऽसौऽभवत्"

—पाटलीपुत्र कल्पग्रन्थ EHI.P.P. २०२–२०३

आदि दिगम्बर जैनाचार्यों के संरक्षण में रहा जैनसंघ खूब फला फूला था। जिस साम्राज्य के अधिष्ठाता ही स्वयं जब दिगम्बर मुनि होकर धर्मप्रचार करने के लिये तुल गये तो भला कहिये जैनधर्म की विशेष उन्नति और दिगम्बर मुनियों की बाहुल्यता उस राज्य में क्यों न होती ! मौर्यों का नाम जैनसाहित्य में इसीलिए स्वर्णाक्षरों में अङ्कित है !

[१३]

सिकन्दर महान् एवं दिगम्बर मुनि !

"Onesikritos says that he himself was sent to converse with these sages. For Alexander heard that these men (Sramans) went about naked, inused themselves to hardships and were held in highest honour; that when invited they did not go to other persons" —Mc Crindle, Ancient India, p. 70

जिस समय अन्तिम नन्दराजा भारत में राज्य कर रहे थे और चन्द्रगुप्त मौर्य अपने साम्राज्य की नींव डालने में लगे हुये थे, उस समय भारत के पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्त पर यूनान का प्रतापी वीर सिकन्दर अपना सिक्का जमा रहा था। जब वह तक्षशिला पहुंचा तो वहां उसने दिगम्बर मुनियों की बहुत प्रशंसा सुनी। उसने चाहा कि वे साधुगण उसके सम्मुख लायें जायँ; किन्तु ऐसा होना असंभव था, क्योंकि दिगम्बर

मुनि किसी का शासन नहीं मानते और न किसी का निमंत्रण स्वीकार करते हैं। उस पर सिकन्दर ने अपने एक दूत को, जिसका नाम अन्शकृतस (Oneskritos) था, उनके पास भेजा। उसने देखा, तक्षशिला के पास उद्यान में वहुत से नंगे मुनि तपस्या कर रहे हैं। उनमें से एक कल्याण नामक मुनि से उसकी वातचीत होती रही थी। मुनि कल्याण ने अन्शकृतस से कहा था कि यदि तुम हमारे तप का रहस्य समझना चाहते हो तो हमारी तरह दिगम्वर मुनि हो जाओ।[1] अंशकृतस के लिये ऐसा करना असंभव था। आखिर उसने सिकन्दर से जाकर इन मुनियों के ज्ञान और चर्या की प्रशंसनीय वातें कहीं। सिकन्दर उनसे वहुत प्रभावित हुआ और उसने चाहा कि इन ज्ञान ध्यान-तपोरक्त का प्रकाश मेरे देश में भी पहुंचे। उसकी इस शुभ कामना को मुनि कल्याण ने पूरा किया था। जव

---

१. Al., p. 69. "(Alexander) despatched Onesikritos to them (gymnosophists), who relates that he found at the distance of 20 stadia from the city (of Taxilla) 15 men standing in different postures, sitting or lying down naked, who did not move from these positions till the evening, when they return to the city. The most difficult thing to endure was the heat of the sun. etc."

"Calanus bidding him (Onesi:) to strip himself, if he desired to hear any of his doctrine."

—Plutarch. Al. p. 71

सिकन्दर ससैन्य यूनान को लौटा तो मुनि कल्याण उसके साथ हो लिये थे; किन्तु ईरान में ही उनका देहावसान हो गया था। अपना अन्त समय जानकर उन्होंने जैनव्रत सल्लेखना का पालन किया था। नंगे रहना, भूमिशोधकर चलना, हरितकाय का विराधन न करना, किसी का निमंत्रण स्वीकार न करना, इत्यादि जिन नियमों का पालन मुनि कल्याण और उनके साथी मुनिगण करते थे उनसे उनका दिगम्बर जैन मुनि होना सिद्ध है।[1] आधुनिक विद्वान् भी यही प्रकट करते हैं।[2]

मुनि कल्याण ज्योतिषशास्त्र में निष्णात थे। उन्होंने बहुत सी भविष्यद्वाणियाँ की थीं[3] और सिकन्दर की मृत्यु को भी उन्होंने पहिले से ही घोषित कर दिया था। इन भारतीय सन्तों की शिक्षा का प्रभाव यूनानियों पर विशेष पड़ा था। यहां तक कि तत्कालीन डायजिनेस (Diogenes) नामक

---

१. वीर वर्ष ७ पृ० १७६ व ३४१

२. Encyclopaedia Britannica (11th ed.) Vol. XV p. 128. "....the term Digambara.... is referred to in the well-known Greek phrase, Gymnosophists, used already by Megasthenes, which applies very aptly to the Niganthas (igambara Jainas)."

३. "A calendar fragment discovered at Milet & belonging to the 2nd. century B. C., gives several weather forecasts on the authority of Indian Calanus." —QJMS., XVIII, 297

यूनानी तत्ववेत्ता ने दिगम्बर वेष धारण किया था।[1] और यूनानियों ने नंगी मूर्तियां भी बनवाई थीं।[2]

यूनानी लेखकों ने इन दिगम्बर मुनियों के विषय में खूब लिखा है। वे बताते हैं कि यह साधु नंगे रहते थे। सर्दी-गर्मी की परीषह सहन करते थे। जनता में इनकी विशेष मान्यता थी। हाट-बाजार में जाकर यह धर्मोपदेश देते थे। बड़े-बड़े शिष्ट घरों के अंतःपुरों में भी ये जाते थे। राजागण इनकी विनय करते और सम्मति लेते थे। ज्योतिष के अनुसार ये लोगों को भविष्य का फलाफल भी बताते थे। भोजन का निमन्त्रण ये स्वीकार नहीं करते थे। विधिपूर्वक नगर में कोई सभ्य उन्हें भोजन दान देता तो उसे ये ग्रहण कर लेते थे।[3] यूनना

१. NJ., I tro p 2

२. Pliny, XXXIV. 9—JRAS, Vol. IX, p. 232

३. Aristoboulos—says "Their (Gymnosophists) spare time is spent in the market-place in respect their being public councillors, they receive great homage. etc."

Cicero (Tusc. Disput. V. 27)—"What foreign land is more vast & wild than India? Yet in that nation first those who are reckoned sages spend their lifetime naked & endure the snows of Caucasus & the rage of winter without grieving & when they have committed their body to the flames, not a groan escapes them when the are burning."

Clemens Alexendrinus—"Those Indians, who

लेखकों के इस वरणन से उस समय के दिगम्बर जैन मुनियों का महत्व स्पष्ट हो जाता है। उनके द्वारा भारत का नाम विदेशों में भी चमका था! भला उन जैसे मुनीश्वरों को पाकर कौन न अपने को धन्य मानेगा?

---

are called *Semnoi* (श्रवण) go naked all their lives. These practise truth, make predictions about futurity and worship a kind of pyramid, beneath which they think the bones of some divinity lie buried (Stupas)." —AI. p. 183.

"St. Jerome—'Indian Gymnosophists.' The king on coming to them worships them & the peace of his dominions depends according to his judgement on their prayers." —AI. p. 184.

"Every wealthy house is open to them to the apartments of the women. On entering they share the repast." —AI. p. 71

"When they repair to the city they disperse themselves to the market place. If they happen to meet any who carries figs or bunches of grapes they take what he bestows without giving anything in return.

सुङ्ग और आन्ध्र राज्यों में दिगम्बर मुनि।

"The Andhra or Satv.hana rule is characterised by almost the same social features as the farther south; but in point of religion they seem to have been great patrons of the Jainas & Buddhits."—S K. Aiyangar's Ancient India, p, 34.

अन्तिम मौर्य्य सम्राट वृहद्रथ का उसके सेनापति पुष्यमित्र सुङ्गने वध कर दिया था। इस प्रकार मौर्य्य साम्राज्य का अन्त करके पुष्यमित्र ने 'सुङ्ग राजवंश' की स्थापना की थी। नन्द और मौर्य्य साम्राज्य में जहां जैन और वौद्धधर्म उन्नति को प्राप्त हुये थे, वहां सुङ्गवंश के राजत्वकाल में ब्राह्मण धर्म उन्नति को प्राप्त हुये थे, वहां सुङ्गवंश के राजत्वकाल में ब्राह्मण धर्म उन्नत अवस्था को प्राप्त हुआ था। किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि ब्राह्मणेतर जैन आदि धर्मो पर इस समय कोई संकट आया हो। हम देखते हैं कि स्वयं पुष्यमित्र के राजप्रासाद के सन्निकट नन्दराज द्वारा लाई गई 'कलिङ्ग जिन की मूर्ति' सुरक्षित रही थीं। इस अवस्था में यह नहीं कहा जा सकता कि इस समय दिगम्बर जैन धर्म को विकट वाधा सहनी पड़ी थी।

उस पर सुङ्ग राजागण अधिक समय तक शासनाधिकारी भी न रहे। भारत के पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्त और पंजाव की

ओर तो यवन राजाओं ने अधिकार जमाना प्रारम्भ कर दिया और मगध तथा मध्यभारत पर जैनसम्राट खारवेल तथा आन्ध्र राजाओं के आक्रमण होने लगे। खारवेल की मगध विजय में आन्ध्र वंशी राजाओं ने उनका साथ दिया था।[१] मगध पर आन्ध्र राजाओं का अधिकार हो गया! इन राजाओं के उद्योग से जैनधर्म फिर एक बार चमक उठा।

आन्ध्रवंशी राजाओं में हाल, पुलुमायि आदि जैन धर्म प्रेमी कहे गये हैं।[२] इन्होंने दिगम्बर जैन मुनियों को विहार और धर्मप्रचार करने की सुविधा प्रदान की प्रतीत होती है। उज्जैनी के प्रसिद्ध राजा विक्रमादित्य भी इसी वंश से सम्बन्धित बताये जाते हैं। वह शैव थे; परन्तु उपरान्त एक दिगम्बर जैनाचार्य के उपदेश से जैन हो गये थे।[३]

ईस्वी पूर्व प्रथम शताब्दि में एक भारतीय राजा का संबंध रोम के बादशाह ऑगस्टस से था। उन्होंने उस बादशाह के लिये भेंट भेजी थी। जो लोग उस भेंट को ले गये थे,

---

१ "In the decadance that followed the death of Asoka, the Andhras seem to have had their own share and they may possibly have helped Khaivela of Kalinga, when he invaded Magadha in the Middle of the 2nd century B.C When the Kanvar were overthrown the Andhras extend their power northwards & occupy Magadha."

—SAI, pp. 15-16

२. JBORS। I, 76-118. & CHE, I p. 532

३. Allahabad university Studies. pt. II pp 113-147

उनके साथ भृगुकच्छ (भडौंच) से एक श्रमणाचार्य (दिगंबर जैनाचार्य) भी साथ हो लिये थे। वह यूनान पहुंचे थे और वहां उनका सम्मान हुआ था। आखिर सल्लेखना व्रतको धारण करके उन्होंने अथेन्स (Athens) में प्राणविसर्जन किये थे। वहां उनकी एक निषधिका वनायी गई थी।[१] अव भला कहिये, जव उस समय दिगम्वर मुनि विदेशों तक में जाकर धर्मप्रचार करने में समर्थ थे, तो वे भारतमें क्यों न विहार और धर्मप्रचार करने में सफल होते। जैन साहित्य वताता है कि गंगदेव सुधर्म, नक्षत्र, जयपाल, पाण्डु, ध्रुवसेन आदि दिगम्वर जैनाचार्यों के नेतृत्वमें तत्कालीन जैनधर्म सजीव हो रहा था।

ईस्वी पूर्व प्रथम शताब्दिमें भारत में अपोलो और दमस नामक दो यूनानी तत्त्ववेत्ता आये थे। उनका तत्कालीन दिगंवर

---

१. "In the same year (25 B. C.) went an Indian embassy with gifts to Augustus, from a King called Purus by some and Pandian by others······They were accompanied by the man who burnt himself at Athens. He with a smile leapt upon the pyre naked ·······On his tomb was this inscription, 'Zermanochegas, to the custom of his country, lies here'. Zermanochegas seems to be the Greek rendering of Sramanacharya or Jaina Guru and the self-immolation a variety of Sallekhna." —IHQ. vol. II p. 293.

मुनियोंके साथ शास्त्रार्थ हुआ था।[१] सारांशतः उस समय भी दिगम्बर मुनि इतने महत्वशाली थे कि वे विदेशियोंका भी ध्यान आकृष्ट करनेको समर्थ थे।

[१५]

यवन-छत्रप आदि राजागण तथा दिगम्बर मुनि !

"About the second century B. C. when the Greeks had occupied a fair portion of western India, Jainism appears to have made its way amongst them and the founder of the sect appears also to have been held in high esteem by the Indo-Greeks, as is apparent from an account given in the Milinda Panho." —HG., p. 78

मौर्य्यों के उपरान्त भारत के पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्त, पंजाब, मालवा आदि प्रदेशों पर यूनानी आदि विदेशियों का अधिकार होगया था। इन विदेशी लोगों में भी

---

१. "Apollonius of Tyana travelled with Damus. Born about 4 B.C., he came to explore the wonders of India........He was a Pythogorian philosopher & met Iarchas at Taxilla and disputed with Indian Gymaosophists. (Ntganthas)"

—QJMS, XVIII, pp. 305-306

जैन मुनियोंने अपने धर्मका प्रचार कर दिया था और उनमें से कई बादशाह जैनधर्ममें दीक्षित हो गये थे।

भारतीय यवनों (Greek) में मनेन्द्र (Menander) नामक राजा प्रसिद्ध था। उसकी राजधानी पंजाब प्रान्त का प्रसिद्ध नगर साकल(स्यालकोट) था। बौद्धग्रंथ 'मिलिन्द-पण्ह' से विदित है कि उस नगर में प्रत्येक धर्म के गुरू पहुंच कर धर्मोपदेश देते थे।[1] मालूम होता है कि दिगम्बर जैन मुनियों को वहां विशेष आदर प्राप्त था, क्योंकि 'मिलिन्दपण्ह' में कहा गया है कि पांचसौ यूनानियों ने राजा मनेन्द्र से भ० महावीर के 'निर्ग्रन्थ' धर्म द्वारा मनस्तुष्टि करने का आग्रह किया था और मनेन्द्र ने उनका यह आग्रह स्वीकार किया था।[2] अन्तत: वह जैनधर्म में दीक्षित होगया था और उसके राज्य में अहिंसा धर्म की प्रधानता हो गई थी।[3]

यवनों (Indo Greek) को हराकर शकों ने फिर उत्तर पश्चिम भारत पर अधिकार जमाया था। उन्होंने 'छत्रप'—प्रान्तीय शासक नियुक्त करके शासन किया था। इनमें राजा अजेस (Azes I) के समय में तक्षशिला में जैनधर्म उन्नति

१. "They resound with cries of welcome to the teachers of every creed and the city is the resort of the leading men of each of the differing sects"

—QKM, p. 3.

२. QKM., p. 8

३. वीर, वर्ष २ पृ० ४४६—४४६.

पर था। उस समय के बने हुये जैन ऋषियों के स्मारक रूप स्तूप आज भी तक्षशिला में भग्नावशेष हैं।[1]

शक राजा कनिष्क, हुविष्क और वासुदेव के राजकाल में भी जैनधर्म उन्नत दशा में रहा था। मथुरा उस समय प्रधान जैन केन्द्र था। अनेक निर्ग्रन्थ साधु वहां विचरते थे। उन नग्न साधुओं की पूजा राजपुत्र और राजकन्यायें तथा साधारण जनसमुदाय किया करते थे।[2]

छत्रप नहपान भी जैनधर्म प्रेमी प्रतीत होता है। उसका राज्य गुजरात से मालवा तक विस्तृत था। जैन साहित्य में उनका उल्लेख नरवाहन और नहवाण रूप में हुआ मिलता है। नहपान ही संभवतः भूतवलि नामक दिगम्बर जैनाचार्य हुये थे, जिन्होंने "षट्खण्डागम शास्त्र" को रचना थी।[3]

छत्रप नहपान के अतिरिक्त छत्रप रुद्रदमन का पुत्र रुद्र सिंहका भी जैनधर्मभुक्त होना संभव है। जूनागढ़ की 'अपर-कोट' की गुफाओं में इसका ऐक लेख है, जिसका सम्बन्ध जैन-धर्म से होना अनुमान किया जाता है। ये गुफायें जैन मुनियों के उपयोग में आती थीं।[4]

---

१. AGT., pp. 76—80

२. "Another locality in which the Jainas seem to have been formly established from the middlle of the 2nd Century B. C. onwards was Mathura in the old kingdom of Curasens."

—CHI, I, p. 167 & see JOAM

३. सरस्वती, भा० २६ खण्ड २ पृ० ७४८—७४६

४. IA, XX, 163 ff.

इन उल्लेखों से यह स्पष्ट है कि उपरोक्त विदेशी लोगों में धर्मप्रचार करने के लिये दिगम्बर मुनि पहुंचे थे और उन्होंने उन लोगों के निकट सम्मान पाया था।

[१६]

सम्राट ऐल खारवेल आदि कलिंग नृप और दिगम्बर मुनियों का उत्कर्ष।

"नन्दराज-नीतानि कालिंग-जिनम् संनिवेसं............गहर-तनान पडिहारेहि अङ्गमागध वसवु नेयाति।"

(१२वीं पंक्ति)

"सुकति-समण-सुविहितानु च सतदिसानु ञानितम् तपसि-इसिनं संघियनं अरहत निसीदिया समीपे पभरे वर-कारु—सुमुथपतिहि अनेकयोजनाहिताहि प सि ओ सिलाहि सिहपथ-रानि सिघुडाय निसयानि............घण्टा (अ) क (तो) चतरे च वेडूरियगभे थंभे पतिठाययति।" (१५-१६ वीं पंक्ति)

—हाथीगुफा शिलालेख।

कलिङ्गदेश में पहले तीर्थङ्कर भगवान ऋषभदेव के एक पुत्र ने पहले पहले राज्य किया था। जव सर्वज्ञ होकर तीर्थङ्कर ऋषभ ने आर्यखण्ड में विहार किया तो वह कलिङ्ग भी पहुंचे थे। उनके धर्मोपदेश से प्रभावित होकर तत्कालीन कलिङ्ग-राज अपने पुत्र को राज्य देकर दिगम्बर मुनि हो गये थे।[1] बस

१. हरिवंशपुराण अ० श्लो० ३-७ व अ० ११ श्लो० १४-७१

कलिङ्ग में दिगम्बर-मुनियों का सद्भाव उस प्राचीन कालसे है।

राजा दशरथ अथवा यशधर के पुत्र पांच सौ साथियों सहित दिगम्बर मुनि होकर कलिङ्गदेश से ही मुक्त हुये थे। तथा वह पवित्र कोटिशिला भी उसी कलिङ्ग देश में है, जिसको श्रीराम-लक्ष्मण ने उठाकर अपना बाहुबल प्रकट किया था और जिस पर से एक करोड़ दिगम्बर-मुनि निर्वाण को प्राप्त हुये थे।[1] सारांशतः एक अतीव प्राचीन काल से कलिङ्ग देश दिगम्बर-मुनियों के पवित्र-चरण-कमलों से अलंकृत हो चुका है!

इक्ष्वाकवंश के कौशलदेशीय क्षत्रिय राजाओं के उपरान्त कलिङ्ग में हरिवंशी क्षत्रियों ने राज्य किया था। भगवान महावीर ने सर्वज्ञ होकर जब कलिङ्ग में आकर धर्मोपदेश दिया तो उस समय कलिङ्ग के जितशत्रु नामक राजा दिगम्बर मुनि हो गये और उनके साथ और भी अनेक दिगम्बर मुनि हुये थे।[2]

उपरान्त दक्षिण कौशलवर्ती चेदिराज के वंश के एक महापुरुष ने कलिङ्ग पर अधिकार जमा लिया था।[3] ईस्वी पूर्व द्वितीय शताब्दि में इस वंश का ऐल खारवेल नामक राजा अपने भुजविक्रम, प्रताप और धर्म-कार्य के लिये प्रसिद्ध था। यह जैनधर्म का दृढ़ उपासक था। उसने सारे भारत की

---

१. "जसधर राइस्स सुवा पंचसयाभूव कलिंग देसम्मिं ॥
कोटिसिल कोडि मुणि णिव्वाण गया णमो तेसिं ॥१८॥
—णिव्वाण-कांड गाहा

२. हरिवंशपुराण (कलकत्ता संस्करण) पृ० ६२३

३. JBORS Vol III pp. 434-484.

दिग्विजय की थी। वह मगध के सुङ्गवंशी राजाको हराकर वह 'कलिङ्ग जिन' नामक अर्हंत्-मूर्ति को वापस कलिङ्ग ले आया था। दिगम्बर मुनियों की वह भक्ति और विनय करता था। उन्होंने उनके लिये बहुत से कार्य किये थे। कुमारी पर्वत पर अर्हत् भगवान की निषद्या के निकट उन्होंने एक उन्नत जिन प्रासाद बनवाया था। तथा पचहत्तर लाख मुद्राओं को व्यय करके उस पर वैडूर्यरत्न जड़ित स्तम्भ खड़े करवाये थे। उनकी रानी ने भी जैनमंदिर तथा मुनियों के लिये गुफ़ायें बनवाई थी; जो अब तक मौजूद हैं।[1] और भी न जानें उन्होंने दिगम्बर मुनियों के लिये क्या-क्या नहीं किया था!

उस समय मथुरा, उज्जैनी और गिरिनगर जैन ऋषियों के केन्द्रस्थान थे।[2] खारवेल ने जैन ऋषियों का एक महासम्मेलन एकत्र किया था। मथुरा, उज्जैनी, गिरिनगर, काञ्चीपुर आदि स्थानों से दिगम्बर मुनि उस सम्मेलन में भाग लेने के लिये कुमारी पर्वत पर पहुंचे थे। बड़ा भारी धर्म महोत्सव किया गया था।[3] बुद्धिलिङ्ग, देव, धर्मसेन, नक्षत्र आदि दिगम्बर जैनाचार्य उस महासम्मेलन में सम्मिलित हुये थे।[4] इन ऋषि-

---

१. वंवि ओं जैस्मा०. पृ० ६१

२. IHQ. Vol IV p. 522.

३. "सतदिसानुं भनितम् तपसि-इसिनं संघियनं अरहत निसीदिया समीपे..........चोयथि अंगसतिकं तुरियं उपादयति।"

—JBORS., XIII 236-237.

४. अनेकान्त, वर्ष १ पृ० २२८

पुङ्गवों ने मिलकर जिनवाणी का उद्धार किया था तथा सम्राट खारवेल के सहयोग से वे जैनधर्मके प्रचार करनेमें सफल मनोरथ हुये थे। यही कारण है कि उस समय प्रायः सारे भारत में जैनधर्म फैला हुआ था। यहां तक कि विदेशियों में भी उसका प्रचार हो गया था; जैसे कि पूर्व परिच्छेद में लिखा जा चुका है। अतएव यह स्पष्ट है कि ऐल खारवेल के राजकाल में दिगम्बर मुनियों का महान उत्कर्ष हुआ था।

ऐल खारवेल के वाद उनके पुत्र कुदेपश्री खर महामेघवाहन कलिङ्ग के राजा हुये थे। वह भी जैनधर्मानुयायी थे।[1] उनके वाद भी एक दीर्घ समय तक कलिङ्ग में जैनधर्म राष्ट्रधर्म रहा था। वौद्धग्रन्थ 'दाठावंसो' से ज्ञात है कि कलिङ्ग के राजाओं में म० वुद्ध के समय से जैनधर्म का प्रचार था। गौतमबुद्ध के स्वर्गवासी होने के वाद वौद्धभिक्षु खेमने कलिङ्ग के राजा ब्रह्मदत्त को वौद्धधर्म में दीक्षित किया था। ब्रह्मदत्त का पुत्र काशीराज और पौत्र सुनन्द भी वौद्ध रहे थे![2] किन्तु उप-

---

१. JBORS, III p. 505.

२. दन्त धातु ततो खेमो अत्तना गहितं अदा।
दन्तपूरे कलिङ्गस्स ब्रह्मदत्तस्स राजिनो ॥५७॥२॥
देसयित्वान सो धम्मं भेत्वा सब्ब कुदिट्ठियो।
राजानं तं पसादेसि अग्गम्हि रतनत्तगे ॥५८॥
अनुजातो ततो तस्स कासिराज व्हयो सुतो।
रज्जं लद्धा अमच्चानं सोकसल्लमपानुदि ॥६६॥
सुनन्दो नाम राजिन्दो आनन्दजननो सतं।
तस्स अजो ततो आसि वुद्धसासननामको ॥६६॥
—दाठा० पृ० ११-१२

रान्त फिर जैनधर्म का प्रचार कलिंग में होगया। यह समय संभवतः खारवेल आदि का होगा। कालान्तर में कलिंग का गुहशिव नामक प्रतापी राजा निर्ग्रन्थ साधुओं का भक्त कहा गया है। उसके बौद्ध मंत्री ने उसे जैनधर्म विमुख बना लिया था। निर्ग्रन्थ साधु उसकी राजधानी छोड़कर पाटलिपुत्र चले गये थे। सम्राट् पाण्डु वहां पर शासनाधिकारी था। निर्ग्रन्थ साधुओं ने उससे गुहशिव की धृष्टता की बात कही थी।[1] यह घटना लगभग ईसवी तीसरी या चौथी शताब्दि

---

[1] गुहसीव व्हैयाराजा दुरतिक्कमसासनो।
ततो रज्जसिरिं पत्वा अनुगण्हि महाजनं ॥७२॥२॥
सपरत्थानभिञ्जेसो लाभासक्कारलोलुपे।
मायाविनो अविज्जन्धे निगण्ठे समुपट्ठहि ॥७३॥

× × ×

तस्सा मच्चस्स सो राजा सुत्वा धम्मसुभासितं।
दुल्लद्धिमलमुज्झित्वा पसीदि रतनत्तये ॥८६॥

× × ×

इति सो चिन्तयित्वान गुहसीवो नराधिपो।
पब्बाजेसी सकारट्ठ निगण्ठे ते असेसके ॥८६॥
ततो निगण्ठा सब्बेपि धतसित्तानला यथा।
कोधग्गिजलिता गच्छं पुरं पाटलिपुत्तकं ॥९०॥

× × ×

तत्थ राजा महातेजो जम्बुदीपस्स हस्सरो।
पण्डु नामोतदा आसि अनन्त वलवाहनो ॥९१॥
कोधन्धोऽथ निगण्ठा ते सब्बे पेसुञ्जकारका।
उपसङ्कम्मराजानं इदं वचनमवत्रु ॥९२॥ इत्यादि'

—दाठा०, पृ० १३–१४

की कही जा सकती है। और इससे प्रगट है कि उस समय तक दिगम्बर मुनियों की प्रधानता कलिंग—अङ्ग—वङ्ग और मगध में विद्यमान थी। दिगम्बर मुनियों को राजाश्रय मिला हुआ था।

कुमारीपर्वत परके शिलालेखों से यह भी प्रगट है कि कलिंग में जैनधर्म दशवीं शताब्दि तक उन्नतावस्था पर था। उस समय वहाँ पर दिगम्बर जैन मुनियों के विविध संघ विद्यमान थे; जिनमें आचार्य यशनन्दि, आचार्य कुलचन्द्र तथा आचार्य शुभचन्द्र मुख्य साधु थे।[१]

इस प्रकार कलिंग में दिगम्बर जैनधर्म का वाहुल्य एक अतीव प्राचीनकाल से रहा है और वहाँ पर आज भी सराक लोग एक वड़ी संख्या में हैं, जो प्राचीन श्रावक है।[२] उनका अस्तित्व इस बातका प्रमाण है कि कलिंगमें जैनत्वकी प्रधानता आधुनिक समय तक विद्यमान रही थी।

---

१. बंविओ जैस्मा०, पृ० ९४-९६

२. बंविओ जैस्मा०; १०१-१०४

[१७]

गुप्त-साम्राज्य में दिगम्बर-मुनि !

"The capital of the Gupta emperors became the centre of Brahmanical culture; but the masses followed the religious traditions of their forefathers, and Buddhist & Jain monasteries continued to be public schools and universities for the greater part of India."

—E. B. Havell, HARI., p 156.

यद्यपि गुप्तवंश के राज्यकाल में ब्राह्मण धर्म की उन्नति हुई थी, किन्तु जन-साधारण में अब भी जैन और बौद्ध धर्मों का ही प्रचार था। दिगम्बर जैन मुनिगण ग्राम-ग्राम विचर कर जनता का कल्याण कर रहे थे और दिगम्बर उपाध्याय जैन-विद्यापीठों के द्वारा ज्ञान-दान करते थे। गुप्त काल में मथुरा, उज्जैन, श्रावस्ती, राजगृह आदि स्थान जैनधर्म के केन्द्र थे। इन स्थानों पर दिगम्बर जैन साधुओं के सङ्घ विद्यमान थे। गुप्त-सम्राट अब्राह्मण साधुओं से द्वेष नहीं रखते थे;[१] तथापि उनका वाद ब्राह्मण विद्वानों के साथ कराकर सुनना उन्हें पसन्द था।

श्री सिद्धसेनदिवाकर के उद्गारों से पता चलता है कि

१. भाइ०, पृ० ६१।

"उस समय सरलवाद पद्धति और आकर्षण शान्तिवृत्ति का लोगों पर बहुत अच्छा प्रभाव पड़ता था। निर्ग्रन्थ अकेले दुकेले ही ऐसे स्थलों पर जा पहुंचते थे और ब्राह्मणादि प्रतिवादी विस्तृत शिष्य समूह और जनसमुदाय सहित राजसी ठाठ-बाठ के साथ पेश आते थे; तो भी जो यश निर्ग्रंथों को मिलता था वह उन प्रतिवादियों को अप्राप्य था।[1]

बङ्गाल में पहाड़पुर नामक स्थान दिगम्बर जैन सङ्घ का केन्द्र था। वहां के दिगम्बर मुनि प्रसिद्ध थे![2]

गुप्तवंश में चन्द्रगुप्त द्वितीय प्रतापी राजा था। उसने 'विक्रमादित्य' की उपाधि धारण की थी। विद्वानों का कथन है कि उसी की राज-सभा में निम्नलिखित विद्वान् थे :—[3]

'धन्वन्तरि:क्षपणकोऽमरसिंहशंकु—
वेतालभट्टघटखर्परकालिदासाः।
ख्यातो वराहमिहिरो नृपतेः सभायां—
रत्नानि वै वररुचिर्नव विक्रमस्य॥'

इन विद्वानों में 'क्षपणक' नामका विद्वान् एक दिगम्बर मुनि था। आधुनिक विद्वान् उन्हें सिद्धसेन नामक दिगम्बर जैनाचार्य प्रकट करते हैं।[4] जैनशास्त्र भी उनका समर्थन करते हैं। उनसे प्रकट है कि श्री सिद्धसेन ने 'महाकाली' के मन्दिर

१. जैहि० भा० १४ पृ० १५६
२. IHQ VII. 441.
३. रश्रा० पृ० १३३।
४. रश्रा० चरित्र पृ० १३३-१४१।

में चमत्कार दिखाकर चन्द्रगुप्त को जैनधर्म में दीक्षित कर लिया था।[1]

उपरोक्त विद्वानों में से अमरसिंह[2], वराहमिहिर[3] आदि ने अपनी रचनाओं में जैनों का उल्लेख किया है; उससे भी प्रकट है कि उस समय जैनधर्म काफी उन्नत रूप में था। वराहमिहिर ने जैनों के उपास्यदेवता की मूर्ति नग्न बनती लिखी है, इससे यह स्पष्ट है कि उस समय उज्जैनी में दिगम्बर धर्म महत्वशाली था। जैनसाहित्य से प्रकट है कि उज्जैनी के निकट भद्दलपुर (वीसनगर) में उस समय दिगम्बर मुनियों का संघ मौजूद था, जिसके आचार्यों की कालानुसार नामावली निम्नप्रकार है।—

१. श्री मुनि वज्रनन्दी	....	सन् ३०७ में आचार्य हुये	
२. „ „ कुमारनन्दी	....	३२६	„ „
३. „ „ लोकचन्द्र प्रथम	....	३६०	„ „
४. „ „ प्रभाचन्द्र „	....	३९६	„ „
५. „ „ नेमिचन्द्र „	....	४२१	„ „
६. „ „ भानुनन्दि	....	४३०	„ „
७. „ „ जयनन्दि	....	४५१	„ „
८. „ „ वसुनन्दि	....	४६८	„ „
९. „ „ वीरनन्दि	....	४७४	„ „

१. वीर, वर्ष १ पृ० ४७१

२. अमरकोष देखो

३. 'नग्नान् जिनानां विदुः।'—वराहमिहिर संहिता

१०. श्री मुनि रत्ननन्दी	....	सन् ५०४ में आचार्य हुये
११. " " माणिक्यनन्दी	....	५२८ " "
१२. " " मेघचन्द्र	....	५४४ " "
१३. " " शान्तिकीर्ति प्रथम		५६० " "
१४. " " मेरुकीर्ति	....	५८५ " [1]

इनके बाद जो दिगम्बर जैनाचार्य हुये, उन्होंने भद्दलपुर (मालवा) से हटाकर जैनसंघ का केन्द्र उज्जैन में बना दिया।[2] इससे भी स्पष्ट है कि चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के निकट जैन धर्म को आश्रय मिला था। उसी समय चीनी-यात्री फाह्यान भारत में आया था। उसने मथुरा के उपरान्त मध्यदेश में ९६ पाखण्डों का प्रचार लिखा है। वह कहता है कि "वे सब लोक और परलोक मानते हैं। उनके साधु-संघ हैं। वे भिक्षा करते हैं, केवल भिक्षापात्र नहीं रखते। सब नानारूप से धर्मानुष्ठान करते हैं।" दिगम्बर-मुनियों के पास भिक्षापात्र नहीं होता—वे पाणिपात्र भोजी और उनके संघ होते हैं। तथा वे अहिंसा धर्म का उपदेश मुख्यता से देते हैं। फाह्यान भी कहता है कि "सारे देश में सिवाय चाण्डाल के कोई अधिवासी न जीवहिंसा करता है, न मद्य पीता है और न लहसुन खाता है।..........न कहीं

---

१. पट्टावली जैहि०, भाग ६ अङ्क ७-८
पृ० २९-३० व IA., XX 351-352

२. IA., XX 352. ३. फाह्यान पृ० ४९।

सूनागार और मद्य की दूकानें हैं।"[१] उसके इस कथन से भी जैनमान्यता का समर्थन होता है कि भद्दलपुर, उज्जैनी आदि मध्यदेशवर्ती नगरों में दिगम्बर जैन मुनियों के संघ मौजूद थे और उनके द्वारा अहिंसा धर्म की उन्नति होती थी।

फाह्यान संकाश्य, श्रावस्ती, राजगृह आदि नगरों में भी निर्ग्रन्थ साधुओं का अस्तित्व प्रगट करता है। संकाश्य उस समय जैन-तीर्थ माना जाता था। संभवतः यह भगवान विमल नाथ तीर्थङ्कर का केवलज्ञान स्थान है। दो-तीन वर्ष हुये वहीं निकट से एक नग्न जैनमूर्ति निकली थी और वह गुप्तकाल की अनुमान की गई है।[२] इस तीर्थ के सम्बन्ध में निर्ग्रन्थों और बौद्धभिक्षुओं में वाद हुआ वह लिखता है।[३] श्रावस्ती में भी बौद्धों ने निर्ग्रंथों से विवाद किया वह बताता है।[४] श्रावस्ती में उस समय सुहृद्ध्वज वंश के जैनराजा राज्य करते थे।[५] कुहाऊं (गोरखपुर) से जो स्कन्द गुप्त के राजकालका जैनलेख मिला है[६] उससे स्पष्ट है कि इस ओर अवश्य ही दिगम्बर जैनधर्म उन्नतावस्था पर था।

साँची से एक जैन लेख विक्रम सं० ४६८ भाद्रपद चतुर्थी का मिला है। उसमें लिखा है कि उन्दान के पुत्र आमरकार

---

१. फाह्यान, पृ० ३१

२, IHQ., Vol. V p. 142

३. फाह्यान, पृ० ३५-३६

४. फाह्यान, पृ० ४०-४५

५, संप्राजैस्मा० पृ० ६५

६. भाप्राराο, भा० २ पृ० २८६

देवने ईश्वरवासक गांव और २५ दीनारों का दान किया। यह दान काकनावोटके जैन विहारमें पाँच जैनभिक्षुओं के भोजन के लिये और रत्नगृहमें दीपक जलानेके लिये दिया गया था। उक्त आमरकारदेव चन्द्रगुप्त के यहां किसी सैनिकपद पर नियुक्त था।[१] यह भी जैनोत्कर्ष का द्योतक है।

राजगृह पर भी फाह्यान निर्ग्रन्थों का उल्लेख करता है।[२] वहां की सुभद्रगुफा में तीसरी या चौथी शताब्दि का एक लेख मिला है जिससे प्रगट है कि मुनिसंघ ने मुनि वैरदेवको आचार्य पद पर नियुक्त किया था।[३] राजगृह में गुप्तकाल की अनेक दिगम्वर मूर्तियां भी हैं।[४]

सारांशतः गुप्तकाल में दिगम्बर मुनियों का बाहुल्य था और वे सारे देश में घूम २ कर धर्मोद्योत कर रहे थे।

---

१. भाप्रारा०, भा २ पृ० २६३

२. "Here also the Nigantha made a pit with fire in it and poisoned the food of which he invited Buddha to partake (The iganthas were ascetics who went naked.)" —Fa-Hian, Beal., pp. 110-113 यह उल्लेख साम्प्रदायिक द्वेष का द्योतक है।

३. वंविओ जैस्मा०, पृ० १६

४. "Report on the Ancient Jain Remains on the hills of Rajgir" submitted to the Patna Court by R B. Ramprasad chanda B. A Ch iV p. 30 (Jain images of the Gupta & Pala period at Rajgir)

हर्षवर्द्धन तथा हुएनसांग के समय में दिगम्बर-मुनि !

"वौद्धों और जैनियों की भी........संख्या वहुत अधिक थी।........वहुत से प्रान्तीय राजा भी इनके अनुयायी थे। इनके धार्मिक-सिद्धान्त और रीति-रिवाज भी तत्कालीन समाज पर पर्याप्त प्रभाव डाले हुये थे। इनके अतिरिक्त तत्कालीन समाज में साधुओं, तपस्वियों, भिक्षुओं और यतियों का एक वड़ा भारी समुदाय था, जो उस समय के समाज में विशेष महत्व रखता था।........(हिन्दुओं में) वहुत से साधु अपने निश्चित स्थानों पर वैठे हुये ध्यान-समाधि करते थे, जिनके पास भक्त लोग उपदेश आदि सुनने आया करते थे। वहुत से साधु शहरों व गांवों में घूम घूम कर लोगों को उपदेश एवं शिक्षा दिया करते थे। यही हाल वौद्ध भिक्षुओं और जैन साधुओं का भी था। ....साधारणतः लोगों के जीवन को नैतिक एवं धार्मिक वनाने में इन साधुओं, यतियों और भिक्षुओं का बड़ा भारी भाग था।"

—कृष्णचन्द्र विद्यालङ्कार

गुप्त-साम्राज्य के नष्ट होने पर उत्तर-भारत का शासन योग्य हाथों में न रहा। परिणाम यह हुआ कि शीघ्र ही हूण जाति के लोगों ने भारत पर आक्रमण करके उस पर अधिकार

---

१. हर्षकालीन भारत—"त्यागभूमि" वर्ष २ खण्ड १ पृ० ३०१

जमा लिया। उनका राज्य सभी धर्मों के लिये थोड़ा बहुत हानिकर हुआ; किन्तु यशोधर्मन् राजा ने संगठन करके उन्हें परास्त कर दिया। इसके बाद हर्षवर्द्धन् नामक सम्राट एक ऐसे राजा मिलते हैं जिन्होंने सारे उत्तर-भारत में प्रायः अपना अधिकार जमा लिया था और दक्षिण-भारत को हथियाने की भी जिन्होंने कोशिश की थी। इनके राजकाल में प्रजाने संतोष की सांस ली थी और वह धर्म-कर्म की बातों की ओर ध्यान देने लगी थी।

गुप्तकाल से ही ब्राह्मण-धर्म का पुनरुत्थान होने लगा था और इस समय भी उसकी बाहुल्यता थी; किन्तु जैन और बौद्धधर्म भी प्रतिभाशाली थे। धार्मिक जागृति का वह उन्नत काल था। गुप्तकाल से जैन, बौद्ध और ब्राह्मण विद्वानों में वाद और शास्त्रार्थ होना प्रारम्भ हो गये थे। हर्षकाल में उनको वह उन्नतरूप मिला कि समाज में विद्वान् ही सर्व श्रेष्ठ पुरुष गिना जाने लगा।[1] इन विद्वानों में दिगम्बर-मुनियों का भी सद्भाव था। सम्राट हर्ष के राजकवि बाण ने अपने ग्रन्थों में उनका उल्लेख किया है। वह लिखता है कि "राजा जब गहन जङ्गल में जा पहुंचा तो वहां उसने अनेक तरह के तपस्वी देखे। उनमें नग्न (दिगम्बर) आर्हत (जैन) साधु भी थे।"[2] हर्ष ने अपने महासम्मेलन में उन्हें शास्त्रार्थ के लिये बुलाया था और वह एक

१. भाइ०, पृ० १०३-१०४
२. दिमु०, पृ० २१

वडी संख्या में उपस्थित हुये थे।[1] इससे प्रकट है कि उस समय हर्ष की राजधानी के आस पास भी जैनधर्म का प्राबल्य था; वैसे तो वह सारे भारत में फैला हुआ था। उज्जैन का दिगम्बर जैनसङ्घ अब भी प्रसिद्ध था और उसमें तत्कालीन निम्न दिगम्बर जैनाचार्य मौजूद थे:—[2]

१. श्रीदिगं०	जैनाचार्य		महाकीर्त्ति,	सन्	६२९ को	आचार्य हुये:
२.	"	"	विष्णुनन्दि,	"	६४७ "	"
३.	"	"	श्रीभूषण,	"	६६९ "	"
४.	"	"	श्रीचन्द्र,	"	६७८ "	"
५.	"	"	श्रीनन्दि,	"	६९२ "	"
६.	"	"	देशभूषण,	"	७०८ "	"

सम्राट् हर्ष के समय में (७वीं श०) चीनदेश से हुएनसांग नामक यात्री भारत आयाथा। उसने भारत और भारतके वाहर दिगम्बर जैन मुनियों का अस्तित्व वतलाया है।[3] वह उन्हें निर्ग्रंथ और नंगेसाधु लिखताहै तथा उसकी केशलुञ्चनक्रियाका भी उल्लेख करताहै।[4] वह पेशावर की ओर से भारतमें घुसाथा।

---

१. HARI., p. 270.

२. जैहि०, भा० ६ अङ्क ७-८ पृ० ३० व IA., XX- 352-

३. "Hieun Tsang found them (Jains) spread through the whole of India and even beyond its boundaries-"–AISJ, p 45 विशेष के लिये ह्वांसांग का भारत भ्रमण (इण्डियन प्रेस लि०) देखो।

४. 'The Li-hi (Nirgranthas) distinguish them-

और वहीं सिंहपुर में उसने नंगे जैन मुनियों को पाया था।[१] इसके उपरान्त पंजाब के और मथुरा, स्थानेश्वर, ब्रह्मपुर, अहिक्षेत्र, कपिथ, कन्नौज, अयोध्या, प्रयाग, कौशांबी, बनारस, श्रावस्ती, इत्यादि मध्यदेशवर्ती नगरोंमें यद्यपि उसने दिगम्बर मुनियों का पृथक उल्लेख नहीं किया है, परन्तु एक साथ सब प्रकार के साधुओं का उल्लेख करके उसने उनके अस्तित्वको इन नगरोंमें प्रकट कर दिया है। मथुरा के सम्बन्ध में वह लिखता है कि "पांच देवमन्दिर भी हैं, जिनमें सब प्रकार के साधु उपासना करते हैं।"[२] स्थानेश्वर के विषय में उसने लिखा है कि "कई सौ देवमन्दिर बने हैं, जिनमें नाना जाति के अगणित भिन्न धर्मावलम्बी उपासना करते हैं।"[३] ऐसे ही उल्लेख अन्य नगरों के सम्बंन्ध में उसने किये हैं।

राजगृह के वर्णन में हुएनासाँग ने लिखा है कि "विपुल पहाड़ी की चोटी पर एक स्तूप उस स्थान में है, जहां प्राचीन-काल में तथागत भगवान् ने धर्म की पुनरावृति की थी। आज-कल बहुत से निर्ग्रन्थ लोग (जो नंगे रहते हैं। इस स्थान पर

---

selves by leaving the r bodies naked & pulling out their hair: Their skin is all cracked their feet are hard & chapped like cotting trees."

—(St. Julien, Vienna, p224).

१. हुआ०, पृ० १४३
२, हुआ०, पृ० १८१
३. हुआ०, पृ० १८६

आते हैं और रातदिन अविराम तपस्या किया करते हैं तथा सवेरे से सांझ तक इस (स्तूप) की प्रदक्षिणा करके वड़ी भक्ति से पूजा करते हैं।"[1]

पुण्ड्रवर्द्धन (वंगाल) में वह लिखता है कि "कई सौ देवमन्दिर भी हैं, जिनमें अनेक सम्प्रदाय के विरुद्ध धर्मावलम्वी उपासना करते हैं। अधिक संख्या निर्ग्रन्थ लोगों (दिगम्वर मुनियों) की है[2]।"

समतट (पूर्वी वंगाल) में भी उसने अनेक दिगम्वर साधु पाये थे। वह लिखता है, "दिगम्वर साधु, जिनको निर्ग्रंथ कहते हैं, वहुत वड़ी संख्या में पाये जाते हैं।"[3]

ताम्रलिप्ति में वह विरोधी और बौद्ध दोनों का निवास बतलाता है। कर्णसुवर्ण के सम्वन्धमें भी यही वात कहता है।[4]

कलिङ्ग में इस समय दिगम्वर जैनधर्म प्रधान पद ग्रहण किये हुये था। हुएनसाँग कहता है कि वहाँ 'सवसे अधिक संख्या निर्ग्रन्थ लोगों की है।[5]' इस समय कलिङ्ग में सेनवंश के राजा राज्य कर रहे थे, जिनका जैनधर्म से सम्वन्ध होना वहुत कुछ संभव है।[6]

---

१. हुआ०, पृ० ४७४-४७५
२. हुआ०, ५२६
३. हुआ०, पृ० ५३३
४. हुआ०, पृ० ५३५-५३७
५. हुआ०, पृ० ५४५
६. वीर वर्ष ४ पृ० ३२८-३३२

दक्षिण कौशल में वह विधर्मी और बौद्ध दोनों को बताता है। आन्ध्र में भी विरोधियों का अस्तित्व वह प्रगट करता है।[1]

चोलदेश में वह बहुत से निर्ग्रन्थ लोग बताता है।[2] द्रविड़ के सम्बन्ध में वह कहता है कि "कोई अस्सी देवमन्दिर और असंख्य विरोधी हैं, जिनको निर्ग्रन्थ कहते हैं।"[3]

मालकूट (मलयदेश) में वह बताता है कि "कई सौ देव-मंदिर और असंख्य विरोधी हैं, जिनमें अधिकतर निर्ग्रंथ लोग हैं।"[4]

इस प्रकार हुएनसाँग के भ्रमण-वृतान्त से उस समय प्रायः सारे भारतवर्ष में दिगम्बर जैन मुनि निर्बाध विहार और धर्मप्रचार करते हुये मिलते हैं।

---

१. हुआ०, पृ० ५४६-५५७
२. हुआ०, पृ० ५७०
३. हुआ०, पृ० ५७२
४. हुआ०, पृ० ५७४

[१६]

मध्यकालीन हिन्दू राज्य में दिगम्बर मुनि

"श्री धाराधिप-भोजराज-मुकुट-प्रोताश्मरश्मिच्छटा—
च्छाया-कुङ्कुम-पङ्क-लिप्त-चरणाम्भोजात–लक्ष्मीधवः।
न्यायाब्जाकरमण्डने दिनमणिश्शब्दाब्ज-रोदोमणि—
स्थेयात्पण्डित-पुण्डरीक तरणि श्रीमान्प्रभाचन्द्रमाः ।।"

—चन्द्रगिरि शिलालेख।

राजपूत और दिगम्बर मुनि

हर्ष के उपरांत उत्तर भारत में कोई एक सम्राट न रहा; वल्कि अनेक छोटे-छोटे राज्यों में यह देश विभक्त हो गया। इन राज्यों में अधिकांश राजपूतों के अधिकार में थे और इनमें दिगम्बर मुनि निर्वाध विचर कर जनकल्याण करते थे। राजपूतों में अधिकांश जैसे चौहान, पड़िहार आदि एक समय जैनधर्म-भक्त थे और उनके कुलदेवता चक्रेश्वरी, अम्बा आदि शासन-देवियां थीं।[1]

उत्तर भारत में कन्नौज को राजपूत-कालमें भी प्रधानता प्राप्त रही है। वहां का राजाभोज परिहार (८४०–६० ई०) सारे उत्तर भारत का शासनाधिकारी था। जैनाचार्य वप्पसूरि ने उसके दरवार में आदर प्राप्त किया था।[2]

---

१. "वीर", वर्ष ३ पृ० ४७२ एक प्राचीन जैन गुटका में यह वात लिखी हुई है।

२. भाइ०, पृ० १०८ व दिजै० वर्ष २३ पृ० ८४।

श्रावस्ती, मथुरा, असाईखेड़ा, देवगढ़, वारानगर, उज्जैन आदि स्थान उस समय भी जैनकेन्द्र बने हुये थे। ग्यारहवीं शताव्दी तक श्रावस्ती में जैनधर्म राष्ट्रधर्म रहा था। वहां का अन्तिम राजा सुहृद्ध्वज था।[1] उसके संरक्षण में दिगम्बर मुनियों का लोककल्याण में निरत रहना स्वाभाविक है।

वनारस के राजा भीमसेन जैनधर्मानुयायी थे और वह अन्त में पिहिताश्रव नामक जैनमुनि हुये थे।[2]

मथुरा में रणकेतु नामक राजा जैनधर्म का भक्त था। वह अपने भाई गुणवर्मा सहित नित्य जिनपूजा किया करता था। आखिर गुणवर्मा को राज्य देकर वह जैनमुनि हो गया था।[3]

सूरीपुर (जिला आगरा) का राजा जितशत्रु भी जैनी था वह बड़े-बड़े विद्वानों का आदर करता था। अन्त में वह जैनमुनि हो गया था और शान्तिकीर्ति के नाम से प्रसिद्ध हुआ था।[4]

मालवा के परमार राजा और दिगम्बर मुनि

मालवाके परमारवंशी राजाओंमें मुन्ज और भोज अपनी विद्यारसिकता के लिये प्रसिद्ध हैं। उनकी राजधानी धारानगरी विद्या की केन्द्र थी। मुन्जके दरवार में धनपाल, पद्मगुप्त, धनञ्जय, हलायुद्ध आदि अनेक

---

१ संप्राजैस्मा०, पृ० ६५

२. जैप्र० पृ० २४२

३. पूर्व०

४. पूर्व०, पृ० २४१

विद्वान् थे ।[१] मुञ्जनरेश से दिगम्बर जैनाचार्य महासेन ने विशेष सम्मान पाया था ।[२] मुञ्ज के उत्तराधिकारी सिंधु राज के एक सामन्त के अनुरोध से उन्होंने 'प्रद्युम्न चरित' काव्य की रचना की थी । कवि धनपाल का छोटा भाई जैनाचार्य के उपदेश से जैन हो गया था, किन्तु धनपाल को जैनों से चिढ़ थी । आखिर उनके दिल पर भी सत्य जैन धर्म का सिक्का जम गया और वह भी जैनी हो गये थे ।[३]

दिगम्बर जैनाचार्य श्री शुभचन्द्रजी राजा मुञ्ज के समकालीन थे । उन्होंने राज का मोह त्यागकर दिगम्बरी दीक्षा ग्रहण की थी ।[४]

राजा मुञ्ज के समय में ही प्रसिद्ध दिगम्बराचार्य श्री अमित गतिजी हुये थे । वह माथुर संघ के आचार्य माधवसेन के शिष्य थे । 'आचार्यवर्य अमितगति बड़े भारी विद्वान् और कवि थे । इनकी असाधारण विद्वत्ता का परिचय पाने को इनके ग्रंथों का मनन करना चाहिये । रचना सरल और सुखसाध्य होने पर भी बड़ी गंभीर और मधुर है । संस्कृत भाषा पर इनका अच्छा अधिकार था ।[५]

'नीतिवाक्यामृत' आदि ग्रन्थों के रचयिता दिगम्बरा-

---

१. भाप्रारा०, भा० १ पृ० १००

२. मप्राजैस्मा०, भूमिका, पृ० २०

३. भाप्रारा० भा० १ पृ० १ ३–१०४

४. मजैइ०, पृ० ५४–५५

५. विको०, भा० २ पृ० ६४

चार्य श्री सोमदेव सूरि श्री अमितगति आचार्य के समकालीन थे। उस समय इन दिगम्बराचार्यों द्वारा दिगम्बर धर्म की खूब प्रभावना हो रही थी।[1]

राजाभोज और दिगम्बर मुनि

मुञ्ज के समान राजाभोज के दरवार में भी जैनों को विशेष सम्मान प्राप्त था। भोज स्वयं शैव था, परन्तु 'वह जैनों और हिन्दुओं के शास्त्रार्थ का बड़ा अनुरागी था।' श्री प्रभाचन्द्राचार्य का उसने बडा आदर किया था। दिगम्बर जैनाचार्य श्री शांतिसेन ने भोज की सभा में सैकड़ों विद्वानों से वाद करके उन्हें परास्त किया था।[2]

एक कवि कालिदास राजा भोज के दरवार में भी थे। कहते हैं कि उनकी स्पर्द्धा दिगम्बराचार्य श्री मानतुङ्गजी से थी। उन्हीं के उकसाने पर राजा भोज ने मानतुङ्गाचार्य को अड़तालीस कोठों के भीतर वन्द कर दिया था; किन्तु श्री भक्तामर स्तोत्र' की रचना करते हुये वह आचार्य अपने योग-बल से वन्धनमुक्त हो गए थे। इस घटना से प्रभावित होकर कहते हैं, राजा भोज जैन धर्म में दीक्षित हो गये थे;[3] किन्तु इस घटना का समर्थन किसी अन्य श्रोत से नहीं होता!

श्री ब्रह्मदेव के अनुसार 'द्रव्यसंग्रह' के कर्त्ता श्री नेमि-

---

१. विर०, पृ० ११५

२. भाप्रारा०, भाग १ पृष्ठ ११८-१२१

३. भक्तामर कथा—जैप्र०, पृ० २३६

चन्द्राचार्य भी राजा भोजदेव के दरबार में थे।[1] श्री नयनन्दि नामक दिगम्बर जैनाचार्य ने अपना "सुदर्शन चरित्र" राजा भोज के राजकाल में समाप्त किया था।[2]

उज्जैनी का दिगम्बर संघ

भोज ने अपनी राजधानी उज्जैनी में स्थापित की थी। उस समय भी उज्जैनी अपने "दि० जैन संघ" के लिए प्रसिद्ध थी। उस समय तक उस संघ में निम्न आचार्य हुए थे:—[3]

अनन्तकीर्ति	....	....	सन् ७०८ ई०
धर्मनन्दि	....	....	" ७२८ "
विद्यानन्दि	....	....	" ७५१ "
रामचन्द्र	....	....	" ७८३ "
रामकीर्ति	....	....	" ७९० "
अभयचन्द्र	....	....	" ८२१ "
नरचन्द्र	....	....	" ८४० "
नागचन्द्र[4]	....	....	" ८५९ "
हरिनन्दि	....	....	" ८८२ "
हरिचन्द्र	....	....	" ८९१ "
महीचन्द्र	....	....	" ९१७ "

---

१. द्रसं०, पृ० १ वृत्ति०

२. मप्राजैस्मा०, भूमिका पृ० २०

३. जैहि०, भा० ६ अङ्क ७-८ पृ० ३०-३१

४. ईडर से प्राप्त पट्टावली में लिखा है कि "इन्होंने दस वर्ष बिहार किया था और यह स्थिर व्रती थे।" दिजै० वर्ष १४ अङ्क १० पृ० १७-२४।

माघचन्द्र....सन् ६३३ ई०
लक्ष्मीचंद्र.... " ६६६ "
गुणकीर्ति.... " ६७० "
गुणचन्द्र.... " ६६१ "
लोकचन्द्र.... " १००६ "
श्रुतकीर्त्ति.... " १०२२ "
भावचन्द्र.... " १०३७ "
महीचन्द्र.... " १०५८ "

आपके सङ्घ में दि० मुनियों की संख्या अधिक थी और आपके धर्मोपदेश के द्वारा धर्म प्रभावना विशेष हुई थी ![1]

इनकी उपाधियां 'त्रिविध विधेश्वरवैयाकरणभास्कर-महा-मंडलाचार्यतर्कवागीश्वर' थी। इनके विहार द्वारा खूब प्रभावना हुई।[2]

उपरान्त परमार राजाओं के समय में दिगम्बर मुनि

मालवा के परमार राजाओं में विन्ध्यवर्मा का नाम भी उल्लेखनीय है। इस राजा के राजकाल में प्रसिद्ध जैन कवि आशाधर ने ग्रन्थरचना की थी और उस समय कई दिगम्बर मुनि भी राजसम्मान पाये हुये थे। इनमें मुनि उदयसेन और मुनि मदनकीर्ति उल्लेखनीय हैं। मुनि मदनकीर्त्ति ही विन्ध्यवर्मा के पुत्र अर्जुनदेव के राजगुरु मदनोपाध्याय अनुमान किये गये हैं। इन्हें और मुनि विशालकीर्त्ति, मुनि विनयचन्द्र आदि को कविवर आशाधर ने जैनसिद्धान्त और साहित्यज्ञान में निपुण बनाया था। नालछा उस समय जैनधर्म का केन्द्र था।[3]

---

१. दिजै०, वर्ष १४ अङ्क १० पृ० १७-२४।

२. पूर्व.

३. भाप्रारा०, भाग १ पृ० १५७ व सागार० भूमिका पृ० ६

श्वेताम्बर ग्रन्थ "चतुर्विंशति प्रबन्ध" में लिखा है कि उज्जैनी में विशालकीर्त्ति नामक दिगम्बराचार्य के शिष्य मदन, कीर्त्ति नाम के दिगम्बर साधु थे। उन्होंने वादियों को पराजित करके 'महाप्रामाणिक' पदवी पाई थी और कर्णाटिक देश में जाकर विजयपुर नरेश कुन्तिभोज के दरबार में आदर पाया था और अनेक विद्वानों को पराजित किया था; किन्तु अन्त में वह मुनिपद से भ्रष्ट हो गए थे।[1]

गुजरात के शासक और दिगम्बर मुनि

मालवा के अनुरूप गुजरात भी दिगम्बर जैन मुनियों का केन्द्र था। अङ्कलेश्वरमें भूतवलि और पुष्पदन्ताचार्य ने दिगम्बर आगम ग्रन्थों की रचना की थी। गिरि नगर के निकट की गुफाओं में दिगम्बर मुनियों का सङ्घ प्राचीनकाल से रहता था। भृगुकच्छभी दिगम्बर जैनों का केन्द्र था।

गुजरात में चालुक्य, राष्ट्रकूट आदि राजाओं के समय में दिगम्बर जैनधर्म उन्नतशील था। सोलंकियों की राजधानी अणहिलपुरपट्टन में अनेक दिगम्बर मुनि थे। श्रीचन्द्र मुनि ने वहीं ग्रन्थ रचना की थी।[2] योगचन्द्र मुनि[3] और मुनि कनकामर भी शायद गुजरात में हुए थे। ईडर के दिगम्बर साधु प्रसिद्ध थे।

---

१. जैहि०, भा० ११ पृ० ४८५

२. वीर, वर्ष १ पृ० ६३७

३. वीर, वर्ष १ पृ० ६३८

सोलंकी सिद्धराज ने एक वाद सभा कराई थी; जिस में भाग लेने के लिये कर्णाटक देश से कुमुदचन्द्र नामक एक दिगम्बर जैनाचार्य आये थे। दिगम्बराचार्य नग्न ही पाटन पहुंचे थे। सिद्धराज ने उनका बड़ा आदर किया था। देवसूरि नामक श्वेताम्बराचार्य से उनका वाद हुआ था।[1] इस उल्लेख से स्पष्ट है कि उस समय भी दिगम्बर जैनों का गुजरात में इतना महत्व था कि शासक राजकुल का भी ध्यान उनकी ओर आकृष्ट हुआ था।

दिगम्बराचार्य ज्ञानभूषण

गुर्जर, सौराष्ट्र आदि देशों में जिनधर्म का प्रचार श्री दिगंबर भट्टारक ज्ञानभूषणजी द्वारा हुआ था। अहीर देश में उन्होंने ऐलकपद धारण किया था और वाग्वर देश में महाव्रतों को उन्होंने अङ्गीकार किया था। विहार करते हुये वह कर्णाटक, तौलव, तिलंग, द्राविड़, महाराष्ट्र, सौराष्ट्र, रायदेश, भेदपाट, मालव, मेवात्त, कुरुजांगल, तुरुव, विराटदेश, नमियाड़देश, टग, राट, नाग, चोल आदि देशों में विचरे थे। तौलवदेश के महावादीश्वर विद्वज्जनों और चक्रवर्तियों के मध्य उन्होंने प्रतिष्ठा पाई थी। तुरवदेश में षट्दर्शन के ज्ञाताओं का गर्व उन्होंने नष्ट किया था। नमियाड़ देश में जिनधर्म प्रचार के लिए नौ हजार उपदेशकों को उन्होंने नियुक्त किया था। दिल्ली पट्ट के वह सिंहसनाधीश थे। श्री देवराय-

---

१. विको०, भा० ५ पृ० १०५

राज, मुदिपालराय, रामनाथराय, बोमरसराय, कलपराय, पाण्डुराय आदि राजाओं ने उनके चरणों की वंदना की थी।[1]

दिगम्बर जैनाचार्य श्री शुभचन्द्र

श्री ज्ञानभूषणजी के प्रशिष्य श्री शुभचन्द्राचार्य भी दिगम्बर मुनि थे। उनका पट्ट भी दिल्ली में रहा था। उन्होंने भी विहार करते हुये गुजरात के वादियों का मद नष्ट किया था। वह एक अद्वितीय विद्वान् और वादी थे। अनेक ग्रन्थों की उन्होंने रचना की थी। पट्टावली में उनके लिये लिखा है कि "वह छन्द-अलङ्कारादिशास्त्र–समुद्र के पारगामी, शुद्धात्मा के स्वरूपचिन्तन करने ही से निद्रा को विनष्ट करने वाले, सब देशों में विहार करने से अनेक कल्याणों को पाने वाले, विवेक, विचार, चतुरता, गम्भीरता, धीरता, वीरता और गुणगण के समुद्र, उत्कृष्ट पात्र वाले, अनेक छात्रों का पालन करने वाले, सभी विद्वत्मण्डली में सुशोभित शरीर वाले, गौडवादियों के अन्धकार के लिये सूर्य्य के से, कलिङ्ग-वादिरूपी मेघ के लिये वायु के से, कर्णाटवादियों के प्रथम वचन खण्डन करने में परम समर्थ, पूर्ववादीरूपी मातङ्ग के लिए सिंह के से, तौलवादियों की विडम्बना के लिए वीर, गुर्जर वादिरूपी समुद्र के लिए अगस्त्य के से, मालववादियों के लिये मस्तकशूल, अनेक अभिमानियों के गर्व का नाश करने वाले,

१. जैसिभा०, भाग १ किरण ४ पृ० ४८-४९

स्वसमय तथा परसमय के शास्त्रार्थ को जानने वाले और महाव्रत अङ्गीकार करने वाले थे।"[1]

वारानगर का दिगम्बर संघ

उज्जैन के उपरान्त दिगम्बर मुनियों का केन्द्र विन्ध्याचल पर्वत के निकट स्थित वारानगर नामक स्थान हो गया था।[2] वारा एक प्राचीनकाल से ही जैनधर्म का गढ़ था। आठवीं या नवीं शताब्दि में वहाँ श्री पद्मनन्दि मुनि ने 'जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति' की रचना की थी। इस ग्रन्थ की प्रशस्ति में लिखा है कि "वारानगर में शांति नामक राजा का राज्य था। वह नगर धनधान्य से परिपूर्ण था। सम्यग्यदृष्टि जनों से, मुनियों के समूह से और जैन मन्दिरों से विभूषित था। राजा शान्तिजिनशासनवत्सल, वीर और नरपति संपूजित था। श्री पद्मनन्दिजी ने अपने गुरु व अन्यरूप इन

---

१. जैसिभा०, भा० १ कि० ४ पृ० ४६-५० :—

"छन्दालङ्कारादि–शास्त्रसरित्पतिपारप्राप्तानां शुद्धचिद्रूपचितन विनाशिनिद्राणां, सर्वदेशविहारावाप्तानेकभद्राणां विवेकविचार-चातुर्य्य गाम्भीर्य्यगुणगणसमुद्राणां, उत्कृष्टपात्राणां, पालितानेक–शच्छात्राणां, विहितानेकोत्तमपात्राणाम् सकलविद्वज्जनसभाशोभितगात्राणां, गौड़वादितमः सूर्य्य, कलिङ्गवादिजलदसदागति, कर्णाटवादिविडम्बनवीर गुर्जरवादिसिन्धुकुम्भोद्भव, मालववादिमस्तकशूल, जितानेकाखर्वगर्वत्राटन वज्राधराणां, ज्ञानसकलस्वसमयपरसमय – शास्त्रार्थानां, अङ्गीकृत-महाव्रतानाम्।"

२. IA., XX. 353-354.

दिगम्वर मुनियों का उल्लेल किया है: वीरनन्दि[1], वलनन्दि, ऋषिविजयगुरु, माघनन्दि, सकलचन्द्र और श्रीनन्दि। इन्हीं ऋषियों की शिष्य परम्परा में उपरान्त वारानगर में निम्न-लिखित दिगम्वराचार्यों का अस्तित्व रहा था[2] :—

माघचन्द्र	....	सन् १०८९
ब्रह्मनन्दि	....	,, १०८७
शिवनन्दि	....	,, १०९१
विश्वचन्द्र	....	,, १०९८
हरिनन्दि (सिंहनन्दि)	....	,, १०९९

---

१ "सिरिणिलओ गुणसहिओ रिसिविजय गुरुत्ति विक्खाओ।"
"तव संजमसंपण्णो विक्खाओ माघनन्दिगुरू।"
"णवणियमसीलकलिदो गुणवत्तो सयलचन्द गुरू।"
'तस्सेव य वरसिस्सो णिम्मलवरणाणचरण संजुत्तो।"
सम्मद्दंसणसुद्धो सिरिणंदिगुरुत्ति विक्खाओ ॥१५६॥"
"पंचाचार समग्गो छज्जीवदयावरो विगदमोहो।
हरिस-विसाय-विहूणा णामेण य वीरणंदित्ति ॥१५९॥
"'सम्मत्त अभिगदमणो णाणेण तह दंसणे चरित्ते य।
परतंतिणियत्रमणो वलणंदि गुरुत्ति विक्खाओ ॥१६१॥"
तवणियमजोगजुत्तो उज्जुत्तो णाणदंसण चरित्ते।
आरम्भकरण रहियो णामणे य पउ मणंदीत्ति ॥१६१॥"
"सिरि गुरुविजय सयासे सोऊणं आगमं सुपरिसुद्धं।"
"जिणसासणवच्छलो वीरो णरवइ संपूजिओ—वाराणयरस्त पहु णरोत्तमोखत्ति भूपालो सम्मादिट्ठिजणोघे मुणिगणणिवहेहि मंडियं रम्मे'। इत्यादि।—जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति; जैसा सं०, भाग १ अङ्क ४ पृ० १५०

२ जैहि०, भा० ६ अङ्क ७-८ पृ. ३१ व IA XX. 354

भावनन्दि	....	....	सन् ११०३
देवनन्दि	....	....	,, १११०
विद्याचन्द्र	....	....	,, १११३
सूरचन्द्र	....	....	,, १११६
माघनन्दि	....	....	,, ११२७
ज्ञाननन्दि	....	....	,, ११३१
गङ्गकीर्त्ति	....	....	,, ११४२

इन दिगम्वराचार्यों द्वारा उस समय मध्यदेश में जैन धर्म का खूब प्रचार हुआ था।

वि० सं० १०२५ में अल्लू नामक राजाकी सभा में दिगंवराचार्य का वाद एक श्वेताम्वर आचार्य से हुआ था।[1]

चन्देल राज्य में दिगम्वर मुनि

चन्देल राजा मदनवर्म देव के समय (११३०-११६५ ई०) में दिगम्वर धर्म उन्नतरूप में रहा था।[2] खजुराहो में घंटाई के मन्दिर वाले शिलालेख से उस समय दिगम्वराचार्य नेमिचन्द्रका पता चलता है।[3]

तेरहवीं शताब्दि में अनन्त वीर्य नामक दिगम्वराचार्य प्रसिद्ध नैयायिक थे। उन्होंने वादियों को गतमद किया था।[4] इसी समय के लगभग एक गुणकीर्त्ति नामक महामुनि विशद

१ ADJB. p. 45.

२ विको० भा० ७ पृ० १६२।

३ विको०, भा० ५ पृ० ६८०।

४ ADJB, p. 86.

धर्म-प्रचारक थे। उन्हीं के उपदेश से पद्मनाभ नामक कायस्थ कविने 'यशोधर चरित्र' की रचना की थी।[1]

राजपूताना, मध्यप्रान्त बङ्गाल आदि देशों के शासक और दिगम्बर मुनि

अजमेर के चौहान राजाओं में भी दिगम्बर जैनधर्म का आदर था। बीजोलिया के श्री पार्श्वनाथजी के मन्दिर को दिगम्बर मुनि पद्मनंदि और शुभचन्द्र के उपदेश से पृथ्वीराज ने मोराकुरी गांव और सोमेश्वर राजा ने रेवाणनामक गांव भेंट किये थे।[2]

चित्तौड का जैनकीर्त्ति स्तम्भ वहां पर दिगम्बर जैन धर्म की प्रधानता का द्योतक है। सम्राट् कुमारपाल के समय वहां पहाड़ी पर बहुत से दिगम्बर जैन (मुनि) थे।[3]

दिगम्बर जैनाचार्य श्री धर्मचन्द्रजी का सम्मान और विनय महाराणा हम्मीर किया करते थे।[4]

झांसी जिले का देवगढ़ नामक स्थान भी मध्यकाल में दिगम्बर मुनियों का केन्द्र था। वहां पाँचवीं शताब्दि से तेर-

---

१. उपदेशन ग्रन्थोऽयं गुणकीर्ति महामुनेः।
कायस्थ पद्मनाभेन रचितः पूर्व्व सूत्रतः॥—यशोधर चरित्र।

२. राइ०, भा० १ पृ० ३६३

३. "It (जैन कीर्तिस्तम्भ) belongs to the Digamber Jains; many of whom seem to have been upon the Hill in Kumarpal's time." —मप्राजैस्मा० पृ० १३५

४. "श्रीधर्मचन्द्रोऽजनितस्यपट्टे हमीर भूपाल समर्चनीयः।" जैहि—भा० ६ अङ्क ७–८ पृ० २६।

हवीं शताब्दि तक का शिल्पकार्य दिगम्वर धर्म की प्रधानता का द्योतक है।

ग्वालियर में कच्छपघाट (कछवाहे) और पड़िहार राजाओं के समम में दिगम्वर जैनधर्म उन्नत रहा था। ग्वालियर किले की नग्नजैनमूर्तियां इस व्याख्या की साक्षी हैं। वारानगर के वाद दिगम्वर मुनियों का केन्द्रस्थान ग्वालियर हुआ था। और वहां के दिगम्वर मुनियों में सं० १२६६ में आचार्य रत्नकीर्ति प्रसिद्ध थे। वह स्याद्वादविद्या के समुद्र, वाल ब्रह्मचारी, तपसी और दयालु थे। उनके शिष्य नाना देशों में फैले हुये थे।[1]

मध्यप्रान्त के प्रसिद्ध हिन्दू शासक कलचूरी भी दिगंवर जैनधर्म के आश्रयदाता थे।

बङ्गाल में भी दिगम्वर धर्म इस समय मौजूद था, यह वात जैन कथाओं से स्पष्ट है। 'भक्तामरकथा' में चम्पापुर का राजा कर्ण जैनी लिखा है। भ० महावीर की जन्मनगरी विशाला का राजा लोकपाल जैनी था। पटना का राजा धात्रीवाहन श्री शिवभूषण नामक मुनि के उपदेश से जैनी हुआ था। गौड़देश का राजा प्रजापति वौद्धधर्मी था; परन्तु जैनसाधु मतिसागर की वादशक्ति पर मुग्ध होकर प्रजासहित जैनी हुआ था।[2] इस समय का जो जैन शिल्प वङ्गाल आदि प्रांतों में मिलता है, उस से उक्त जैन कथाओं का समर्थन होता है।

---

१. जैहि०, भा० ६ अङ्क ७-८ पृ० २६

२. जैप्रा०, पृ० २४०-२४३

आज तक वंगाल में प्राचीन श्रावक 'सराक' लोगों का वड़ी सख्या में मिलना वहां पर एक समय दिगम्वर जैनधर्म की प्रधानता का द्योतक है।

इस प्रकार मध्यकाल के हिन्दू राज्यों में प्राय: समग्र उत्तर भारत में दि० मुनियों का विहार और धर्मप्रचार होता था। आठवीं शताब्दि के उपरान्त जव दक्षिण भारत में दिगम्वर जैनों के साथ अत्याचार होने लगा, तो उन्होंने अपना केन्द्रस्थान उत्तर भारत की ओर वढ़ाना शुरू कर दिया था। उज्जैन, वारानगर, ग्वालियर आदि स्थानों का जैनकेन्द्र होना, इस ही वात का द्योतक है। ईस्वी ९–१० शताब्दि में जव अरव का सुलेमान नामक यात्री भारत में आया तो उसने भी यहाँ नङ्गे साधुओं को एक वड़ी संख्या में देखा था।[१] सारांशत: मध्यकालीन हिन्दूकाल में दिगम्वर मुनियों का भारत में वाहुल्य था।

---

१. "In India there are persons, who, in accordance with their profession, wander in the woods and mountains and rarely communicate with the rest of mankind ... .Some of them go about naked."

—Sulaiman of Arab; Elliot., I. p. 6.

[२०]

भारतीय संस्कृत-साहित्य में दिगम्बर मुनि।

"पाणिः पात्रं पवित्रं भ्रमणपरिगतं भैक्षमक्षय्यमन्नं।
विस्तीर्णं वस्त्रमाशा सुदशकममलं तल्पमस्वल्पमुर्वी॥
येषां निःसङ्गताङ्गी करणपरिणतिः स्वात्मसन्तोषितास्ते।
धन्याः सन्यस्तदैन्यव्यतिकरनिकराः कर्मनिर्मूलयन्ति॥"
—वैराग्यशतक।

भारतीय संस्कृत साहित्य में दिगम्बर मुनियों के उल्लेख मिलते हैं। इस साहित्य से हमारा मतलब उस सर्वसाधारणोपयोगी संस्कृत साहित्य से है जो किसी खास सम्प्रदाय का नहीं कहा जा सकता। उदाहरणतः कविवर भर्तृहरि के शतकत्रय को लीजिये। उनके 'वैराग्यशतक' में उपरोक्त श्लोक द्वारा दिगम्बर मुनि की प्रशंसा इन शब्दों में की गई है कि "जिनका हाथ ही पवित्र बर्तन है, मांग कर लाई हुई भीख ही जिनका भोजन है, दशों दिशायें ही जिनके वस्त्र हैं, सम्पूर्ण पृथ्वी ही जिनकी शय्या है, एकान्त में निःसंग रहना ही जो पसन्द करते हैं, दीनता को जिन्होंने छोड़ दिया है तथा कर्मों को जिन्होंने निर्मूल कर दिया है और जो अपने में ही संतुष्ट रहते हैं, उन

१. वेजै० पृ० ४६

पुरुषों को धन्य है।"[१] आगे इसी 'शतक' में कविवर दिगम्वर मुनिवत् चर्या करने की भावना करते हैं:—

अशीमहि वयं भिक्षामाशावासोवसीमहि।
शयीमहि महीपृष्ठे कुर्वीमहि किमीश्वरैः ॥९०॥

अर्थात्—"अब हम भिक्षाही करके भोजन करेंगे, दिशा ही के वस्त्र धारण करेंगे अर्थात् नग्न रहेंगे और भूमि पर ही शयन करेंगे। फिर भला हमें धनवानों से क्या मतलब ?"[२]

इस प्रकार के दिगम्वर मुनिको कवि क्षमादि गुणलीन अभय प्रकट करते हैं:—

धैर्यं यस्य पिता क्षमा च जननी शान्तिश्चिरं गेहिनी।
सत्यं-मित्रमिदं दया च भगिनी भ्रातामनः संयमः॥
शय्या भूमितलं दिशोऽपि वसनं ज्ञानामृतं भोजनं।
ह्येते यस्य-कुटंविनो वद सखे कस्माद्भयं योगिनः॥९८॥

अर्थात्—"धैर्य जिसका पिता है, क्षमा जिसकी माता है, शान्ति जिसकी स्त्री है, सत्य जिसका मित्र है, दया जिसकी बहिन है, संयम किया हुआ मन जिसका भाई है, भूमि जिसकी शय्या है, **दशों दिशायें ही जिसके वस्त्र हैं** और ज्ञानामृत ही जिसका भोजन है—यह सब जिसके कुटुम्बी हों भला उस योगी पुरुष को किसका भय हो सकता है ?[३]

'वैराग्यशतक' के उपरोक्त श्लोक स्पष्टतया दिगम्बर

---

१. वेजै० पृ० ४६
२. वेजै०, पृ० ४७   ३. वेजै० पृ० ४७

मुनियों को लक्ष्य करके लिखे गये हैं। इनमें वर्णित सब ही लक्षण जैन मुनियों में मिलते हैं।

'मुद्राराक्षस' नाटक में क्षपणक जीवसिद्धिका पार्ट दिगम्बर मुनि का द्योतक है।[१] वहां जीवसिद्धि के मुख से कहलाया गया है कि —

"सासणमलिहंताणं पडिवज्जह मोहवाहि वेज्जाणं।
जेमुत्तमात्तकडुअं पच्छापत्थमुपदिसन्ति ।।१८।।४।।"

अर्थात्—"मोहरूपी रोग के इलाज करने वाले अर्हंतों के शासन को स्वीकार करो, जो मुहूर्त मात्र के लिये कड़ुवे हैं, किन्तु पीछे से पथ्य का उपदेश देते हैं।"

इस नाटक के पाँचवें अङ्क में जीवसिद्धि कहता है कि—
"अलहंताणं पणमामि जेदेगंभीलदाए वुद्धीए।
लोउत लेहिं लोए सिद्धिं मग्गेहि गच्छन्दि ।।२।।"

भावार्थ—"संसार में जो वुद्धि की गंभीरता से लोकातीत (अलौकिक) मार्ग से मुक्ति को प्राप्त होते हैं, उन अर्हंतों को मैं प्रणाम करता हूं।"[२]

'मुद्राराक्षस' के इस उल्लेख से नन्दकाल में क्षपणक—दिगम्बर मुनियों के निर्बाध विहार और धर्मप्रचार का समर्थन होता है; जैसे कि पहले लिखा जा चुका है।

'वराहमिहिर संहिता' में भी दिगम्बर मुनियों का

१. HDW., p. 10.
२. वेजै०, पृ० ४०–४१

उल्लेख है। उन्हें वहां जिन भगवान का उपासक वताया है।[१] वराहमिहिर के इस उल्लेख से उनके समय में दिगम्वर मुनियों का अस्तित्व प्रमाणित होता है। अर्हत् भगवान की मूर्त्ति को भी वह नग्न ही वताते हैं।[२]

कवि दण्डिन् (आठवीं श०) अपने "दशकुमारचरित" में दिगम्वर मुनिका उल्लेख 'क्षपणक' नाम से करते हैं; जिससे उनके समय में नग्नमुनियों का होना प्रमाणित है।[३]

'पञ्चतन्त्र' (तन्त्र ४) का निम्न श्लोक उस काल में दिगम्वर मुनियों के अस्तित्व का द्योतक है:—[४]

"स्त्रीमुद्रां मकरध्वजस्य जयिनीं सर्वार्थ सम्पत् करीं।
ये मूढाः प्रविहाय यान्ति कुधियो मिथ्या फलांवेषिणः॥
ते तेनैव निहत्य निर्दयतरं नग्नीकृता मुण्डिताः।
केचिद्रक्तपटीकृताश्च जटिलाः कापालिकाश्चापरे॥"

"पञ्चतन्त्र" के "अपरीक्षितकारक पञ्चमतन्त्र" की कथा दिगम्वर मुनियों से सम्वन्ध रखती है। उससे पाटलिपुत्र

---

१. "शाक्यान् सर्वहितस्य शांति मनसो नग्नान् जिनानां विदुः" ॥१६॥६१॥

२. "आजानु लम्वबाहुः श्रीवत्साङ्क प्रशान्तमूर्तिश्च।
दिग्वासास्तरुणो रूपवांश्च कार्योऽर्हतां देवः॥४५॥५८॥
—वराहमिहिर संहिता।

३. वीर, वर्ष २ पृ० ३१७

४. पंत० निर्णयसागर प्रेस सं० १९०२ पृ० १३४–JG XIV.

(पटना) में दिगम्वर धर्म के अस्तित्व का वोध होता है। कथा में एक नाई को क्षपणक विहार में जाकर जिनेन्द्रभगवान् की वन्दना और प्रदक्षिणा देते लिखा है। उसने दिगम्वर मुनियों को अपने यहां निमन्त्रित किया, इस पर उन्होंने आपत्ति की कि श्रावक होकर यह क्या कहते हो? ब्राह्मणों की तरह यहां आमंत्रण कैसा? दि० मुनि तो आहार वेला पर घूमते हुये भक्त श्रावक के यहां शुद्ध भोजन मिलने पर विधिपूर्वक ग्रहण कर लेते हैं।[1] इस उल्लेख से दिगम्वर मुनियों के निमन्त्रण स्वीकार न करने और अहार के लिये भ्रमण करने के नियम का समर्थन होता है। इस तन्त्रमें भी दिगम्वर मुनि को एकाकी, गृहत्यागी, पाणिपात्र भोजी और दिगम्वर कहा है।[2]

"प्रवोधचंद्रोदयनाटक" के अङ्क ३ में निम्नलिखित वाक्य दिगम्वर जैन मुनि की तत्कालीन वाहुल्यता के वोधक हैं:—

"सहि पेक्ख पेक्ख एसो गलण्तमल पङ्क पिच्छिलवीहच्छदेहच्छवीउल्लुञ्चि अचिउरो मुक्कवसणवेसदुद्दसणो सिहिसिहिदपिच्छआहत्थो इदोज्जेव पडिवहदि।"

भावार्थ—"हे सखि देख देख, वह इस ओर आ रहा

---

१ 'क्षपणकविहारं गत्वा जिनेन्द्रस्य प्रदक्षिणत्रयं विधाय........। 'भोः श्रावक, धर्मज्ञोऽपि किमेवं वदसि। किं वयं ब्राह्मणसमानाः यत्र आमन्त्रणं करोषि। वयं सदैव तत्काल परिचर्यया भ्रमन्तो भक्तिभाजं श्रावकमवलोक्य तस्य गृहे गच्छामः।'........पंत., पृ० २-६ व JG. XIV: 126—130.

२. 'एकाकीगृहसंत्यक्तः पाणिपात्रो दिगम्बरः।'

है। उसका शरीर भयङ्कर और मलाच्छन्न है। शिर के वाल लुञ्चित किये हुये हैं और वह नङ्गा है। उसके हाथ में मोर-पिच्छिका है और वह देखने में अमनोज्ञ है।"

इस पर उस सखीने कहा कि—

"आं ज्ञातं मया, महामोहप्रवर्त्तितोऽयं दिगम्वर सिद्धांतः।"
(ततः प्रविशतियथा निर्दिदष्टः क्षपणकवेशो दिगम्वर सिद्धांतः)

भावार्थ—मैं जान गई! यह मायामोह द्वारा प्रवर्तित दिगम्वर (जैन) सिद्धान्त है।" (क्षपणकवेष में दिगम्वर मुनि ने वहाँ प्रवेश किया।)[१]

नाटक के उक्त उल्लेख से इस वात का भी समर्थन होता है कि दिगम्वर मुनि स्त्रियों के सम्मुख घरों में भी धर्मोपदेश के लिये पहुंच जात थे।

"गोलाध्याय" नामक ज्योतिष ग्रन्थ में दिगम्वर मुनियों की दो सूर्य्य और दो चन्द्रादि विषयक मान्यता का उल्लेख करके उसका निरसन किया गया है। इस उल्लेख से 'गोलाध्याय' के कर्त्ता के समय में दिगम्वर मुनियों का वाहुल्य प्रमाणित होता है। 'गोलाध्याय' के टीकाकर लक्ष्मीदास दिगम्वर सम्प्रदाय से भाव "जैनों" का प्रकट करते हैं और कहते हैं कि "जैनों में दिगम्वर प्रधान थे।"[२]

---

१. प्रवोध चन्द्रोदय नाटक अंक ३—JG., XIV. pA. 46-50.

२. (Goladhyay 3, Verses 8–10)—The naked sectarians and the rest affirm that two suns, two

संस्कृत साहित्य के उपरोक्त उल्लेखों से दिगम्बर मुनियों के अस्तित्व और उनके निर्बाध विहार और धर्मप्रचार करने का समर्थन होता है।

[२१]

दक्षिण भारत में दिगम्बर जैन मुनि।

"सरसा पयसा रिक्तेनाति तुच्छजलेन च।
जिनजन्मादिकल्याणक्षेत्रे तीर्थत्वमाश्रिते ॥४०॥
नाशमेष्यति सद्धर्मो मारवीर मदच्छिद:।
स्थास्यतीह क्वचित्प्रान्ते विषये दक्षिणादिके ॥४१॥"

—श्री भद्रबाहुचरित्र।

दिगम्बर जैनधर्म दक्षिण भारत में रहना निश्चित है।

दिगम्बर जैनाचार्य, राजा चन्द्रगुप्त ने जो स्वप्न देखा उसका फल बताते हुये कह गये है कि "जलरहित तथा कहीं थोड़े

---

moons and two sets of stars apppear alternately; against them I allege this reasoning. How absurd is the notion which you have formed of duplicate suns, moons and stars, when you see the revolution of the polar fish (Ursa Minor).' The commentator Lakshamidas agree that the Jainas are here meant ...... & remarks that they are described as 'naked sectarians' etc., because the class of Digambaras is a principal one among these people"—AR.' Vol. IX. p. 317.

जल से भरे हुये सरोवर के देखने से यह सच जानो कि जहाँ तीर्थङ्कर भगवान के कल्याणादि हुये हैं ऐसे तीर्थस्थानों में कामदेव के मद का छेदन करने वाला उत्तम जिनधर्म नाशको प्राप्त होगा तथा कहीं दक्षिणादि देश में कुछ रहेगा भी !"[१] और दिगम्बराचार्य की यह भविष्यवाणी करीब करीब ठीक ही उतरी है। जब कि उत्तर भारत में कभी-कभी दिगम्बर मुनियों का अभाव भी हुआ, तब दक्षिण भारत में आज तक बराबर दिगम्बर मुनि होते आये हैं। और दिगम्बर जैनों के श्री कुन्द-कुन्दादि बड़े बड़े आचार्य दक्षिण भारत में ही हुये हैं। अतः दक्षिण भारत को दिगम्बर मुनियों का गढ़ कहना बेजा नहीं है।

ऋषभदेव और दक्षिण भारत

अच्छा तो यह देखिये कि दक्षिण भारत में दिगम्बर मुनियों का सद्भाव किस जमाने से हुआ है? जैनशास्त्र बतलाते हैं कि इस कल्पकाल में कर्मभूमि की आदि में श्री ऋषभदेवजी ने सर्वप्रथम धर्म का निरूपण किया था और उनके पुत्र बाहुबलि दक्षिण भारत के शासनाधिकारी थे। पोदनपुर उनकी राजधानी थी। भगवान ऋषभदेव ही सर्व-प्रथम वहां धर्मोपदेश देते हुये पहुंचे थे।[२] वह दिगम्बर मुनि थे, यह पहले ही लिखा जा चुका है। उनके समय में ही बाहुबलि भी राजपाट छोड़कर दिगम्बर मुनि हो गये थे। इन दिगम्बर

---

१. भद्र०, पृ० ३३

२. आदिपुराण

मुनि की विशालकाय नग्न मूर्तियां दक्षिण भारत में अनेक स्थानों पर आज भी मौजूद हैं। श्रवण वेलगोल में स्थित मूर्ति ५७ फीट ऊंची अति मनोज्ञ है; जिसके दर्शन करने देशविदेश के यात्री आते हैं। कारकल—वेनूर आदि स्थानों में भी ऐसी ही मूर्तियां हैं। दक्षिण भारत में वाहुवलि मुनिराज की विशेष मान्यता है।[1]

अन्य तीर्थङ्करों का दक्षिण भारत से सम्वन्ध

ऋषभदेव के उपरान्त अन्य तीर्थङ्करों के समय में भी दिगम्वर धर्म का प्रचार दक्षिण भारत में रहा था। तेईसवें तीर्थङ्कर श्री पार्श्वनाथजी के तीर्थ में हुये राजा करकण्डु ने आकर दक्षिण भारत के जैन तीर्थों की वन्दना की थी। मलय पर्वत पर रावण के वंशजों द्वारा स्थापित तीर्थङ्करों की विशाल मूर्तियों की भी उन्होंने वन्दना की थी।[2] वहीं वाहुवलि की और श्रीपार्श्वनाथजी की मूर्तियां थीं जिनको रामचन्द्रजी ने लङ्का से लाकर यहां स्थापित किया था।[3] अन्तिम तीर्थङ्कर भगवान महावीर ने भी अपने पुनीत चरणों से दक्षिण भारत को पवित्र किया था। मलय-पर्वतवर्ती हेमांगदेश में जव वीर प्रभु पहुंचे थे तो वहां का जीवन्धर नामक राजा उनके निकट दिगम्वर मुनि हो गया था।[4]

---

१. जैशिसं०, भूमिका पृ० १७-३२

२. करकण्डु चरित् संधि ५

३. जैशिसं० भूमिका पृ० २६

४. भमवु०, पृ० ६६

इस प्रकार एक अत्यन्त प्राचीनकाल से दिगम्बर मुनियों का सद्भाव दक्षिण भारत में है।

दक्षिण भारत के इतिहास के काल

किन्तु आधुनिक इतिहास-वेत्ता दक्षिण भारत का इतिहास ईस्वी पूर्व छठी या चौथी शताब्दि से आरम्भ करते हैं और उसे निम्न प्रकार छह भागों में विभक्त करते हैं:—[१]

(१) प्रारम्भिक काल—ईस्वी ५ वीं शताब्दि तक;

(२) पल्लवकाल—ई० ५ वीं से ९ वीं शताब्दि तक;

(३) चोल अभ्युदय काल—ई० ९ वीं से १४ वीं शताब्दि तक;

(४) विजयनगर साम्राज्य का उत्कर्ष—१४ वीं से १६ वीं शताब्दि तक

(५) मुसलमान और मरहट्टा काल—१६ वीं से १८ वीं शताब्दि तक

(६) ब्रिटिश काल—१८ वीं से १९ वीं शताब्दि ई० तक

दक्षिण भारत के उत्तर सीमावर्ती प्रदेश के इतिहास के छह भाग इस प्रकार हैं—

(१) आन्ध्र काल—ई० ५ वीं श० तक

(२) प्रारम्भिक चालुक्य काल—ई० ५ वीं से ७ वीं श० और राष्ट्रकूट ७ वीं से १० वीं श०

---

१. SAI., p. 31.

(३) अन्तिम चालुक्य काल—ई० १० वीं से १४ वीं श०
(४) विजयनगर साम्राज्य
(५) मुसलमान—मरहट्टा
(६) ब्रिटिश काल।

प्रारम्भिक काल में दिगम्वर मुनि

अच्छा तो उपरोक्त ऐतिहासिक कालों में दिगम्वर जैन मुनियों के अस्तित्व को दक्षिण भारत में देख लेना चाहिये। दक्षिण भारत के "प्रारम्भिक काल" में चेर, चोल, पाण्ड्य—यह तीन राजवंश प्रधान थे।[1] सम्राट् अशोक के शिलालेख में भी दक्षिण भारत के इन राजवंशों का उल्लेख मिलता है।[2] चेर, चोल और पाण्ड्य—यह तीनों ही राष्ट्र प्रारम्भ से जैनधर्मानुयायी थे।[3] जिस समय करकण्डु राजा सिंहल द्वीप से लौट कर दक्षिण भारत—द्राविड़ देश में पहुंचे तो इन राजाओं से उनकी मुठभेड़ हुई थी। किन्तु रणक्षेत्र में जब उन्होंने इन राजाओं के मुकुटों में जिनेन्द्र भगवान की मूर्त्तियां देखीं तो इनसे सन्धि करली।[4]

---

१. SAI., p.33 २. त्रयोदश शिलालेख।

३. "Pandya Kingdom can boast of respectable antiquity. The prevailing religion in early times in their Kingdom was Jain creed."

—मजैस्मा० पृ० १०५

४. "तहि अत्थि विकितिय दिणसराउ-संचल्लिउ ताकरकण्डु राउ।
ता दिविडदेसुमहि अलु भमन्तु—संपतऊ तहिं मच्छरुवहन्तु॥

कलिंगचक्रवर्ती ऐलखारवेल जैन थे। उनकी सेवामें इन राजाओं में से पाण्डयराज ने स्वतः राज-भेंट भेजी थी[1]। इससे भी इन राजाओं का जैन होना प्रमाणित है, क्योंकि एक श्रावक का श्रावक के प्रति अनुराग होना स्वाभाविक है। और जब ये राजा जैन थे तब इनका दिगम्बर जैन मुनियों का आश्रय देना प्राकृत आवश्यक है।

पाण्डयराज उग्रपेरूवलूटी (१२८-१४० ई०) के राजदरबारमें दिगम्बर जैनचार्य श्री कुन्दकुन्द विरचित तामिलग्रन्थ "कुर्रल" प्रगट किया गया था[2]। जैन कथाग्रन्थों से उस समय दक्षिण भारत में अनेक दिगम्बर मुनियों का होना प्रकट है। 'करकण्डु चरित्' में कलिङ्ग, तेर, द्रविड़ आदि दक्षिणावर्ती देशोंमें दिगम्बर मुनियोंका वर्णन मिलता है। भ० महावीरने सङ्घसहित इन देशोंमें विहार किया था, यह ऊपर लिखा जा चुका है। तथा मौर्यचन्द्रगुप्तके समय श्रुतकेवली भद्रबाहु का सङ्घ सहित दक्षिण भारत को जाना इस बातका प्रमाण है कि दक्षिण भारत में उनसे पहले दिगम्बर जैनधर्म विद्यमान था। जैनग्रन्थ "राजावली कथा" में वहां दिगम्बर जैन मन्दिरों और

तहिं चोडे चोर-पंडिय णिवाइ—केण विखणद्धे ते मिलीयाहि।"
"करकण्डए धरियाते सिरसो सिरमउड मत्तिय वरणेहि तहो।
मउड महि देखिवि जिणपणिव करकण्डवोजायउ वहुलु दुहु ॥१०॥
—करकण्डुचरित सन्धि ८

१. JBORS., III p. 446

२. मजैस्मा०, पृ० १०५

दिगम्बर मुनियों के होनेका वर्णन मिलता है। वौद्धग्रन्थ 'मणि-मेखलै' में भी दक्षिण भारत में ईस्वी की प्रारम्भिक शताब्दियों में दिगम्बर धर्म और मुनियों के होनेका उल्लेख मिलता है।[१]

"श्रुतावतार कथा" से स्पष्ट है कि ईस्वी की पहली शताब्दि में पश्चिम और दक्षिण भारत दिगम्बर जैनधर्म के केन्द्र थे। श्रीधर सेनाचार्यजी का संघ गिरनार पर्वत पर उस समय विद्यमान था। आगमग्रन्थों को अवधारण करने के लिये दो तीक्ष्ण-वुद्धि शिष्य दक्षिण मथुरा से उनके पास आये थे और उपरान्त उन्होंने दक्षिण मथुरा में चतुर्मास व्यतीत किया था। इस उल्लेख से उस समय दक्षिण मदुरा का दिगम्बर मुनियों का केन्द्र होना सिद्ध है।[२]

"नालदियार" और दिगम्बर मुनि।

तामिल जैनकाव्य "नालदियार", जो ईस्वी पांचवीं शताब्दिकी रचना है, इस वात का प्रमाण है कि पाण्ड्यराज का देश प्राचीनकाल में दिगम्बर मुनियों का आश्रय-स्थान था। स्वयं पाण्ड्यराज दिगम्बर मुनियोंके भक्त थे। "नालदियार" की उत्पत्ति के सम्बन्ध में कहा जाता है कि एक दफ़ा उत्तर भारतमें दुर्भिक्ष पड़ा। उससे वचने के लिये आठ हज़ार दिगम्बर मुनियों का सङ्घ पाण्ड्यदेश में जा रहा। पाण्ड्यराज उन मुनियोंकी विद्वत्ता और तपस्या को देखकर उनका भक्त वन गया। जव अच्छे दिन आये तो

---

१. SSIJ.; pp. 32—33.   २. श्रुता०, पृ० १६–२०

इस सङ्घने उत्तर भारत की ओर लौट जाना चाहा; किन्तु पाण्ड्यराज उनकी सत्सङ्गति छोड़ने के लिये तैयार न थे। आखिर उस मुनिसङ्घ का प्रत्येक साधु एक एक श्लोक अपने अपने आसन पर लिखा छोड़कर विहार कर गये। जव ये श्लोक एकत्र किये गये तो वह संग्रह एक अच्छा खासा काव्य ग्रन्थ वन गया। यही 'नालदियार' था।[1] इससे स्पष्ट है कि पाण्ड्यदेश उस समय दिगम्बर जैनधर्मका केन्द्र था और पाण्ड्यराज कलभ्रवंशके सम्राट् थे। यह कलभ्रवंश उत्तरभारत से दक्षिणमें पहुंचा था और इस वंशके राजा दिगम्बर मुनियों के भक्त और रक्षक थे[2]।

गङ्गवंशके राजा और दिगम्वर मुनिगण

ईस्वी दूसरी शताव्दिमें मैसूर में गङ्गवंशी क्षत्रिराजा माधव कोंगुणिवर्मा राज्य कर रहे थे[3]। उनके गुरु दि० जैनाचार्य सिंहनन्दि थे। गङ्गवंशकी स्थापनामें उक्त आचायका गहरा हाथ था। शिलालेखों से प्रकट है कि इक्ष्वाक (सूर्यवंश) के राजा धनञ्जयकी सन्ततिमें एक गंगदत्त नामका राजा प्रसिद्ध हुआ और उसी के नामसे इस वंश का नाम 'गङ्ग' वंश पड़ा था। इस गङ्गवंश में एक पद्मनाभ नामक राजा हुआ; जिसका झगड़ा उज्जैनके राजा महीपाल से होने के कारण वह दक्षिण भारत की ओर चला गया था।

---

१. SSIJ., p. 91 २. मजैस्मा०, भूमिका पृ० ८-६।
३. रश्रा०, परिचय, पृ० १६५

उसके दो पुत्र ददिग और माधव भी उसके साथ गये थे। दक्षिण में पेरूर नामक स्थान पर उन दोनों भाइयों की भेंट कणूरगण के आचार्य सिंहनन्दिसे हुई; जिन्होंने उन्हें निम्न प्रकार उपदेश दिया था—

"यदि तुम अपनी प्रतिज्ञा भंग करोगे, यदि तुम जिन-शासन से हटोगे, यदि तुम पर-स्त्रीका ग्रहण करोगे, यदि तुम मद्य व मांस खाओगे, यदि तुम अधमोंका संसर्ग करोगे, यदि तुम आवश्यकता रखने वालोंको दान न दोगे और यदि तुम युद्धमें भाग जाओगे तो तुम्हारा वंश नष्ट होजायगा।"[1]

दिगम्वराचार्य के इस साहस बढाने वाले उपदेश को ददिग और माधव ने शिरोधार्य किया और उन आचार्य के सहयोग से वह दक्षिण भारत में अपना राज्य स्थापित करने में सफल हुये थे। उपरान्त इस वंश के सभी राजाओं ने जैन-धर्मका प्रभाव बढ़ाने का उद्योग किया था। दिगम्वर जैनाचार्य की कृपासे राज्य पा लेने की याददाश्त में इन्होंने अपनी ध्वजा में "मोरपिच्छिका" का चिन्ह रक्खा था, जो दिगम्वर मुनियों के उपकरणों में से एक है।

गङ्गवंशी अविनीत कोंगुणी (सन् ४२५—४७८) ने पुन्नाट १०००० में जैनमुनियों को भूमिदान दिया था। गङ्गवंशी दुर्वनीतिके गुरू 'शब्दावतार' के कर्त्ता दिगम्वराचार्य श्री पूज्यपाद थे[2]।

१. मजैस्मा०, पृ० १४६-१४७ २. मजैस्मा०, पृ० १४६

कादम्ब राजागण दिग० मुनियों के रक्षक थे

महाराष्ट्र और कोन्कन देशों की ओर उस समय कादम्बवंश के राजा लोग उन्नत हो रहे थे। वह वंश (१) गोआ और (२) बनवासी, ऐसे दो शाखाओं में बंटा हुआ था और इसमें जैन धर्म की मान्यता विशेष थी। दिगम्बर गुरुओं की विनय कादम्बराजा खूब करते थे। एक विद्वान् लिखते हैं कि:—

"Kadamba kings of the middle period Mrigesa to Harivarma were unable to resist the onset of Jainism; as they had to bow to the "Supreme Arhats" and endow lavishly the Jain ascetic groups. Numerous sects of Jaina priests, such as the Yapiniyas, the Nirgranthas and the Kurchakas are found living at Palasika. (IA. VII.36-37, Again vetpatas and Aharashti are also mentioned (Ibid. VI 31) Banavase and Palasika wer thus crowded centres of powerful Jain monks. Four Jaina Mss. named Jayadhavala, Vijaya Dhavala, Atidhavala and Mahadhavala written by Jaina *Gurus* Virasena and Jinasena living at Banavase during the rule of the early Kadambas were recently discovered."

—QJMS. XXII. 61—62-

अर्थात्—"मध्यकाल के मृगेश से हरिवर्मा तक कदम्ब

वंशी राजागण जैनधर्म के प्रभाव से अपने को वचा न सके। वे 'महान् अर्हंतदेव' को नमस्कार करते और जैनसाधुसंघों को खूब दान देते थे। जैन साधुओं के अनेक संघ जैसे यापनीय[१] निर्ग्रन्थ[२] और कूर्चक[३] कादम्वों की राजधानी पालाशिकमें रह रहे थे। श्वेतपट[४] और अहराष्टि[५] संघों के वहां होनेका उल्लेख भी मिलता है। इस तरह पालाशिक और वनवासी सवल जैन साधुओं से वेष्टित मुख्य जैन केन्द्र थे। दिगम्बर जैन गुरु वीरसेन और जिनसेन ने जिन जयधवल, विजय-धवल, अतिधवल और महाधवल नामक ग्रंथों की रचना वनवासी में रहकर प्रारंभिक कदम्व राजाओं के समय में की थी, उन चारों ग्रंथों की प्रतियां हालही में उपलब्ध हुई हैं।"

प्रो० शेषागिरि राउ इन प्रारंभिक कदम्वोंको भी जैन-धर्मका भक्त प्रगट करते हैं। उनके राज्य में दिगम्बर जैन मुनियों को धर्म प्रचार करने की सुविधायें प्राप्त थीं।[६] इस प्रकार कदम्ववंशी राजाओं द्वारा दिगम्बर मुनियों का समुचित सम्मान किया गया था।

---

१. यापनीय संघके मुनिगण दिगम्बर भेष में रहते थे, यद्यपि वे स्त्री-मुक्ति आदि मानते थे। देखो दर्शनसार

२. 'निर्ग्रन्थ' = दिगम्बर मुनि

३. 'कूर्चक' किन जैनसाधुओं का द्योतक है, यह प्रगट नहीं है।

४. श्वेतपट = श्वेताम्बर

५ अहराष्टि संभवतः दिगम्बर मुनियों का द्योतक है। शायद 'अह्लीक' शब्द से इसका निकास हो।

६. SSIJ., pt. II p. 69-72

पल्लवकाल में दिगम्वर मुनि।

एक समय पल्लववंशके राजा भी जैनधर्म के रक्षक थे। सातवीं शताब्दिमें जव ह्यान-सांग इस देशमें पहुंचा तो उसने देखा कि यहां दिगम्वर जैन साधुओं (निर्ग्रन्थों की संख्या अधिक है। पल्लववंशके शिव-स्कंदवर्मा नामक राजाके गुरु[१] दिगंवराचार्य कुन्दकुन्द थे। उपरान्त इस वंशका प्रसिद्ध राजा महेन्द्रवर्म्मन् पहले जैन था और दिगम्वर साधुओंकी विनय करता था[२]।

चोलदेश में दिगम्वर मुनि।

चोलदेशमें भी उस चीनीयात्री ने दिगम्वरधर्म को प्रचलित पाया था।[३] मलकूट (पाण्डयदेश) में भी उसने नंगे जैनियों को वहुसंख्यामें पाया था[४]। सातवीं शताब्दिके मध्यभागमें पाण्डयदेशका राजा कुण या सुन्दर पाण्डय दिगम्वर मुनियोंका भक्त था। उसके गुरु दिगम्वराचार्य श्री अमलकीर्ति थे[५] और उसका विवाह एक चोल राजकुमारी के साथ हुआ था, जो शैव थी। उसी के संसर्ग से सुन्दर पाण्डय भी शैव हो गया था।[६]

---

१. P S Hist. Intro, p. XV

२. EHI. p. 495

३. हुभा०, पृ० ५७०

४. हुभा०, पृ० ५७४— The nude Jainas were present in multitudes "—EHI. p. 473

५ ADJB. p. 46 ६ EHI. p. 475

दसवीं श० तक प्रायः सब राजा दिग० जैनधर्मको आश्रयदाता थे

सच बात तो यह है कि दक्षिण भारत में दिगम्बर जैनधर्म की मान्यता ईस्वी दसवीं शताब्दि तक खूब रही थी। दिगम्बर मुनिगण सर्वत्र विहार करके धर्मका उद्योत करते थे। उसी का परिणाम है कि दक्षिण भारतमें आजभी दिगम्बर मुनियों का सद्भाव है, मि० राइस इस विषयमें लिखते हैं कि:—

"For more than a thousand years after the begining of the Christian era, Jainism was the religion professed by most of the rulers of the Kanarese people. The Ganga Kings of Talkad, the Rashtra Kuta and Kalachurya Kings of Manyakhet and the early Hoysalas were all Jains. The Brahmanical Kadamba and early Chalukya Kings were tolerant of Jainism The Pandya Kings of Madura were Jainas; and Jainism was dominant in Gujerat and Kathiawar" [१]

भावार्थ—'ईस्वी सन् के प्रारंभ होने से एक हजार से ज्यादा वर्षों तक कन्नड़ देशके अधिकांश राजाओं का मत जैनधर्म था। तलकाडके गङ्ग राजागण, मान्यखेट के राष्ट्रकूट और कलाचूर्य शासक और प्रारंभिक होयसल नृप सब ही जैनी थे। ब्राह्मणमतको मानने वाले जो कादम्बराजा

१. HKL, p. 16

थे उन्होंने और प्रारंभ के चालुक्यों ने जैनधर्म के प्रति उदारता का परिचय दिया था। मदुरा के पाण्ड्यराजा जैन ही थे और गुजरात तथा काठियावाड में भी जैनधर्म प्रधान था।"

आन्ध्र और चालुक्य काल में दिगम्बर मुनि

आन्ध्रवंशी राजाओं ने जैन धर्म को आश्रय दिया था, यह पहले लिखा जा चुका है। चोल और चालुक्य अभ्युदयकाल में दिगम्बर धर्म प्रचलित रहा था। चालुक्य राजाओं में पुलकेशी द्वितीय, विनयादित्य, विक्रमादित्य आदि ने दिगम्बर विद्वानों का सम्मान किया था। विक्रमादित्य के समय में विजय पंडित नामक दिगम्बर जैन विद्वान एक प्रतिभाशाली वादी थे। इस राजाने एक जैनमंदिर का जीर्णोद्धार कराया था।[1] चालुक्यराज गोविन्द तृतीय ने दिगम्बर मुनि अर्ककीर्तिका सम्मान किया और दान दियाथा। वह मुनि ज्योतिष विद्या में निपुण थे।[2] वेङ्गिराज चौलुक्य विजयादित्य ६ म के गुरू दिगम्बराचार्य अर्हन्नन्दि थे। इन आचार्य की शिष्या चामेकाम्बा के कहने पर राजाने दान दिया था।[3] सारांश यह कि चालुक्यराज्य में दिगम्बर मुनियों और विद्वानों ने निरापद हो धर्मोद्योत किया था।

राष्ट्रकूटकालमें दिगम्बर मुनि

राष्ट्रकूट अथवा राठौर राजवंश जैनधर्म का महान् आश्रय दाता था। इस वंश के कई

१. SSIJ., pt. I p. 111
२. ADJB ,p. 97 व विको०, भा०५ पृ० ७६।३. ADJB.,p.68

राजाओंने अणुव्रतों और महाव्रतों को धारण किया था, जिस के कारण जैनधर्म की विशेष प्रभावना हुई थी। राष्ट्रकूट राज्य में अनेकानेक दिग्गज विद्वान् दिगम्बर मुनि विहार और धर्म प्रचार करते थे। उनके रचे हुए अनूठे ग्रंथरत्न आज उपलब्ध हैं। श्री जिनसेनाचार्य का "हरिवंशपुराण", श्री गुणभद्राचार्य का "उत्तर पुराण", श्रीमहावीराचार्य का "गणितसार सग्रह" आदि ग्रंथ राष्ट्रकूट राजाओंके समयकी रचनायें हैं।[1] इन राजाओं में अमोघवर्ष प्रथम एक प्रसिद्ध राजा था उसकी प्रशंसा अरबके लेखकों ने की है और उसे संसारके श्रेष्ठ राजाओं में गिना है।[2] वह दिगम्बर जैनाचार्यों का परम भक्त था।

सम्राट् अमोघ वर्ष दिगम्बर मुनि थे

उसने स्वयं राज-पाट त्याग कर दिगम्बर मुनि का व्रत स्वीकार किया था।[3] उसका रचा हुआ 'रत्नमालिका' एक प्रसिद्ध सुभाषित ग्रन्थ है। उसके गुरु दिगम्बराचार्य श्री जिनसेन थे; जैसे कि "उत्तर पुराण" के निम्न श्लोक में कहा गया है कि वे श्री जिन सेन के चरणों में नतमस्तक होते थे :—

---

१. SSIJ., pt I pp. 111–112

२. Elliot., Vol. I pp. 3-24—"The greatest king of India is the Balahara, whose name imports 'King of Kings'."—Ibu Khurdabh. व भाप्रारा०, भाग २ पृ० १३–१५।

३. 'रत्नमालिका' में अमोघवर्षने इस बातको इन शब्दों में स्वीकार किया है :—

"विवेकात्यक्तराज्येन राज्ञेयं रत्नमालिका।
रचिताऽमोघवर्षेण सुधियां सदलङ्कृतिः॥"

"यस्यप्रांशुनखांशुजाल–विसरद्धारान्तराविर्भव—
त्पादाम्भोजरजः पिशङ्गमुकुटप्रत्यग्ररत्नद्युतिः ।
संस्मर्ता स्वममोघवर्षनृपतिः पूतोऽहमद्येत्यलं
स श्रीमाञ्जिनसेनपूज्यभगवत्पादो जगन्मङ्गलम् ॥"

अर्थात्—"जिन श्री जिनसेन के देदीप्यमान नखों के किरण समूह से फैलती हुई धारा वहती थी और उसके भीतर जो उनके चरणकमल की शोभा को धारण करते थे उनकी रज से जब राजा अमोघवर्ष के मुकुट के ऊपर लगे हुए रत्नों की कांति पीली पड़ जाती थी तव वह राजा अमोघवर्ष आपको पवित्र मानता था और अपनी उसी अवस्थाका सदा स्मरण किया करता था, ऐसे श्रीमान् पूज्यपाद भगवान् श्री जिन-सेनाचार्य सदा संसार का मंगल करें।

अमोघ वर्ष के राज्य काल में एकान्त पक्ष का नाश होकर स्याद्वाद मतकी विशेष उन्नति हुई थी। इसीलिये दिगम्बराचार्य श्री महावीर "गणितसारसंग्रह" में उनके राज्य की वृद्धि की भावना करते हैं[१]। किन्तु इन राजा के वाद राष्ट्रकूट राज्यकी शक्ति छिन्न भिन्न होने लगी थी। यह वात गंगवाडी के जैनधर्मानुयायी गङ्गराजा नरसिंहको सहन नहीं हुई। उन्होंने तत्कालीन राठौर राजा की सहायता की थी और राठौर राजा इन्द्र चतुर्थको पुनः राज्यसिंहासन

१. "विध्वस्तैकान्तपक्षस्य स्याद्वादन्यायवादिनः ।
देवस्य नृपतुङ्गस्य वर्द्धतां तस्य शासनं ॥६॥"

पर बैठाया था। राजा इन्द्र दिगम्बर जैनधम का अनुयायी था और उसने सल्लेखना व्रत धारण किया था।[1]

गङ्गराजा और सेनापति चामुण्डराय।

इस समय गंगवाडी के गङ्गराजाओं ने जैनोत्कर्ष के लिये खास प्रयत्न किया था। राचमल्ल सत्यवाक्य और उनके पूर्वज मारसिंह के मन्त्री और सेनापति दिगम्बर जैनधर्मानुयायी वीरमार्तण्ड राजा चामुण्डराय थे। इस राजवंश की राजकुमारी पनिवव्वेने आर्यिका के व्रत धारण किये थे[2]। श्री अजितसेनाचाय और नेमिचन्द्राचार्य इन राजाओं के गुरु थे। चामुण्डरायजी के कारण इन राजाओं द्वारा जैन धर्म की विशेष उन्नति हुई थी। दिगम्बर मुनियों का सर्वत्र आनन्दमई विहार होता था।[3]

कलचूरिवंशके राजा दिगम्बर मुनियों के बड़े संरक्षक थे।

किन्तु गङ्गों का साहाय्य पाकर भी राष्ट्रकूट वंश अधिक टिक न सका। और पश्चिमीय चालुक्य प्रधानता पा गये। किन्तु यह भी अधिक समय तक राज्य न कर सके—उनको कलचूरियों ने हरा दिया। कलचूरी वंश के राजा जैनधर्म के परम भक्त थे। इनमें बिज्जलराजा प्रसिद्ध और जैनधर्मानुयायी था। इसी राजा के समय में वासवने "लिंगायत" मत स्थापित किया था।

---

१. SSIJ. pt: I p. 112
२. मजैस्मा० पृ० १५०
३। वीर, वर्ष ७ अंक १-२ देखो

किन्तु विज्जल राजाकी दिगम्बर जैनधर्म के प्रति अटूट भक्ति के कारण वासव अपने मतका बहुप्रचार करने में सफल न हो सका था। आखिर जब विज्जलराज कोल्हापुर के शिलाहार राजाके विरुद्ध युद्ध करने गये थे, तब इस वासवने धोखे से उन्हें विष देकर मार डाला था।[१] और तब कहीं लिंगायत मतका प्रचार हो सका था। इस घटना से स्पष्ट है कि विज्जल दिगम्बर मुनियों के लिये कैसा आश्रय था!

होयसालवंशी राजा और दिगम्बर मुनि।

मैसोरके होयसाल वंश के राजागण भी दिगम्बर मुनियों के आश्रयदाता थे। इस वंशकी स्थापना के विषय में कहा जाता है कि साल नामका एक व्यक्ति एक मंदिरमें एक जैन यतिके पास विद्याध्ययन कर रहा था, उस समय एक शेरने उन साधुपर आक्रमण किया। सालने शेरको मारकर उनकी रक्षा की और वह 'होयसाल' नामसे प्रसिद्ध हुआ था[२]। उपरान्त उन्हीं जैन-साधुका आशीर्वाद पाकर उसने अपने राज्य की नींव जमाई थी, जो खूब फला फूला था। इस वंशके सबही राजाओं ने दिगम्बर मुनियों का आदर किया था, क्योंकि वे सब जैन थे[३]। होयसाल राजा विनयदित्य के गुरु दिगम्बर साधु श्री शान्तिदेव मुनि थे[४]। इन राजाओं में विट्टिदेव अथवा विष्णुवर्द्धन

---

१. मजैस्मा० पृ० १५५-१५६
२. SSIJ ; pt I p. 115
३ मजैस्मा० पृ० १५६-१५७
४. SSIJ., pt. I p. 115

राजा प्रसिद्ध था। वह भी जैनधर्मका दृढ़ श्रद्धानी था। उसकी रानी शान्तलदेवी प्रसिद्ध दिगम्बराचार्य श्री प्रभाचन्द्र की शिष्या थी[1]। किन्तु उसकी एक दूसरी रानी वैष्णवधर्म की अनुयायी थी। एक रोज राजा इस रानी के साथ राजमहल के झरोखे में बैठा हुआ था कि सड़क पर एक दिगम्बर मुनि दिखाई दिये। रानी ने राजाको बहकाने के लिये यह अवसर अच्छा समझा। उसने राजासे कहा कि "यदि दिगम्बर साधु तुम्हारे गुरु हैं तो भला उन्हें बुलाकर अपने हाथसे भोजन करादो"। राजा दिगम्बर मुनियोंके धार्मिक नियमको भूलकर कहने लगे कि "यह कौन बड़ी बात है"। अपने हीन अङ्गका उसे खयाल न रहा। दिगम्बर मुनि अङ्गहीन, रोगी आदि के हाथ से भोजन ग्रहण न करेंगे, इसका उसने ध्यान भी न किया और मुनिमहाराज को पड़गाह लिया। मुनिराज अंतराय हुआ जानकर वापस चले गये। राजा इस पर चिढ़ गया और वह वैष्णव धर्ममें दीक्षित होगया[2]। किन्तु उसके वैष्णव हो जाने पर भी दिगम्बर मुनियोंका बाहुल्य उसके राज्य में बना रहा। उसकी अग्रमहषी शान्तलदेवी अब भी दिगम्बर मुनियों की भक्त थी और उसके सेनापति तथा प्रधान मंत्री गंगराज भी दिगम्बर मुनियों के परम सेवक थे। उनके संसर्ग से विष्णुवर्द्धन ने अन्तिम समयमें भी दिगम्बर

---

१. Ibid p 116

२. AR., Vol. IX p. 266

मुनियों का सम्मान किया और जैन मन्दिरों को दान दिया था[1]। उनके उतराधिकारी नरसिंह प्रथम द्वारा भी दिगम्बर मुनियों का सम्मान हुआ था। नरसिंह का प्रधानमंत्री हुल्ल दिगम्बर मुनियों का परम भक्त था। उस समय दक्षिण भारत में चामुण्डराय, गङ्गराज और हुल्ल दिगम्बरधर्मके महान् प्रभावक और स्तंभ समझे जाते थे[2]। वल्लालराय होयसालके गुरू श्री वासपूज्य व्रती थे[3]। राजा पुनिस होयसाल के गुरू अजित मुनि थे। [4]

विजयनगर साम्राज्य में दिगम्बर मुनि।

विजयनगर साम्राज्य की स्थापना आर्य-सभ्यता और संस्कृति की रक्षा के लिये हुई थी। वह हिन्दू संगठन का एक आदर्श था। शैव वैष्णव-जैन—सबही कंधे से कंधा जुटा कर धर्म और देश रक्षा के कार्यमें पगे हुए थे। स्वयं विजयनगर सम्राटों में हरिहर द्वितीय और राजकुमार उग दिगम्बर जैनधर्म में दीक्षित होकर दिगंवर मुनियों के महान् आश्रयदाता हुये थे[5]। दिगम्बर मुनि श्री धर्मभूषणजी राजा देवराय के गुरू थे तथा आचार्य विद्यानन्दि ने देवराज और कृष्णराय नामक राजाओं के दरवार में वाद किया था तथा विलंगी और कारकल में दिगंवर धर्मकी रक्षा की थी।[6]

---

१. मजैस्मा० प्रस्तावना पृ० १३ २. Ibid
३. मजैस्मा०, पृ० १६२ ४. ADJB, p. 31
५ SSIJ., pt I p. 118 ६. मजैस्मा०, पृ० १६३

मुस्लिम काल में दिगम्बर मुनि ।

मुस्लिम काल में देश त्रसित और दुःखित हो रहा था। आर्य-धर्म संकटाकुल थे। किन्तु उस पर भी हम देखते हैं कि प्रसिद्ध मुसलमान शासक हैदरअली ने श्रवणवेलगोल की नग्नदेवमूर्ति श्री गोमट्टदेव के लिये कई गाँवोंकी जागीर भेंट की थी[१]। उस समय श्रवणवेलगोल के जैनमठ में जैनसाधु विद्याध्ययन कराते थे। दिगम्बराचार्य विशालकीर्ति ने सिकन्दर और वीरु पक्षराय के सामने वाद किया था।[२]

मैसोर के राजा और दिगम्बर मुनि ।

मैसोर के ओडयरवंशी राजाओं ने दिगंबर जैनधर्म को विशेष आश्रय दिया था और वर्तमान शासक भी जैनधर्म पर सदय हैं। सत्रहवीं शताब्दि में भट्टाकलङ्क देव नामक दिगम्बराचार्य हदुवल्ली जैनमठ के गुरुके शिष्य और महावादी थे। उन्होंने सर्वसाधारण में वाद करके जैनधर्म की रक्षा की थी। वह संस्कृत और कन्नड़ के विद्वान् तथा छह भाषाओं के ज्ञाता थे[३]। जैनरानी भैरवदेवी ने मणिपुर का नाम बदलकर इनकी स्मृति में 'भट्टाकलङ्कपुर' रक्खा था—वही आजकल का भटकल है[४]। श्री कृष्णराय और अच्युतराय

---

१. AR, Vol. IX. 267 & SIJ., pt. I p 117

२. मजैस्मा० पृ० १६३

३. HKL., p. 83

४. वृजैश०, भा० १ पृ० १०

राजाके सम्मुख श्री दिगम्बर मुनि नेमिचन्द्र ने वाद किया था।[1]

पण्डाईवेडू राजा और दिगम्बर मुनि

पुण्डी (उत्तर अर्काट) के तीसरे ऋषभदेव मंदिर के विषयमें कहा जाता है कि पण्डाईवेडू राजाकी लड़की को भूतवाधा सताती थी। उसी समय कुछ शिकारियों के पास एक दिगंबर मुनिने श्री ऋषभदेव की मूर्ति देखी। मुनिजी ने वह मूर्ति उनसे लेली। इन्हीं शिकारियों ने राजा से मुनिजी की प्रशंसा की। उसपर राजाने मुनिजी की वन्दना की और उनसे भूतवाधा दूर करने का अनुरोध किया। मुनिजी ने लड़की की भूतवाधा दूर करदी। राजा वहुत प्रसन्न हुआ और उसने उक्त मंदिर वनवाया।[2]

दो सौ वर्ष पहले दिगम्बर मुनि

दक्षिण भारतमें दो सौ वर्ष पहले कई एक दिगंबर मुनियों का सद्भाव था। उनमें मन्नरगुडी के पर्णकुटिवासी ऋषि प्रसिद्ध हैं। उन्होंने कई मूर्तियों और मंदिरों की प्रतिष्ठा कराई थी।[3] उनके अतिरिक्त संधि महा मुनि और पण्डितमहामुनि भी प्रसिद्ध हैं। उन्होंने चिताम्बूर नामक ग्राम

---

१. मजैस्मा०, पृ० १६३

२ दिजैडा०, पृ० ८५७

३. Ibid, p. 864

में वहां के ब्राह्मणों के साथ वाद किया था और जैनधर्म का डंका बजाया था। तब से वहां पर एक विद्यापीठ स्थापित है।[1] सचमुच दक्षिण भारत में एक अत्यन्त प्राचीनकाल से सिलसिलेवार दिगम्बर मुनियों का सद्भाव रहा है। प्रो० ए० एन० उपाध्याय इस विषय में लिखते हैं कि दक्षिण भारत में नियमित रूपमें दिगम्बर मुनि होते आये हैं। पिछले सौ वर्षों में सिद्धय्य आदि अनेक दिगम्बर मुनि इस ओर हो गुज़रे हैं, किन्तु खेद है, उनकी जीवन सम्बन्धी वार्ता उपलब्ध नहीं है।

महाराष्ट्र देश के दिगम्बर जैन मुनि।

दक्षिण भारत की तरह ही महाराष्ट्रदेशभी जैनधर्मका केन्द्र था[2] वहां अब तक दिगंबर जैनों की वाहुल्यता है। कोल्हापुर, वेलगाम आदि स्थान जैनोंकी मुख्य वस्तियां थीं। कहते हैं एक मरतवा कोल्हापुर में दिगंवर मुनियोंका एक वृहत् सङ्घ आकर ठहरा था। राजा और रानीने भक्तिपूर्वक उसकी वन्दना की थी। दैवयोग से सङ्घ जहां पर ठहरा था वहां आग लग गई। मुनिगण उसमें भस्म हो गये। राजाको वड़ा परिताप हुआ। उसने उनके स्मारकमें १०८ दि० मन्दिर वनवाये। सङ्घ में १०८ ही दिगम्बर मुनि थे।[3] इस घटना से महाराष्ट्र में एक समयमें दिगंवर मुनियोंकी वाहुल्यता

---

१ दिजैंडा०, पृष्ठ ८५६

२. Jainism was specially popular in the Southern Maratha country." EHI., p 444

३. वंप्राजैंस्मा०, पृ० ७६

का पता चलता है। सचमुच महाराष्ट्रके रट्ट, चालुक्य, शिलाहार आदि वंश के राजा दिगंवर जैनधर्मके पोषक थे, और यही कारण है कि वहां दिगंवर मुनियोंका वड़ी संख्या में विहार हुआ था। अठारहवीं शताब्दि में हुये दो दिगंवर मुनियों का पता चलता है। एक मराठी कवि जिनदास के गुरु विद्वान् दिगंबराचार्य श्री उज्जतकीर्ति थे। दूसरे महतिसागर जी थे। उन्होंने स्वतः क्षुल्लकवत् दीक्षा ली थी। उपरान्त देवेन्द्र कीर्ति भट्टारक से विधिपूर्वक दीक्षा ग्रहण की थी। बन्हाड़देश में उन्होंने खूव धर्मप्रभावना की थी। गूजरोंको उन्होंने जैनी वनाया था। दही गांव उनका समाधिस्थान है, जहां सदा मेला लगता है। उनके रचे हुए ग्रन्थभी मिलते हैं। (मजैइ० पृ० ६५-७२)

शाके ११२७ में कोल्हापुर के अजरिका स्थान में त्रिभुवन-तिलक चैत्यालयमें श्रीविशालकीर्ति आचार्य के शिष्य श्री सोमदेवाचार्य ने ग्रंथ रचना की थी।

दक्षिण भारत के प्रसिद्ध दि० जैनाचार्य

दिगंवर जैनियोंके प्रायः सव ही दिग्गज विद्वान् और आचार्य दक्षिणभारत में ही हुये हैं। उन सबका संक्षिप्त वर्णन उपस्थित करना यहां संभव नहीं है, किन्तु उनमें से प्रख्यात दिगंवराचार्यों का वर्णन यहां पर देदेना इष्ट है। अङ्ग ज्ञानके ज्ञाता दिगंवराचार्योंकेउपरान्त जैनसङ्घमें श्री कुन्दकुन्दाचार्यका नाम प्रसिद्ध है। दिगंवर जैनों में उनकी मान्यता विशेष है। वह महातपस्वी और

बड़े ज्ञानी थे। दक्षिण भारत के अधिवासी होने पर भी उन्होंने गिरिनार पर्वत पर जाकर श्वेतांबरोंसे वाद किया था [१]। तामिल साहित्यका नीतिग्रन्थ कुरल उन्हींकी रचना थी [२]। उन और उन्हीके समान अन्य दिगंबराचार्योंके विषयमें प्रो० रामास्वामी ऐयंगर लिखते हैं:—

"First comes Yatindra Kunda, a great Jain Guru 'who in order to show that both within & without he could not be ass'sted by R jas, moved about leaving a space of four inches between himself and the earth under his feet'. Uma Svami, the compiler of *Tattvartha Sutra*, Griddhrapinchha, and his disciple Balakapinchha follow. Then comes Samantabhadra, 'ever fortunate', 'whose discourse lights up the palace of the three worlds filled with the all meaning Syadvada' This Samantabhadra was the first of a series of celebrated Digambara writers who acquired considerable predominance, in the early Rashtrakuta period. Jain tradition assigns him Saka 60 or 138 A. D.................He was a great Jaina missionary who tried to spre-

१. दिजैडा०, पृ० ७६५

२. SSIJ, I. pp. 40—44 & 89

ad far and wide Jaina doctrines and morals and that he met with no opposition from other sects wherever he went, Samantabhadra's appearance in south India marks an epoch not only in the annals of Digambara tradition, but also in the history of Sanskrit literature... .... After Samantabhadra a large number of Jain *Munis* took up the work of proselytism. The more important of them have contributed much for the uplift of the Jain world in literature and secular affairs. There was, for example, Simhanandi, the Jain sage, who, according to tradition, founded the state of Gangavadi. Other names are those of Pujyapada, the author of the incomparable grammar, *Jinendra Vyakarana* and of Akalanka who, in 788 A. D., is believed to have confuted the Buddhists at the court of Himasitala in Kanchi, and thereby procured the expulsion of the Buddhists from South India."—SSIJ., pt. I pp. 29-31

भावार्थ—"पहले ही महान् जैनगुरु यतीन्द्र कुन्द का नाम मिलता है जो राजाओं के प्रति निस्पृहता दिखाते हुये अग्रसर चलते थे। 'तत्वार्थ सूत्र' के कर्त्ता उमास्वामी गृद्धपिच्छ

और उनके शिष्य वलाकपिच्छ उनके बाद आते हैं। तव समन्तभद्र का नाम दृष्टि पड़ता है जो सदा भाग्यवान रहे और जिनकी स्याद्वादवाणी तीन लोकको प्रकाशमान करती थी। यह समन्तभद्र प्रारंभिक राष्ट्रकूट कालके अनेक प्रसिद्ध दिगंवर मुनियों में सर्व प्रथम थे। उनका समय जैनमतानुसार सन् १३८ ई० है। यह महान् जैन प्रचारक थे, जिन्होंने चहुंओर जैनसिद्धान्त और शिक्षाका प्रचार किया और उन्हें कहीं भी किसी विधर्मी संप्रदायके विरोध को सहन न करना पड़ा। उनका प्रादुर्भाव दक्षिण भारत के दिगंवर जैन इतिहासके लिये ही युगप्रवर्तक नहीं है, वल्कि उससे संस्कृत साहित्य में एक महान् परिवर्तन हुआ था। समन्तभद्र के बाद वहुसंख्यक जैन साधुओंने अजैनोंको जैनी वनाने का कार्य किया था। उनमें से प्रसिद्ध साधुओंने जैनसंसार को साहित्य और राष्ट्रीय अपेक्षा उन्नत वनाया था। उदाहरणतः जैनाचार्य सिंहनन्दिने गङ्गवाड़ी का राज्य स्थापित कराया था। अन्य आचार्यों में पूज्यपाद, जिनकी रचना अद्वितीय "जिनेन्द्र व्याकरण" है और अकलङ्क देव हैं जिन्होंने कांची के हिमशीतल राजाके दरवारमें वौद्धों को वादमें परास्त करके उन्हें दक्षिण भारत से निकलवा दिया था।"

श्री उमास्वामी—श्री कुन्दकुन्दाचार्य के उपरान्त श्री उमास्वामी प्रसिद्ध आचार्य थे, प्रो० सा० का यह प्रकटकरना निस्सन्देह ठीक है। उनका समय वि० सं० ७६ है। गुजरात

प्रान्तके गिरिनगर में जब यह मुनिराज विहार कर रहे थे और एक द्वैपायक नामक श्रावकके घर पर उसकी अनुपस्थितिमें आहार लेने गये थे, तब वहां पर एक अशुद्ध सूत्र देखकर उसे शुद्ध कर आये थे। द्वैपायकने जब घर आकर यह देखा तो उसने उमास्वामी से "तत्वार्थसूत्र" रचनेकी प्रार्थनाकी थी। तदनुसार यह ग्रन्थ रचा गया था। उमास्वामी दक्षिण भारत के निवासी और आचार्य कुन्दकुन्द के शिष्य थे, ऐसा उनके 'गृद्धपिच्छ' विशेषण से बोध होता है।[१]

श्री समन्तभद्राचार्य—श्रीसमन्तभद्राचार्य दिगम्बर जैनों में बड़े प्रतिभाशाली नैयायिक और वादी थे। मुनिदशामें उन को भस्मक रोग होगया था, जिसके निवारणके लिये वह काञ्चीपुर के शिवालय में शैव-संन्यासीके भेषमें जा रहे थे। वहीं 'स्वयंभू स्तोत्र' रचकर शिवकोटि राजाको आश्चर्यचकित कर दिया था। परिणामतः वह दिगम्बर मुनि होगया था। समन्तभद्राचार्यने सारे भारतमें विहार करके दिगम्बर जैनधर्म का डंका बजाया था। उन्होंने प्रायश्चित्त लेकर पुनः मुनिवेष और फिर आचार्य पद धारण किया था। उनकी ग्रंथ रचनायें जैन धर्मके लिए बड़े महत्व की हैं।[२]

श्री पूज्यपादाचार्य—कर्नाटक देशके कोलंगाल नामक गांवमें एक ब्राह्मण माधवभट्ट विक्रमकी चौथी शताब्दिमें रहता था। उन्हींके भाग्यवान पुत्र श्रीपूज्यपादाचार्य थे। उनका दीक्षा

---

१ मजैइ०, पृ० ४४   २ Ibid. पृ० ४५।

नाम श्री देवनन्दि था। नाना देशोंमें विहार करके उन्होंने धर्मोपदेश दिया था, जिसके प्रभाव से सैकड़ों प्रसिद्ध पुरुष उनके शिष्य हुये थे। गङ्गवंशी दुर्विनीत राजा उनका मुख्य शिष्य था। "जैनेन्द्रव्याकरण", "शव्दावतार" आदि उनकी श्रेष्ठ रचनायें हैं।[1]

श्री वादीभसिंह—यतिवर श्री वादीभसिंह श्रीपुष्पसेन मुनिके शिष्य थे। उनका गृहस्थ दशाका नाम 'ओढयदेव' था, जिससे उनका दक्षिणदेशवासी होना स्पष्ट है। उन्होंने सातवीं शती में "क्षत्रचूड़ामणि", "गद्यचिन्तामणि" आदि ग्रन्थों की रचना की थी।[2]

श्री नेमिचन्द्राचार्य—श्री नेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्त्ती नन्दिसङ्घ के स्वामी अभयनन्दिके शिष्य थे। वि० सं० ७३५ में द्रविड़देशके मदुरा नगरमें वह रहते थे। उन्होंने जैनधर्म का विशेष प्रचार किया था और उनके शिष्य गङ्गवंशके राजा श्री राचमल्ल और सेनापति चामुण्डराय आदि थे। उनकी रचनाओंमें "गोमट्टसार" ग्रन्थ प्रधान है।[3]

श्री अकलङ्काचार्य—श्री अकलङ्काचार्य देवसङ्घके साधु थे। वौद्धमठ में रहकर उन्होंने विद्याध्ययन किया था। उपरांत बौद्धोंसे वाद करके उनका पराभव और जैनधर्मका उत्कर्ष प्रकट कियाथा। काँचीका हिमशीतल राजा उनका मुख्य शिष्य

---

१. Ibid पृ० ४६।
२. Ibid. पृ० ४७।
३. Ibid पृ० ४७-४८।

था। उनके रचे हुये ग्रन्थ में राजवार्त्तिक, अष्टशती, न्यायविनिश्चयालङ्कार आदि मुख्य हैं[1]।

श्री जिनसेनाचार्य—राजाओं से पूजित श्री वीरसेन स्वामी के शिष्य श्री जिनसेनाचार्य सम्राट् अमोघवर्षके गुरु थे। उस समय उनके द्वारा जैनधर्म का उत्कर्ष विशेष हुआ था। वह अद्वितीय कवि थे। उनका "पार्श्वाभ्युदयकाव्य' कालिदास के मेघदूत काव्य की समस्यापूर्ति रूपमें रचा गया था। उनकी दूसरी रचना 'महापुराण' भी काव्यदृष्टि से एक श्रेष्ठ ग्रंथ है। उनके शिष्य गुणभद्राचार्य ने इस पुराण के शेषांश की पूर्ति की थी।[2]

श्री विद्यानन्दि आचार्य—श्री विद्यानन्दि आचार्य कर्णाटक देशवासी और गृहस्थदशा में एक वेदानुयायी ब्राह्मण थे। 'देवागम' स्तोत्र को सुनकर वह जैनधर्म में दीक्षित होगये थे। दिगंबर मुनि होकर उन्होंने राजदरबारों में पहुंचकर ब्राह्मणों और बौद्धों से वाद किये थे; जिनमें उन्हें विजय श्री प्राप्त हुई थी। अष्टसहस्री, आप्तपरीक्षा आदि ग्रंथ उनकी दिव्य रचनायें हैं[3]।

---

१. Ibid पृ० ४९।
२. Ibid पृ० ५०-५१।
३. Ibid पृ० ५१-५२।

श्री वादिराज—श्रीवादिराजसूरि नन्दिसंघके आचार्य थे। उनकी 'षटतर्कषण्मुख', 'स्याद्वादविद्यापति' और 'जगदेकमल्लवादी' उपाधियां उनके गौरव और प्रतिभा की सूचक हैं। उनको एक बार कुष्ट रोग होगया था; किन्तु अपने योग बल से 'एकीभाव स्तोत्र' रचते हुए उस रोग से वह मुक्त हुए थे। यशोधर चरित्र, पार्श्वनाथ चरित्र आदि ग्रंथ भी उन्होंने रचे थे[१]।

आप चालुक्यवंशीय नरेश जयसिंह की सभा के प्रख्यात वादी थे। वे स्वयं सिंहपुर के राजा थे। राज्य त्यागकर दिगम्बर मुनि हुए थे। उनके दादा गुरू श्रीपाल भी सिंहपुराधीश थे। (जैमि०, वर्ष ३३ अङ्क ५ पृ० ७२)

इसी प्रकार श्री मल्लिषेणाचार्य, श्रीसोमदेवसूरि आदि अनेक लब्धप्रतिष्ठ दिगम्बर जैनाचार्य दक्षिण भारतमें हो गुज़रे हैं; जिनका वर्णन अन्य ग्रन्थों से देखना चाहिए।

इन दिगंबराचार्यों के विषय में उक्त विद्वान् आगे लिखते हैं कि "समग्र दक्षिण भारत विद्वान् जैन साधुओं के छोटे छोटे समूहों से अलंकृत था, जो धीरे २ जैनधर्म का प्रचार जनताकी विविध भाषाओंमें ग्रन्थ रचकर कर रहे थे। किन्तु यह सम-

---

१. Ibid पृ. ५३।

मझना गलत है कि यह साधुगण लौकिक कार्यों से विमुख थे। किसी हद तक यह सच है कि वे जनता से ज्यादा मिलते-जुलते नहीं थे। किन्तु ई० पू० चौथी शताब्दिमें मेगास्थनीज़के कथनसे प्रगट है कि जैन श्रमण, जो जंगलों में रहते थे, उनके पास अपने राजदूतों को भेजकर राजालोग वस्तुओंके कारण के विषयमें उनका अभिप्राय जानते थे। जैन गुरुओंने ऐसे कई राज्यों की स्थापना की थी, जिन्होंने कई शताब्दियों तक जैन-धर्मको आश्रय दिया था"।[1]

---

1. "The whole of South India strewn with small groups of learned Jain ascetics, who were slowly but surely spreading their morals through the medium of their sacred literature composed in the various vernaculars of the country. But it is a mistake to suppose that these ascetics were indifferent towards secular affairs in general. To a certain extent it is true that they did not mingle with the world. But we know from the account of Megasthenes that, so late as the 4th century B C., "The Sarmanes or the Jain Sarmanes who lived in the woods were frequently consulted by the kings through their messengers regarding the cause of things'. Jaina Gurus have been founders of States that for centuries together were tolernat towards the Jaiu faith."

—SSIJ., I. 106

प्रो० डॉ० वी० शेषागिरिराव ने दक्षिण भारत के दिगंवर मुनियों के सम्बन्धमें लिखा है कि "जैन मुनिगण विद्या और विज्ञानके ज्ञाता थे, आयुर्वेद और मन्त्रशास्त्र के भी वे महा विद्वान् थे, ज्योतिषज्ञान उनका अच्छा खासा था, न्यायशास्त्र, सिद्धांत और साहित्य को उन्होंने रचा था। जैनमान्यतामें ऐसे सफल एक प्राचीन आचार्य कुन्दकुन्द कहे गए हैं; जिन्होंने वेलारी जिले के कोनकुण्डल प्रदेशमें ध्यान और तपस्या की थी"[1]

इस प्रकार दक्षिण भारतमें दिगम्बर मुनियोंके अस्तित्व का चमत्कारिक वर्णन है और यह इस बात का प्रमाण है कि दक्षिण भारत एक अत्यन्त प्राचीन काल से दिगम्बर मुनियों का आश्रयस्थान रहा है तथा वह आगे भी रहेगा, इसमें संशय नहीं।

---

1. SSIJ., pt. II pp. 9—10

तामिल-साहित्य में दिगम्बर मुनि।

"Among the systems controverted in the *Manimekhalai*, the Jain system also figures as one and the words *Samanas* and *Amana* are of frequent occurance; as also refrences to their *Viharas*, so that from the earliest times reachable with our present means, Jainism apparently flourished in the Tamil Country."[१]

तामिल साहित्य के मुख्य और प्राचीन लेखक दिगंबर जैन विद्वान् रहे हैं। और उसका सर्वप्राचीन व्याकरण-ग्रन्थ "तोल्काप्पियम्" (Tolkappiyam) एक जैनाचार्य की ही रचना है[२]। किन्तु हम यहां पर तामिल—साहित्य के जैनों द्वारा रचे हुये अङ्ग को नहीं छूयेंगे। हमें तो जैनेतर तामिल-साहित्य में दिगम्बर मुनियोंके वर्णनको प्रकट करना इष्ट है।

अच्छा तो, तामिल साहित्य का सर्वप्राचीन समय "संगम-काल" अर्थात् ईस्वी पूर्व दूसरी शताब्दि से ईस्वी

---

१. Sc., p. 32 भावार्थ—तामिल काव्य 'मणिमेखलै' में जैन-संप्रदाय और शब्द 'समण"-"अमण" तथा उनके विहारों का उल्लेख विशेष है; जिससे तामिल देश में अतीव प्राचीनकाल से जैनधर्म का अस्तित्व सिद्ध है।"

२. SSIJ., pt. I. p. 89

पांचवीं शताब्दि तक का समय है। इस कालकी रचनाओं में बौद्ध विद्वान् द्वारा रचित काव्य "मणिमेखलै" प्रसिद्ध है। "मणिमेखलै" में दिगम्बर मुनियों और उनके सिद्धान्तों तथा मठोंका अच्छा खासा वर्णन है। जैनदर्शन को इस काव्य में दो भागों में विभक्त किया है-(१) आजीविक और (२) निर्ग्रन्थ।[१] आजीविक भ० महावीर के समय में एक स्वतंत्र सम्प्रदाय था; किन्तु उपरान्तकाल में वह दिगम्बर जैनसंप्रदाय में सम्मिष्ट हो गया था। निर्ग्रन्थ संप्रदायको 'अरुहन' (अर्हत्) का अनुयायी लिखा है, जो जैनोंका द्योतक है। इस काव्य के पात्रों में सेठ कोवलन् की पत्नी कण्णकि के पिता मानाइकन् के विषय में लिखा है कि 'जब उसने अपने दामाद के मारे जानेके समाचार सुने तो उसे अत्यन्त दुःख और खेद हुआ। और वह जैनसंघ में नंगा मुनि होगया[२]।' इस काव्य से यह भी प्रगट है कि चोल और पाण्ड्य राजाओं ने जैनधर्म को अपनाया था।[३]

"मणिमेखलै" के वर्णन से प्रकट है कि "निर्ग्रन्थगण ग्रामों के बाहर शीतल मठोंमें रहते थे। इन मठों की दिवालें बहुत ऊंची और लाल रंग से रंगी हुई होती थीं। प्रत्येक मठके साथ एक छोटा सा बगीचा भी होता था। उनके मंदिर तिराहों और चौराहों पर अवस्थित थे। जैनोंने अपने

१. BS., p 15 २. Ibid., p. 681
३. SSIJ., pt. I, p 47

प्लेटफार्म भी बना रक्खे थे, जिनपर से निर्ग्रन्थाचार्य अपने सिद्धान्तों का प्रचार करते थे। जैनसाधुओं के मठोंके साथ २ जैनसाध्वियों के आराम भी होते थे। जैन साध्वियोंका प्रभाव तामिल महिला समाज पर विशेष था। कावेरीप्पूमपट्टिनम् जो चोल राजाओं की राजधानी थी, वहां और कावेरी तट पर स्थित उदैपुरमें जैनों के मठ थे। मदुरा जैनधर्म का मुख्य केन्द्र था। सेठ कोवलन् और उनकी पत्नि कण्णकि जब मथुरा को जारहे थे तो रास्ते में एक जैन आर्यिकाने उन्हें किसी जीवको पीडा न पहुंचाने के लिये सावधान किया था, क्योंकि मदुरामें निर्ग्रन्थों द्वारा यह एक महान् पाप करार दिया गया था। यह निर्ग्रन्थगण तीन छत्रयुक्त और अशोक वृक्ष के तले बैठाये गये। अर्हत् भगवान्की दैदीप्यमान मूर्तिकी विनय करते थे। यह सब जैन दिगम्बर थे, यह उक्त काव्यके वर्णन से स्पष्ट है। पुहर में जब इन्द्रोत्सव मनाया गया तब वहां के राजा ने सब धर्मों के आचार्यों को वाद और धर्मोपदेश करने के लिये बुलाया था। दिगम्बर मुनि इस अवसर पर बड़ी संख्यामें पहुंचे थे और उनके धर्मोपदेश से अनेकानेक तामिल स्त्री-पुरुष जैनधर्म में दीक्षित हुये थे।"[१]

---

१. Ibid. pp. 47—48. "That these Jains were the Digambaras is clearly seen from their description..............The Jains took every advantage of the opportunity and large was the number of those that embraced this faith".

"मणिमेखलै" काव्यमें उसकी मुख्य पात्री मणिमेखला एक निर्ग्रन्थ साधुसे जैन धर्म के सिद्धान्तों के विषय में जिज्ञासा करती भी बताई गई है[१]। इस तथा इस काव्य के अन्य वर्णन से स्पष्ट है कि ईस्वी की प्रारम्भिक शताब्दियों में तामिल देशमें दिगम्बर मुनियों की एक बडी संख्या मौजूद थी और तामिल देश में विशेष मान्य तथा प्रभावशाली थे।

शैव और वैष्णव सम्प्रदायों के तामिल साहित्य में भी दिगम्बर मुनियोंका वर्णन मिलता है। शैवोंके 'पेरियपुण्णम्' नामक ग्रन्थ में मूर्ति नायनारके वर्णन में लिखा है कि कलभ्र वंशके क्षत्री जैसे ही दक्षिण भारत में पहुंचे वैसे ही उन्होंने दिगम्बर जैनधर्म को अपना लिया। उस समय दिगम्बर जैनों की संख्या वहां अत्यधिक थी और उनके आचार्योंका प्रभाव कलभ्रों पर विशेष था[२]। इस कारण शैवधर्म उन्नत नहीं हो पाया था। किन्तु कलभ्रोंके वाद शैवधर्म को उन्नति करने का अवसर मिला था। उस समय वौद्ध प्रायः निष्प्रभ होगये थे, किन्तु जैन अव भी प्रधानता लिये हुये थे[३]। शैवाचार्यों का

---

१. "Manimekalai asked the Nigantha to state who was his God and what he was taught in his sacred books etc." SSIJ, pt. I p 50

२. Ibid, p 55

३. "It would appear from a general study of the literature of the period that Buddhism had declined as an active religion but Jainism had still its

वादशालामें मुकावला लेने के लिए दिगम्वराचार्य–जैन श्रमण ही अवशेष थे। शैवोंमें सम्वन्दर और अप्पर नामक आचार्य जैनधर्मके कट्टर विरोधी थे। इनके प्रचार से साम्प्रदायिक विद्वेषकी आग तामिल देशमें भड़क उठी थी,[1] जिसके परिणाम स्वरूप उपरान्तके शैव ग्रंथोंमें ऐसा उपदेश दिया हुआ मिलता है कि वौद्धों और समणों (दिगम्वर मुनियों) के न तो दर्शन करो और न उनके धर्मोपदेश सुनो। वल्कि शिव से यह प्रार्थना की गई है कि वह शक्ति प्रदान करें जिससे बौद्धों और समणों (दि० मुनियों) के सिर फोड़ डाले जांय; जिनके धर्मोपदेश को सुनते २ उन लोगों के कान भर गये हैं।[2] इस विद्वेष का भी कोई ठिकाना है! किन्तु इससे स्पष्ट है कि उस समय भी दि० मुनियोंका प्रभाव दक्षिण भारतमें काफी था।

वैष्णव तामिल साहित्यमें भी दिगम्वर मुनियोंका विवरण मिलता है। उनके 'तेवारम' (Tevaram) नामक ग्रंथसे ई० सातवीं आठवीं शताब्दिके जैनोंका हाल मालूम होता है। उक्त ग्रंथसे प्रगट है कि "इस समय भी जैनों का मुख्य केन्द्र मदुरामें था। मदुराके चहुँ ओर स्थित अनैमलै, पसुमलै आदि आठ पर्वतों पर दिगम्बर मुनिगण रहते थे और वे ही जैन संघ का संचालन करते थे। वे प्रायः जनता से

---

stronghold. The chief opponents of these saints were the *Samans* or the Jainas." — BS., p 689

१. SSIJ., p. I pp. 60-66. २. तिरुमलै—BS., p. 692

अलग रहते थे – उससे अत्यधिक सम्पर्क नहीं रखते थे। स्त्रियोंसे तो वे बिल्कुल दूर २ रहते थे। नासिका-स्वर से वे प्राकृत व अन्य मंत्र बोलते थे। ब्राह्मणों और उनके वेदों का वे हमेशा खुला विरोध करते थे। कड़ी धूप में वे एक स्थानसे दूसरे स्थान पर वेदों के विरुद्ध प्रचार करते हुए विचरते थे। उनके हाथमें पीछी, चटाई और एक छत्री होती थी। इन दिगम्बर मुनियोंको सम्बन्दर द्वेषवश बन्दरोंकी उपमा देता है, किन्तु वे सैद्धान्तिक वाद करने के लिये बड़े लालायित थे और उन्हें विपक्षीको परास्त करने में आनन्द आता था। केशलोंच ये मुनिगण करते थे और स्त्रियोंके सम्मुख नग्न उपस्थित होने में उन्हें लज्जा नहीं आती थी। भोजन लेने के पहले वे अपने शरीर की शुद्धि नहीं करते थे (अर्थात् स्नान नहीं करते थे)। मंत्रशास्त्र को वे खूब जानते थे और उसकी खूब तारीफ करते थे।"[१]

त्रिज्ञानसम्बन्दर और अप्पर ने जो उपरोक्त प्रमाण दिगम्बर मुनियोंका वर्णन किया है, यद्यपि वह द्वेष को लिये हुये है, परंतु तो भी उससे उस काल में दिगम्बर मुनियों के बाहुल्य रूप में सर्वत्र विहार करने, विकट तपस्वी और उत्कट वादी होने का समर्थन होता है।

दक्षिण भारतकी 'नन्दयाल कैफियत' (Nandyala Kaiphiyat) में लिखा है[२] कि "जैनमुनि अपने सिरों पर

---

१. SSIJ., pt. I pp. 68–70 २. Ibid., pt. II pp. 10–11

बाल नहीं रखते थे कि शायद कहीं जूं न पड़ जायं और वे हिंसाके भागी हों। जब वे चलते थे तो मोरपिच्छी से रास्ता को साफ कर लेते थे कि कहीं सूक्ष्म जीवोंकी विराधना न हो जाय। वे दिगम्बर वेषधारण किये थे, क्योंकि उन्हें भय था कि कहीं उनके कपड़े और शरीर के संसर्ग से सूक्ष्म जीवों को पीड़ा न पहुँचे। वे सूर्यास्त के उपरान्त भोजन नहीं करते थे, क्योंकि पवन के साथ उड़ते हुए जीवजन्तु कहीं उनके भोजन में गिर कर मर न जांय।" इस वर्णन से भी दक्षिण भारत में दिगम्बर मुनियों का बाहुल्य और निर्बाध धर्मप्रचार करना प्रमाणित है।

"सिद्धवत्तम् कैफियत" (Siddhavattam Kaiphiyat) से प्रकट है[१] कि वरंगल के जैनराजा उदार प्रकृति थे। वे दिगम्बरों के साथ २ अन्य धर्मों को भी आश्रय देते थे।" वरंगल कैफियत" से प्रकट है[२] कि वहां वृषभाचार्य नामक दिगम्बर मुनि विशेष प्रभावशाली थे।

दक्षिण भारत के ग्राम्य-कथा-साहित्य में एक कहानी है, उससे प्रकट है कि "वरंगल के काकतीयवंशी एक राजाके पास ऐसी खडाऊं थीं, जिनको पहन कर वह उड़ सकता था और रोज बनारस में जाकर गङ्गा स्नान कर आता था। किसीको भी इसका पता न चलता था। एक रोज उसकी रानीने देखा कि राजा नहीं है। वह जैनधर्मपरायण थी।

१. ibid p. 17 २. ibid p. 18

उसने अपने गुरुओं से राजा के संबंध में पूछा। जैनगुरु ज्योतिष के विद्वान् विशेष थे; उन्होंने राजाका सब पता बता दिया। राजा जब लौटा तो रानीने उसको बताया कि वह कहां गया था और प्रार्थना की कि वह उसे भी बनारस ले जाया करे। राजाने स्वीकार कर लिया। वह रानीभी बनारस जाने लगी। एक रोज़ मार्ग में वह मासिक धर्म से होगई। फलत: खड़ाऊ की वह विशेषता नष्ट होगई। राजाको उसपर बड़ा दु:ख हुआ और उसने जैनोंको कष्ट देना प्रारंभ कर दिया।[1]" इस कहानी से विधर्मी राजाओं के राज्य में भी दिगम्बर मुनियों का प्रतिभाशाली होना प्रकट है।

अरुलनन्दि शैवाचार्य कृत "शिवज्ञानसिद्धियार" में परपक्ष संप्रदायों में दिगम्बर जैनोंका "श्रमणरूप" उल्लेख है[2]। तथा "हालास्यमाहात्म्य" में मदुराके शैवों और दिगम्बर मुनियों के वादका वर्णन मिलता है।[3]

इस प्रकार तामिलसाहित्य के उपरोक्त वर्णन से भी दक्षिण भारतमें दिगम्बर मुनियोंका प्रतिभाशाली होना प्रमाणित है। वे वहां एक अत्यन्त प्राचीनकालसे धर्मप्रचार कर रहे थे।

—xx—

---
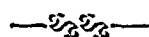
१. SSIJ., pt. II pp. 27—28 २. SC., p. 243
३. IHQ, Vol. IV. p. 564
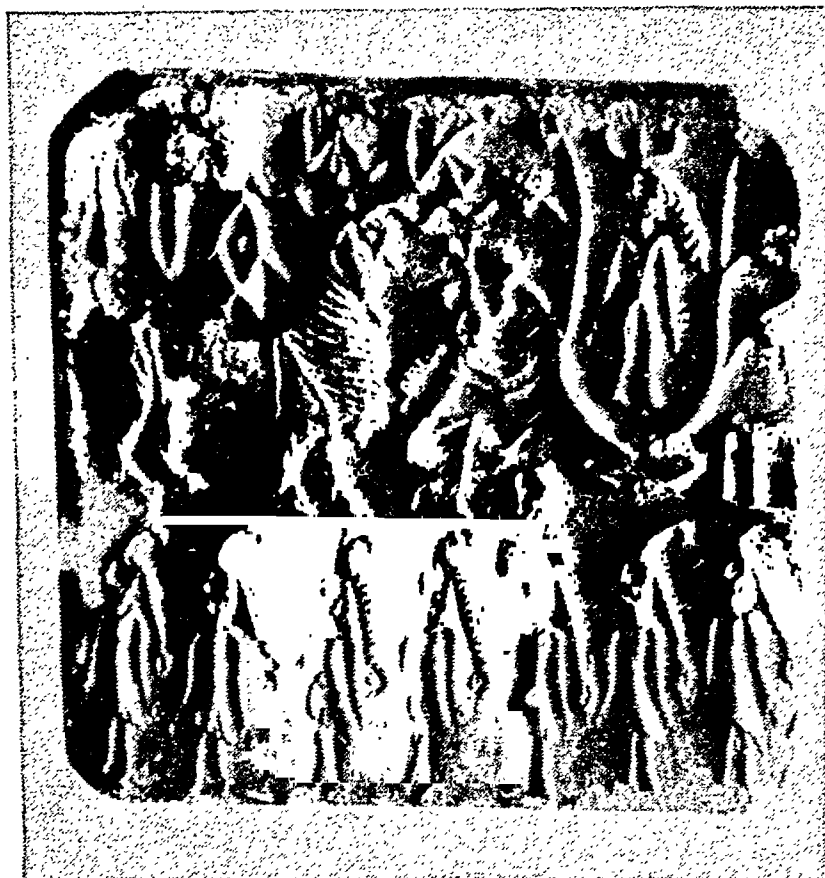
मोहनजोदारो के उत्खनन से प्राप्त भगवान् आदिनाथ विषयक एक महत्त्वपूर्ण मुद्रा। ऊपर त्रिरत्न, दिव्यध्वनि मृदुलतालंकृत मुख एवं कल्पवृक्ष परिवेष्टित भगवान् ऋषभदेव। नमस्कार निवेदन करते हुये भरत चक्रवर्ती और भगवान् का चिह्न वृषभ। नीचे की पंक्ति में भरत के साथ आये हुए श्रेणीवद्ध मंत्रीगण।

भारतीय पुरातत्व और दिगम्बर मुनि।

"Chalcolithic civilisation of the Indus Valley was something quite different from the Vedic civilisation". "On the eve of the Aryan immigration the Indus Valley was in possession of a civilized and warlike people".

—R. R. Ramprasad Chanda.[1]

मोहन-जो-दारो का पुरातत्व और दिगम्बरत्व।

भारतीय पुरातत्वमें सिंधुदेश के मोहन जोडरो और पंजाब के हरप्पा नामक ग्रामों से प्राप्त पुरातत्व अतिप्राचीन है। वह ईस्वी सन् से तीन-चार हजार वर्ष पहले का अनुमान किया गया है। जिन विद्वानोंने उसका अध्ययन किया है, वह इस परिणाम पर पहुंचे हैं कि सिन्धुदेश में उस समय एक अतीव सभ्य और क्षत्रिय प्रकृति के मनुष्य रहते थे, जिनका धर्म और सभ्यता वैदिक-धर्म और सभ्यता से नितान्त भिन्न थी। एक विद्वान् ने उन्हें "व्रात्य" सिद्ध किया है[2] और मनु के अनुसार "व्रात्य" वह वेद-विरोधी संप्रदाय था "जिसके लोग द्विजों द्वारा उनकी सजातीय पत्नियों से उत्पन्न हुए थे, किन्तु जो

१. SPCIV., p. 1 & 25 २. Ibid. pp. 25-34

(वैदिक) धार्मिक नियमों का पालन न कर सकने के कारण सावित्रीसे पृथक कर दिये गये थे ।" (मनु १०।२०) वह मुख्यतः क्षत्री थे । मनु एक व्रात्य क्षत्री से ही झल्ल, मल्ल, लिच्छवि, नात, करण, खस और द्राविड़ वंशों की उत्पत्ति बतलाते हैं । (मनु १०।२२) यह पहलेभी लिखा जा चुका है । सिन्धुदेश के उपरोक्त मनुष्य इसी प्रकार के क्षत्री थे और वे ध्यान तथा योग का स्वयं अभ्यास करते थे और योगियोंकी मूर्तियों की पूजा करते थे । मोहन-जो-डरों से जो कतिपय मूर्तियां मिली हैं उनकी दृष्टि जैन मूर्तियोंके सदृश 'नासाग्रदृष्टि' है । किन्तु ऐसी जैनमूर्तियां प्रायः ईस्वी पहली शताब्दि तक की ही मिलती विद्वान् प्रकट करते हैं[1], यद्यपि जैनों की मान्यता के अनुसार उनके मंदिरोंमें बहुप्राचीन काल की मूर्तियां मौजूद हैं । उस पर, हाथीगुफा के शिलालेख से कुमारी पर्वत पर नन्दकाल की मूर्तियोंका होना प्रमाणित है[2], तथा मथुरा के 'देवों द्वारा निर्मित जैनस्तूप' से भगवान पार्श्वनाथ के समय में भी ध्यानदृष्टिमय मूर्तियों का होना सिद्ध है[3] । इसके अतिरिक्त प्राचीन जैन साहित्य तथा बौद्धों के उल्लेख से भ० पार्श्वनाथ और भ० महावीर के पहले के जैनोंमें भी ध्यान और योगाभ्यास के नियमोंका होना प्रमाणित है । 'संयुत्तनिकाय' में जैनोंके अवितर्क और अविचार श्रेणीके ध्यानोंका उल्लेख

---

१ Ibid. pp. 25–26 २ JBORS.

३ वीर वर्ष ४ पृ० २९९

है[1] और "दीघनिकाय" के 'ब्रह्मजालसुत्त' से प्रकट है कि गौतम बुद्ध से पहले ऐसे साधु थे जो ध्यान और विचार द्वारा मनुष्य के पूर्वभवों को बतलाया करते थे[2]। जैनशास्त्रों में ऋषभादि प्रत्येक तीर्थङ्कर के शिष्यसमुदाय में ठीक ऐसे साधुओं का वर्णन मिलता है। तथापि उपनिषदों में जैनों के 'शुक्लध्यान' का उल्लेख मिलता है, यह पहले ही लिखा जा चुका है। अतः यह स्पष्ट है कि जैन साधु एक अतीव प्राचीन काल से ध्यान और योग का अभ्यास करते आये हैं। तथा झल्ल, मल्ल, लिच्छवि, ज्ञातृ आदि व्रात्य क्षत्रिय प्रायः जैन थे। अन्यत्र यह सिद्ध किया जा चुका है कि "व्रात्य" क्षत्रिय बहुत करके जैन थे और उनमें के ज्येष्ठ व्रात्य सिवाय 'दिगंबर-मुनिके' और कोई न थे[3]। इस अवस्था में सिन्धुदेश के उपरोक्त कालवर्ती मनुष्योंका प्राचीन जैन ऋषियोंका भक्त होना बहुत कुछ संभव है। किन्तु मोहनजोडरो से जो मूर्तियां मिली हैं वह वस्त्रसंयुक्त हैं और उन्हें विद्वान् लोग 'पुजारी' (Priest) व्रात्यों की मूर्तियां अनुमान करते हैं। हमारे विचार से वे हीन-व्रात्य (अणुव्रती श्रावकों) की मूर्तियां हैं। व्रात्य-साधुकी मूर्ति वह हो नहीं सकती, क्योंकि उसे शास्त्रों में नग्न प्रगट किया गया है। वहां 'ज्येष्ठव्रात्य' का एक विशेषण 'समनिच-मेढ्र' अर्थात् 'पुरुषलिंग से रहित' दिया हुआ है जो नग्नता का

---

१. PTS IV, 287   २ भमबु०, पृ० २१९-२२०

३. भपा०, प्रस्तावना पृष्ठ ४४-४५

द्योतक है। हीनव्रात्योंकी पोशाक के वर्णन में कहा गया है कि वे एक पगड़ी (निर्यन्नद्ध), एक लाल कपड़ा और चांदी का आभूषण 'निश्क' नामक पहनते थे। उक्त मूर्ति की पोशाक भी इसी ढंग की है। माथे पर एक पट्ट रूप पगडी जिसके बीचमें एक आभूषण जड़ा है, वह पहने हुये प्रगट है और वगल से निकला हुआ एक छींटदार कपड़ा वह ओढ़े हुये है[१]। इस अवस्था में इन मूर्तियों को हीन व्रात्यों की मूर्तियां मानना ही ठीक है और इस तरह पर यह सिद्ध है कि व्रात्य-क्षत्रिय एक अतीव प्राचीनकाल में अवश्यही एक वेद-विरोधी संप्रदाय था, जिसमें ज्येष्ठव्रात्य दिगम्वर मुनि के अनुरूप थे। अतः प्रकारान्तर से भारत का सिंधुदेशवर्ती सर्वप्राचीन पुरातत्व भी दिगम्वर मुनि और उनकी योगमुद्रा का पोषक है[२]।

अशोक के शासन लेख में निर्ग्रन्थ

सिंधु देशके पुरातत्व के उपरान्त सम्राट् अशोक द्वारा निर्मित पुरातत्व ही सर्व प्राचीन है। वह पुरातत्व भी दिगम्वर मुनियों के अस्तित्व का द्योतक है। सम्राट् अशोक ने अपने एक शासन लेखमें आजीविक साधुओं के साथ निर्ग्रन्थ साधुओं का भी उल्लेख किया है।[३]

---

१. SPCIV., Plate I, Fig, 'b'

२. 'SPCIV' pp 25—33 में मोहनजोडरी की मूर्तियों को जिन मूर्तियों के समान और उनका पूर्ववर्ती टायप प्रकट किया गया है

३. स्थम्भलेख नं० ७

खंडगिरि-उदयगिरिके पुरातत्व में दि० मुनि

अशोक के पश्चात् खण्डगिरि-उदयगिरिका पुरातत्व दिगम्बर धर्मका पोषक है। जैन सम्राट् खारवेल के हाथीगुफा वाले शिलालेख में दिगम्बर मुनियों का "तापस" (तपस्वी) रूप उल्लेख हैं[1]। और उन्होंने सारे भारत के दिगम्बर मुनियों का सम्मेलन किया था, यह पहले लिखा जाचुका है। खारवेल की पटरानी ने भी दिगम्बर मुनियों—कलिङ्ग श्रमणों के लिये गुफा निर्मित कराकर उनका उल्लेख अपने शिलालेख में निम्न प्रकार किया है :—

"अरहन्तपसादायम् कलिङ्गानम् **समनानं** लेनं कारितम् राञो लालकसहथीसाहसपपोतस् धुतुनाकलिङ्गचक्रवर्तिनो श्री खारवेलस अगमहिसिना कारितम्।"

भावार्थ—"अर्हन्त के प्रासाद या मन्दिर रूप यह गुफा कलिङ्गदेशके श्रमणों (दिगम्बर मुनियों) के लिये कलिङ्ग चक्रवर्ती राजा खारवेल की मुख्य पटरानी ने निर्मित कराई, जो हथीसहस के पौत्र लालकस की पुत्री थी।[2]

खण्डगिरि की 'तत्वगुफा' पर जो लेख है वह बालमुनि का लिखा हुआ है[3]। 'अनन्त गुफा' में लेख है कि दोहदके दिग.मुनियों श्रमणोंकी गुफा" (दोहद समनानम् लेनम्)[4]।

---

१ सवदिसानं तापसानं..........'पंक्ति १५. JBORS.
२ बंबिओ जैस्मा०, पृष्ठ ९१
३. Ibid. p. 94
४. Ibid. p. 97

इस प्रकार खण्डगिरि–उदयगिरि के शिलालेखों से ईस्वी-पूर्व दूसरी शताब्दि में दिगम्बर मुनियों के कल्याणकारी अस्तित्व का पता चलता है।

खण्डगिरि–उदयगिरि पर जो मूर्त्तियां हैं, वे प्राचीन और नग्न हैं और उनसे दिगम्बरत्व तथा दिगम्बर मुनियों के अस्तित्व का पोषण होता है। वह अब भी दिगम्बर मुनियों का मान्य तीर्थ है।

मथुराका पुरातत्व और दिगम्बर मुनि

मथुराका पुरातत्व ईस्वी पूर्व प्रथम शताब्दि तक का है और उससे भी दिगम्बर मुनियों का जनता में बहुमान्य और कल्याणकारी होना प्रगट है। वहां की प्रायः सब ही प्राचीन मूर्तियां नग्न-दिगम्बर हैं। एक स्तूप के चित्रमें जैन मुनि नग्न, पिच्छी व कमण्डल लिये दिखाये गये हैं[1]। उन पर के लेख दिगम्बर मुनियों के द्योतक हैं; यथा :—

"नमो अर्हतो वर्धमानस आराये गणिकायं लोण शोभिकाये धितु समण साविकाये नादाये गणिकाये वसु (ये) आर्हतो देविकुल आयाग-सभा प्रयाशिल (।) पटो पतिस्ठापितो निगन्थानम् अर्हता वतनेसहामातरे भगिनिये धितरे पुत्रेण सर्वेन च परिजनेन अर्हत् पुजाये।"

अर्थात्—"अर्हत् वर्द्धमान् को नमस्कार। श्रमणोंकी श्राविका आरायगणिका लोणशोभिका की पुत्री नादाय गणिका

१. जैसिभा० वर्ष १ किरण ४ पृ० १२३

वसु ने अपनी माता, पुत्री, पुत्र और अपने सर्व कुटुम्ब सहित अर्हत्‌का एक मन्दिर, एक आयाग-सभा, ताल और एक शिला निर्ग्रंथ अर्हतोंके पवित्र स्थान पर बनवाये ।[1]

इसमें दानशीला श्राविकाको श्रमणों—दिगम्बर मुनियों का भक्त तथा निर्ग्रंथ—दिगम्बर मुनियों के लिए एक शिला बनाया जाना प्रगट किया गया है। एक आयागपट परके लेख में भी श्रमण–दिगम्बर मुनियों का उल्लेख है ।[2] प्लेट नं० २८ परके लेखमें भी ऐसा ही उल्लेख है ।[3] तथा एक दिगम्बर मूर्ति पर निम्न प्रकार लेख है:—

> "………… सं० १५ ग्रि ३ दि १ अस्या पूर्व्वाय ………… ह्कि तो आर्य जयभूतिस्य शिषीनिनं अर्य्य संनामिके शिषीन अर्य्य वसुलये (निर्व्वर्त्त) नं० ………… लस्य धीतु ……… ३ ………… धु वेणि श्रेष्टिस्य धर्म-पत्निये भट्टिसेनस्य ……(मातु) कुमरमितयो दनं भग-वतो (प्र) मा सव्व तो भद्रिका ।"

अर्थात्—"(सिद्ध !) सं० १५ ग्रीष्म के तीसरे महीने में पहले दिनको, भगवत की एक चतुर्मुखी प्रतिमा कुमरमिता के दानरूप, जो…………ल की पुत्री, ……… की बहू, श्रेष्टि वेणि की प्रथम पत्नी, भट्टिसेन की माता थी, मेहिककुल के

---

१. होलीदरवाजा से मिला आयागपट—वीर, वर्ष ४ पृ० ३०३

२. आर्यवती आयागपट—वीर वर्ष ४ पृ० ३०४

३. JOAM. Plate No 28

आर्य जयभूतिकी शिष्या अर्य संगमिकाकी प्रति शिष्या वसुला की इच्छानुसार (अर्पित हुई थी)"[१]

इसमें दिगम्बर मुनि जयभूतिका उल्लेख 'आर्य' विशेषणसे हुआ है। ऐसे ही अन्य उल्लेखों से वहांका पुरातत्व तत्कालीन दिगम्बर मुनियोंके सम्माननीय व्यक्तित्वका परिचायक है।

अहिच्छत्र (वरेली) के पुरातत्व में दिगम्बर मुनि।

अहिच्छत्र (वरेली) पर एक समय नागवंशी राजाओं का राज्य था और वे दिगम्बर जैन धर्मानुयायी थे। वहां के कटारी खेड़ा की खुदाई में डा० फुहरर सा० ने एक समूचा सभा मन्दिर खुदवा निकलवाया था। यह मन्दिर ई० पूर्व प्रथम शताब्दिका अनुमान किया गया है और यह श्री पार्श्वनाथजी का मन्दिर था। इसमें से मिली हुई मूर्तियां सन् ९६ से १५२ तक की हैं; जो नग्न हैं। यहां एक ईंटों का बना हुआ प्राचीन स्तूप भी मिला था, जिसके एक स्तम्भ पर निम्न प्रकार लेख था:—

"महाचार्यं इन्द्रनन्दि शिष्य पार्श्वयतिस्स कोट्टारी।"

आचार्य इन्द्रनन्दि उस समय के प्रख्यात दिगम्बर मुनि थे।[२]

---

१ वीर, वर्ष ४ पृ० ३१०

२. संप्राजैस्मा०, पृ० ८१-८२ 'General Cunningham) found a number of fragmentary naked Jain statues,

कौशाम्बी के पुरातत्व में दिगम्बर-संघ ।

कौशाम्बी का पुरातत्व भी दिगम्बर मुनियों के अस्तित्वका पोषक है। वहांसे कुशानकालका मथुरा जैसा आयागपट्ट मिला है; जिसे राजा शिवमित्रके राज्यमें आर्य शिवनन्दिकी शिष्या बड़ी स्थविरा बलदासाके कहने से शिवपालितने अर्हत्‌की पूजाके लिये स्थापित किया था।[१] इस उल्लेखसे उस समय कौशाम्बी में एक वृहत् दिगम्बर जैन संघके रहने का पता चलता है।

कुहाऊंका गुप्तकालीन लेख दि० मुनियों का द्योतक है।

कुहाऊं (गोरखपुर) से प्राप्तपुरातत्व गुप्तकाल में दि० धर्मकी प्रधानताका द्योतक है। वहां के पाषाण-स्तम्भमें नीचेकी ओर जैन तीर्थङ्कर और साधुओंकी नग्न मूर्तियां हैं और उस पर निम्नलिखित शिलालेख है:—[२]

> "यस्योपस्थानभूमिर्नृपति—शत शिरः पात—वातावधूता। गुप्तानां वंशजस्य प्रविसृतयशसस्तस्य सर्वोत्तमर्द्धेः॥ राज्ये शक्रोपमस्य क्षितिप-शत-पतेः स्कन्दगुप्तस्य शान्तेः। वर्षे त्रिशंद्दशैकोत्तरक—शत—तमे ज्येष्ठ मासे प्रपन्ने—ख्यातेऽस्मिन् ग्राम-रत्ने ककुभ इति

---

some inscribed with dates ranging from 96 to 152 A. D.

१ संप्राजैस्मा०, पृ० २७

२. पूर्व०, पृ० ३-४

जनैस्साधु—संसर्गपूते पुत्रो यस्सोमिलस्य प्रचुर-गुण निधेर्भट्टिसोमो महार्थः तत्सूनू रुद्रसोमः पृथुलमतियशा व्याघ्ररत्यन्य संज्ञो मद्रस्तस्यात्मजो—भूद्द्विज—गुरु-यतिषु प्रायशः प्रीतिमान्यः ।। इत्यादि"

भाव यही है कि संवत् १४१ में प्रसिद्ध तथा साधुओं के संसर्ग से पवित्र ककुभ ग्राममें ब्राह्मण-गुरु और यतियों को प्रिय मद्र नामक विप्र रहते थे; जिन्होंने पांच अर्हत्-विम्व निर्मित कराये थे। इससे स्पष्ट है कि उस समय ककुभ ग्राम में दिगम्बर मुनियोंका एक वृहत् संघ रहता था।

राजगृह (विहार) के पुरातत्व में दि० मुनियों की साक्षी।

राजगृह (विहार) का पुरातत्वभी गुप्तकालमें वहां दिगम्वर मुनियोंके वाहुल्यका परिचायक है। वहां पर गुप्तकालकी निर्मित अनेक दिगम्वर जैनमूर्तियां मिलती हैं[1] और निम्न शिलालेख वहां पर दिगम्वर जैन संघका अस्तित्व प्रमाणित करता हैः—

"निर्वाणलाभाय तपस्वि योग्ये शुभेगुहेऽर्हत्प्रतिमाप्रतिष्ठे।
आचार्यरत्नम् मुनि वैरदेवः विमुक्तये कारय दीर्घतेजः ।।"

अर्थात्—"निर्वाणकी प्राप्तिके लिये तपस्वियों के योग्य और भी अर्हन्तकी प्रतिमासे प्रतिष्ठित शुभगुफामें मुनि वैरदेव को मुक्ति के लिये परम तेजस्वी आचार्य पद रूपी रत्न प्राप्त हुआ यानि मुनि वैरदेव को मुनि संघ ने आचार्य स्थापित किया।" इस शिलालेखके निकट ही एक नग्न जैन मूर्तिका

१. SPCIV., plate 11 (b)

निम्न भाग उकेरा हुआ है; जिससे इसका सम्बन्ध दिगम्बर मुनियों से स्पष्ट है[१]।

वङ्गाल के पुरातत्व में दिगम्बर मुनि।

गुप्तकाल और उसके वाद कई शताब्दियों तक वङ्गाल, आसाम और ओड़ीसा प्रान्तों में दिगम्बर जैनधर्म वहु प्रचलित था। नग्न जैन मूर्तियां वहां के कई जिलोंमें विखरी हुई मिलती हैं। पहाड़पुर (राजशाही) गुप्तकालमें एक जैनकेन्द्र था[२]। वहांसे प्राप्त एक ताम्र लेख दिगम्बर मुनियों के संघका द्योतक है। उसमें अङ्कित है कि "गुप्तसं० १५९ (सन् ४७९ ई०) में एक व्राह्मण दम्पतिने निर्ग्रन्थ विहार की पूजा के लिये वटगोहली ग्राममें भूमिदान दी। निर्ग्रन्थसंघ आचार्य गुहनन्दि और उन के शिष्यों द्वारा शासित था।"[३]

कादम्ब-राजाओं के ताम्रपत्रों में दिगम्बर मुनि

देवगिरि (धाड़वाड़) से प्राप्त कादम्ववंशी राजाओं के ताम्रपत्र ईस्वी पांचवीं शताब्दिमें दिगम्बर मुनियों के वैभव को प्रकट करते हैं। एक लेख में है कि महाराजा कादम्व श्री कृष्णवर्माके राजकुमार पुत्र देववर्माने जैन मन्दिरके लिये यापनीय सङ्घके दिगम्बर मुनियोंको एक खेत दान दिया था। दूसरे लेखसे प्रगट है कि

१. वंविओजैस्मा०, पृ० १६
२. IHQ., Vol. VII p. 441
३. Modern Review, August 1931, p. 150

"काकुष्ठवंशी श्री शान्तिवर्माके पुत्र कादम्बमहाराज मृगेश्वर-वर्माने अपने राज्यके तीसरे वर्षमें परलूरा के आचार्यों को दान दियाथा।" तीसरे लेख में कहा गया है कि "इसी मृगेश्वरवर्मा ने जैन मन्दिरों और निर्ग्रन्थ (दिगम्बर) तथा श्वेतपट(श्वेतांबर) सङ्घोंके साधुओंके व्यवहारके लिये एक कालवङ्ग नामक ग्राम अर्पण किया था।[१]

उदयगिरि (भिलसा) में पांचवीं शताब्दिकी वनी हुई गुफायें हैं, जिनमें जैनसाधु ध्यान किया करते थे। उनमें लेख भी हैं।[२]

अजन्टाकी गुफाओं में दि० मुनियों का अस्तित्व

अजन्टा (खानदेश) की प्रसिद्धगुफाओं के पुरातत्व से ईस्वी सातवीं शताब्दि में दिगम्बर जैन मुनियोंका अस्तित्व प्रमाणित है। वहांकी गुफा नं० १३ में दिगम्बर मुनियोंका सङ्घ चित्रित है। नं० ३३ की गुफामें भी दिगम्वर मूर्तियां हैं।[३]

वादामी की गुफा

वादामी (वीजापुर) में सन् ६५० ई० की जैनगुफा उस जमाने में दिगम्वर मुनियों के अस्तित्व की द्योतक है। उसमें मुनियों के ध्यान करने योग्य स्थान हैं और नग्न मूर्तियां अङ्कित हैं।[४]

---

१ IA. VII 33-34 वंप्राजैस्मा०, पृ० १२६

२ मप्राजैस्मा०. पृ० ७०   ३. वंप्राजैस्मा०, पृ० ५५-५६

४. Ibid. p 103

चालुक्य-राजा विक्रमादित्यके लेख में दिगम्बर मुनि।

लक्ष्मेश्वर (धाड़वाड़) की संखवस्तीके शिलालेखसे प्रगट है कि संखतीर्थ का उद्धार पश्चिमीय चालुक्यवंशी राजा विक्रमादित्य द्वितीय (शाका ६५६) ने कराया था और जिनपूजा के लिये श्री देवेन्द्र भट्टारक के शिष्य मुनि एकदेवके शिष्य जयदेव पंडित को भूमि-दान दी थी! इससे विक्रमादित्यका दिगम्बर मुनियों का भक्त होना प्रगट है। वहीं के एक अन्य लेख से मूलसङ्घ के श्री राम-चन्द्राचार्य और श्रीविजयदेव पंडिताचार्य का पता चलता है[१]। सारांशतः वहां उस समय एक उन्नत दिगम्बर जैनसङ्घ विद्यमान था।

एलोरा की गुफाओं में दिगम्बर मुनि

ईस्वी आठवीं शताब्दिकी निर्मित एलोरा की जैन गुफायें भी उस समय दिगम्बर मुनियों के विहार और धर्म प्रचार को प्रगट करती हैं। वहां की इन्द्रसभा नामक गुफामें जैन मुनियोंके ध्यान करने और उपदेश देने योग्य कई स्थान हैं और उनमें अनेक नग्न मूर्तियां अङ्कित हैं। श्रीबाहुबलि गोमट्टस्वामी की भी खड्गासन मूर्ति है। "जगन्नाथसभा"—"छोटा कैलास" आदि गुफायें भी इसी ढङ्गकी हैं और उनसे तत्कालीन दिगम्बरत्वकी प्रधानताका परिचय मिलता है।[२]

१. Ibid. pp. 124—125
२. Ibid. pp. 163—171

राष्ट्रराजा आदिके शिलालेखों में दिगम्बर मुनि।

सौंदत्ति (वेलगाम) के पुरातत्व में दिगम्बर मुनियों की मूर्तियें और उनका वर्णन मिलता है[1]। वहां एक आठवीं शताब्दिका शिलालेख है, जिससे प्रकट है कि "मैलेयतीर्थकी कारेयशाखामें आचार्य श्री मूल भट्टारक थे, जिनके शिष्य विद्वान् गणकीर्ति थे और उनके शिष्य इच्छाको जीतने वाले श्रीमुनि इन्द्रकीर्त्ति स्वामी थे, उनका शिष्य मेरड़ का वड़ा पुत्र राजा पृथ्वीवर्मा था, जिसने एक जैन मंदिर वनवाया था और उसके लिये भूमि का दान दिया था"। एक दूसरे सन् ९८१ के लेख से विदित है कि कुन्दुर जैन शाखाके गुरू अति प्रसिद्ध थे, उनको चौथे राष्ट्रराजा शांत ने १५० मत्तर भूमि उस जैन मन्दिरके लिये दी जो उन्होंने सौंदत्तिमें वनवाया था और उतनी ही भूमि उसी मन्दिर को उनकी स्त्री निजिकव्वेने दी थी। उन दिगम्बराचार्य का नाम श्री वाहुवलिजी था और वे व्याकरणाचार्य थे। उस समय श्री रविचन्द्र स्वामी, अर्हनन्दी, शुभचन्द्र, भट्टारकदेव, मौनीदेव, प्रभाचन्द्रदेव मुनिगण विद्यमान थे। राजाकत्तम् की स्त्री पद्मलादेवी जैनधर्म के ज्ञान व श्रद्धान में इन्द्राणी के समान थी। वह दिगम्बर मुनियोंकी भक्ति में दृढ़ थी।

चालुक्यराजा विक्रम के लेख में दि० मुनियों का उल्लेख।

एक अन्य लेख वहीं पर चालुक्य राज विक्रम के १२ वें

---

१. वंप्रा जैस्मा०, पृ० ८३—८६

राज्य-वर्ष का लिखा हुआ है, शिसमें निम्नलिखित दिगम्बराचार्यों के नाम दिये हुए हैं:—

"वलात्कारगण मुनि गुणचन्द, शिष्य नयननंदि, शिष्य श्रीधराचार्य, शिष्य चन्द्रकीर्ति, शिष्य श्रीधरदेव, शिष्य नेमिचन्द्र और वासुपूज्य त्रैविधदेव, वासुपूज्य के लघुभ्राता मुनि विद्वान् मलपाल थे। वासुपूज्य के शिष्य सर्वोत्तम साधु पद्मप्रभ थे। सेरिंगकावंशका अधिकारी गुरु वासुपूज्य का सेवक था।"

इस प्रकार उपरोक्त लेखों से सौंदत्ति और उसके आस पासमें दिगम्बर मुनियों का वाहुल्य और उनका प्रभावशाली तथा राजमान्य होना प्रकट है।

राठौर राजाओं द्वारा मान्य दि० मुनियों के शिलालेख।

गोविन्दराय तृतीय राठौर मान्यखेट के सन् ८१३ के ताम्रपत्र से प्रगट है कि गंगवंशी चाकिराजकी प्रार्थना पर उन्होंने विजयकीर्ति कुलाचार्य के शिष्य मुनि अर्ककीर्तिको दान दिया था। अमोघवर्ष प्रथमने सन् ८६० में मान्यखेट में देवेन्द्रमुनिको भूमिदान किया था।[1] इनसे दिग० मुनियों का राठौर राजाओं द्वारा मान्य होना प्रमाणित है।

---

१. भाप्रारा०, भा० ३ पृ० ३८—४१

मूलगुंड के पुरातत्त्व में दि० संघ।

मूलगुंड (धाड़वाड़) को ९ वीं १० वीं शताब्दि का पुरातत्व भी वहां पर दिगम्बर मुनियों के प्रभुत्व का द्योतक है। वहां के एक शिलालेख में वर्णन है कि "चीकारि, जिसने जैन मन्दिर बनवाया था, उस के पुत्र नागार्य के छोटे भ्राता आसार्य ने दान दिया। यह आसार्य्य नीति और धर्म शास्त्र में बड़ा विद्वान् था। इसने नगर के व्यापारियों की सम्मति से १००० पान के वृक्षों के खेत को सेनवंश के आचार्य कनकसेन की सेवा में जैन मन्दिर के लिये अर्पण किया था। कनकसेनाचार्य के गुरु श्री वीर सेनस्वामी थे, जो पूज्यपाद कुमार सेनाचार्य के दिगम्वर मुनियों के सङ्घ के गुरु थे, चन्द्र-नाथ मन्दिर के शिलालेख से मूलगुंड के राजा मदरसा की स्त्री भामती की मृत्यु का वर्णन प्रकट है[२]। ग़र्ज़ यह है कि मूल गुंड में दिगम्बर मुनियों को एक समय प्रधानपद मिला हुआ था—वहां का शासक भी उनका भक्त था।

सुन्दी के शिलालेखों में राजमान्य दिगम्वर मुनि।

सुन्दी (धाड़वाड़) के जैन मन्दिर विषयक शिलालेख (१० वीं श०) में पश्चिमीय गङ्गवंशीय राजकुमार बूटुगका वर्णन है, जिसने उस जैनमन्दिर के लिये दिगम्बर गुरु को दानदिया था

---

१. बंप्राजैस्मा, पृ० १२०—१२१
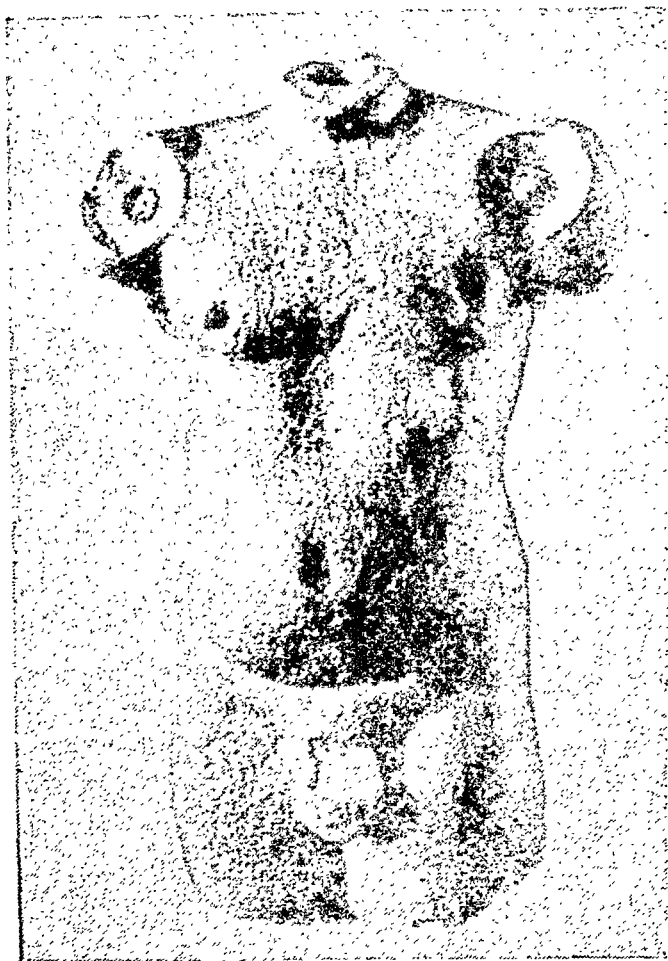
हड़प्पा कालीन मूर्त्ति का चित्र

जिसको उसकी स्त्री दिवलम्वाने सुन्दीमें स्थापित किया था। राजा वुट्टुग गङ्गमण्डल पर राज्य करता था और श्री नागदेव का शिष्य था। रानी दिवलम्वा दिगम्बर मुनियों और आर्यिकाओं की परम भक्त थी। उसने छह आर्यिकाओंको समाधिमरण कराया था[1]। इससे सुन्दीमें दिगम्बर मुनियोंका राजमान्य होना प्रकट है।

कुम्भोज वाहुवलि पहाड़ (कोल्हापुर) श्री दिगम्बर मुनि वाहुवलिके कारण प्रसिद्ध है, जो वहां हो गये हैं और जिनकी चरण पादुका वहां मौजूद हैं।[2]

कोल्हापुर के पुरातत्व में दिग० मुनि और शिलाहार राजा

कोल्हापुर का पुरातत्व दिगम्बर मुनियों के उत्कर्षका द्योतक है। वहांके इरविन म्यूजियममें एक शिलालेख शाका दसवीं शताब्दीका है जिससे प्रगट है कि दण्डनायक दासीभरसने राजा जगदेक मल्लके दूसरे वर्षके राज्यमें एक ग्राम धर्मार्थ दियाथा। उस समय यापनीयसङ्घ पुन्नागवृक्षमूलगण राद्धान्तादिके ज्ञाता परमविद्वान् मुनि कुमार कीर्तिदेव विराजित थे।[3] उपरान्त कोल्हापुरके शिलाहार वंशी राजा भी दिगम्बर मुनियों के परमभक्त थे। वहां के एक शिलालेखसे प्रकट है कि "शिलाहार वंशीय महामण्डलेश्वर विजयादित्यने माघ

---

१ वंप्राजैस्मा० पृ० १२७

२ वंप्राजैस्मा०, पृ० १५३ ३ जैनमित्र वर्ष २२ अङ्क पृ० ७१

सुदी १५ शाका १०६५ को एक खेत और एक मकान श्री पार्श्वनाथजीके मन्दिरमें अष्टद्रव्य पूजाके लिये दिया। इस मन्दिरको मूलसंघ देशीयगण पुस्तक गच्छके अधिपति श्री माघनन्दि सिद्धान्तदेव (दिगम्वराचार्य) के शिष्य सामन्त कामदेवके आधीनस्थ वासुदेवने वनवाया था। दानके समय राजाने श्री माघनन्दि सिद्धान्तदेव के शिष्य माणिक्यनन्दि पं० के चरण धोये थे।" वमनी ग्रामसे प्राप्त शाका १०७३ के लेख से प्रगट है कि "शिलाहार राजा विजयादित्यने जैनमन्दिरके लिये श्रीकुन्दकुन्दान्वयी श्रीकुलचन्द्र मुनिके शिष्य श्रीमाघनंदि सिद्धान्तदेवके शिष्य श्रीअर्हनन्दि सिद्धान्तदेवके चरण धोकर भूमिदान कियाथा।"[1] इनसे उस समय दिगम्वर मुनियोंका प्रभुत्व स्पष्ट है।

आरटाल शिला-लेख में चालुक्य राज पूजित दिगंबर मुनि—आरटाल (धारवाड़) से एक शिलालेख शाका १०४५ का चालुक्यराज भुवनैकमल्लके राज्य कालका मिलाहै। उसमें एक जैनमन्दिर वननेका उल्लेख है तथा दिगम्वर मुनि श्री कनकचन्द्रजीके विषयमें निम्नप्रकार वर्णन है[2] :—

"स्वस्ति यम—नियम—स्वाध्याय—ध्यान—मौनानुष्ठान—समाधिशील—गुण-संपन्नरप्प कनक-चन्द्र सिद्धान्त देवः।"

---

१ वंप्राजैस्मा०, पृ० १५३-१५४   २ दिजैडा, पृ० ७४१

देवगढ़ (झांसी) के पुरातत्व में दि० मुनि-देवगढ़ (झांसी का पुरातत्व वहां तेरहवीं शताब्दि तक दिगम्बर मुनियोंके उत्कर्षका द्योतक है। नग्न मूर्त्तियों से सारा पहाड़ ओत प्रोत है। उन परके लेखों से प्रगट है कि ११ वीं शताब्दि में वहां एक शुभदेवनाथ नामक प्रसिद्ध मुनि थे। सं० १२०९ के लेख में दिगम्बर गुरुओं की भक्त आर्यिका धर्मश्री का उल्लेख है। सं० १२२४ का शिलालेख पण्डित मुनिका वर्णन करता है। सं० १२०७ में वहां आचार्य जयकीर्ति प्रसिद्ध थे। उनके शिष्यों में भावनन्दि मुनि तथा कई आर्यिकायें थीं। धर्मनन्दि, कमलदेवाचार्य, नागसेनाचार्य, व्याख्याता माघनन्दि, लोकनन्दि और गुणनन्दि नामक दिगम्बर मुनियों का भी उल्लेख मिलता है। नं० २२२ की मूर्त्ति मुनि—आर्यिका—श्रावक—श्राविका, इस प्रकार चतुर्विधसङ्घ के लिये वनी थी[1]। गर्ज यह कि देवगढ़ में लागातार कई शताब्दियों तक दिगम्बर मुनियों का दौरदौरा रहा था।

बिजोलिया (मेवाड़) में दिग० साधुओं की मूर्त्तियां—विजोलिया (पार्श्वनाथ—मेवाड़) का पुरातत्व भी वहां पर दिगम्वर मुनियों के उत्कर्षको प्रगट करता है। वहां पर कई एक दिगम्बर मुनियों की नग्न प्रतिमायें वनी हुई हैं। एक मानस्थम्भ पर तीर्थंकरों की मूर्त्तियों के साथ दिगम्वर मुनिगणके प्रतिविम्व व चरणचिन्ह अङ्कित हैं। दो मुनि-

---

१. देजै०, पृ० १३-२५

खजराहा के लेखों में दि० मुनि—

खजराहाके जैन मन्दिरमें एक लेख संवत् १०११ का है। उस से दिगम्बर मुनि श्री वासवचन्द्र (महाराज गुरु श्री वासव चन्द्रः) का पता चलता है। वह धाङ्गराजा द्वारा मान्य सरदार पाहिल के गुरु थे।[1]

झालरापाटन में दि० मुनियों की निषिधिकायें—झालरापाटन शहर के निकट एक पहाड़ी पर दिगम्बर मुनियों के कई समाधिस्थान हैं। उन परके लेखोंसे प्रगट है कि सं० १०६६ में श्री नेमिदेवाचार्य और श्री वलदेवाचार्यने समाधिमरण किया था।[2]

अलवर राज्य के लेखों में दि० मुनि—

अलवर राज्यके नौगमा ग्राममें स्थित दि० जैन मन्दिरमें श्री अनन्तनाथजी की एक कायोत्सर्ग मूर्त्ति है जिसके आसन पर लिखा है कि सं० ११७५ में आचार्य विजयकीर्त्तिके शिष्य नरेन्द्रकीर्त्ति ने उसकी प्रतिष्ठा की थी।[3]

माणिक्यभूतचरितोगुरु देवसेन। सिद्धांतोद्विविधोप्यवाधितधिया येनप्रमाण ध्वनि। ग्रंथेषु प्रभवः श्रियामवगतो हस्तस्थ मुक्तोपमः।.........आस्थानाधिपतौ वुधादविगुणे श्रीभोजदेवे नृपे सम्येष्वंवरसेन पण्डित शिरोरत्नादिषूद्यन्मदान्। योनेकान्शतसो अजेण्ट पटुताभीष्टोद्यमो वादिनः। शास्त्रांभोनिधि पारगो भवदन्तः श्री शान्तिसेनो गुरुः।"

१. मप्राजैसमा०, पृ० ११७

२. Ibid. p. 191

३ Ibid p. 195
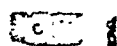
सन् १२०५ के लेख में वर्णन है कि वेलगाम में जब रट्ट-राजा कीर्त्तिवर्म्मा और मल्लिकार्जुन राज्य कर रहे थे तब श्री शुभचन्द्र भट्टारक की सेवा में राजा वीचाके बनाए गए रट्टोंके जैनमन्दिर के लिये भूमिदान किया गया था। एक दूसरा लेख भी इन्हीं राजाओं द्वारा शुभचन्द्रजीको अन्यभूमि अर्पण किये जाने का उल्लेख करता है। इसमें कार्तवीर्यकी रानी का नाम पद्मावती लिखा है[1]। सचमुच उस समय वहां पर दिगम्बर मुनियों का काफ़ी प्रभुत्व था।

वेलगामान्तर्गत कोन्नूर स्थान से भी रट्टराजाका एक शिलालेख शाका १००९ का मिला है जिसका भाव है कि "चालुक्यराजा जयकर्णके आधीन रट्टराज मण्डलेश्वर सैन कोन्नूर आदि प्रदेशोंपर राज्य करता था, तब वलात्कारगण के वंशधरों को इन नगरोंका अधिपति उसने बना दिया था। यहां के जैन-मन्दिरों को चालुक्य राजा कोन्न व जयकर्ण द्वारा दान दिये जाने का उल्लेख मिलता है[2]। इनसे दिगम्बर मुनियोंका महत्व स्पष्ट है।

वेलगाम जिलेके कलहोले ग्राम में एक प्राचीन जैनमंदिर है, जिसमें एक शिलालेख रट्टराजा कार्तवीर्य चतुर्थ और मल्लिकार्जुन का लिखाया हुआ मौजूद है। उसमें श्रीशांतिनाथ जी के मन्दिरको भूमिदान देनेका उल्लेख है। मंदिर के गुरू श्री मूलसंघ कुन्दकुन्दाचार्य की शाखा हणसांगी वंशकथे। इस

---

१. बंप्राजैस्मा०, पृष्ठ ७४-७५   २. Ibid pp. 80-81

राज शास्त्रस्वाध्याय करते प्रगट किये हैं। उनके पास कमंडल, पीछी रक्खे हुये हैं। वे अजमेर के चौहान राजाओं द्वारा मान्य थे[1]। शिलालेखों से प्रगट है कि वहां पर श्री मूलसङ्घके दिगम्बराचार्य श्री वसन्तकीर्त्तिदेव, विशालकीर्त्तिदेव, मदनकीर्त्तिदेव, धर्मचन्द्रदेव, रत्नकीर्त्तिदेव, प्रभाचन्द्रदेव, पद्मनन्दिदेव और शुभचन्द्रदेव विद्यमान थे[2]। इनको चौहान राजा पृथ्वीराज और सोमेश्वर ने जैनमन्दिरके लिये ग्राम भेंट किये थे[3]। सारांशतः वीजोल्यामें एक समय दिगम्बर मुनि प्रभावशाली हो गये थे।

अंजनेरी की गुफाओं में दि० मुनि—

अंजनेरी और अङ्कई (नासिक जिला) की जैन गुफायें वहां पर १२ वीं—१३ वीं शताब्दिमें दिगम्बर मुनियोंके अस्तित्व को प्रकट करती हैं। पांडु लेना गुफाओंका पुरातत्वभी इसी वात का समर्थक है[४]।

बेलगाम के पुरातत्व में राजमान्य दि० मुनि—

वेलगामका पुरातत्व वहां पर १२ वीं—१३वीं शताब्दियोंमें दिगम्बर मुनियोंके महत्व को प्रगट करते हैं, जो राज मान्य थे। यहां के राट्टराजाओं ने जैनमुनियों का सम्मान किया था, यह उनके लेखों से प्रगट है।

---

१. दिजैडा०, पृ० ५०१   २. मप्राजैस्मा०, पृ० १३३
३. राइ०, पृ० ३६३   ४. वंप्राजैस्मा०, पृ० ५७-५६

न्दि में वहां दिगम्वर मुनियोंका अस्तित्व प्रकट करते हैं। श्री आदिनाथकी मूर्ति पर लेख है कि "सं० १४२८ ज्येष्ठ सुदी १२ सोमवासरे काष्ठासंघे माथुरान्वये भ० श्रीदेवसेनदेवास्तत्पट्टे त्रयोदशविधचारित्रेनालंकृता: सकल विमल मुनिमंडली शिष्य: शिखामणय: प्रतिष्ठाचार्यवर्य श्री विमलसेनदेवास्तेषामुपदेशेन जाइसवालान्वये सा० पुरइपति। इत्यादि।" इन्हीं मुनि विमलसेनकी शिष्या अर्जिका गुणश्री विमल श्री थी, यह बात उसी मंदिर की एक अन्य मूर्ति पर के लेख से प्रकट है।

लखनऊके मूर्ति-लेख में निर्ग्रन्थाचार्य—

लखनऊ चौक के जैन मन्दिर में विराजमान श्री आदिनाथ की मूर्ति परके लेखसे विदित है कि सं० १५०३ में श्री भ० सकलकीर्तिके शिष्य श्री निर्ग्रन्थाचार्य विमलकीर्ति थे, जिनका उपदेश और विहार चहुंओर होता था।

चावलपट्टी (बंगाल) के जैनमन्दिर में विराजमान दशधर्म यंत्रलेख से प्रकट है कि सं० १५८६ में आचार्य श्री रत्नकीर्ति के शिष्य मुनि ललितकीर्त्ति विद्यमान थे; जिनकी भक्ति भ्रमरीबाई करती थी।[१]

कलकत्ता की मूर्तियां और दि० मुनि—

यहीं के एक अन्य सम्यक्ज्ञान यंत्रके लेखसे विदित होता है कि सं० १६३४ में विहार में भ० धर्मचन्द्रजी के शिष्य मुनि श्री वाहुनन्दीका विहार और धर्मप्रचार होता था।[२]

---

१. जैप्रयले सं०, पृष्ठ २५   २. जैप्रयले सं०, पृ० २६

वंश के तीन गुरू मलधारी थे, जिनके एक शिष्य सैद्धांतिक नेमिचन्द्र थे। श्रीनेमिचन्द्र के शिष्य शुभचन्द्र थे, जिन्होंने दिगम्बर धर्मकी वहुत उन्नति की थी। उनके शिष्य श्रीललितकीर्ति थे।[1]

वेलगाम जिले में स्थित रायवाग ग्राम में भी एक जैन शिलालेख राट्टराजा कार्तवीर्य का है। उससे विदित है कि कार्तवीर्य ने भ० शुभचन्द्र को शाका ११२४ में राट्टों के उन जैनमंदिरोंकेके लिये दान दियाथा जिन्हें उसकी माता चन्द्रिकादेवीने स्थापित किया था।[2] इससे चन्द्रिकादेवीका दि० मुनियों और तीर्थङ्करों का भक्त होना प्रगट है।

बीजापुर किले की मूर्तियां दि० मुनियों की द्योतक—वीजापुर के किले की दिगम्बर मूर्तियां सं० १००१ में श्री विजयसूरि द्वारा प्रतिष्ठित हैं।[3] उनसे प्रगट है कि वीजापुर में उस समय दिगम्बर मुनियों की प्रधानता थी।

तेवरी की दि० मूर्ति—तेवरी (जबलपुर) के तालाव में स्थित दि० जैन मंदिर की मूर्ति पर बारहवीं शताब्दि का लेख है कि "मानादित्य की स्त्री रोज नमन करती है"।[4] इससे वहां पर जैन मुनियों का राजमान्य होना प्रगट है।

दिल्ली के मूर्ति लेखों में दि० मुनि—दिल्ली नयामंदिर कटघर की मूर्तियों पर के लेख १५ वीं शता-

१ Ibid pp. 82—83

२ Ibid p. 87 ३ Ibid p. 108 ४ दिजैडा पृष्ठ २८७

दक्षिण भारत का पुरातत्व और दि० मुनि-

अच्छा तो अब दक्षिण भारत के शिलालेखादि पुरातत्व पर एक नजर, डाल लीजिये। दक्षिण भारतको पाण्डवमलय आदि गुफाओं का पुरातत्व एक अति प्राचीनकाल में वहां पर दिगम्बर मुनियोंका अस्तित्व प्रमाणित करता है। अनुमनामले (ट्रावनकोर) की गुफाओं में दिगम्बर मुनियोंका एक प्राचीन आश्रम था। वहां पर दीर्घकाय दिगम्बर मूर्तियां अङ्कित हैं। दक्षिण देश के शिलालेखों में मदुरा और रामनद ज़िलों से प्राप्त प्रसिद्ध ब्राह्मीलिपि के शिलालेख अति प्राचीन हैं। वह अशोक की लिपि में लिखे हुये हैं। इसलिये इनको ईस्वी पूर्व तीसरी शताब्दि का समझना चाहिये। यह जैन मंदिरों के पास बिखरे हुये मिले हैं और इनके निकट ही तीर्थङ्करों की निम्न मूर्तियां भी थीं। अतः इनका संवन्ध जैन धर्म से होना बहुत कुछ संभव है। इनसे स्पष्ट है कि ईस्वी पूर्व तीसरी शताब्दि से ही जैन मुनि दक्षिण भारत में प्रचार करने लगे थे।[1] इन शिलालेखों के अतिरिक्त दक्षिण भारत में दिगम्बर मुनियों से संवन्ध रखने वाले सैकड़ों शिलालेख हैं। उन सवको यहां उपस्थित करना असम्भव है। हां, उनमें से कुछ एक का परिचय हम यहा पर अङ्कित करना उचित समझते हैं। अकेले श्रवण वेलगोल में ही इतने अधिक शिलालेख हैं कि उनका सम्पादन एक बड़ी पुस्तक में किया गया है। अस्तुः

---

१ SSIJ., pt. I pp. 33—35

एटा, इटावा और मैनपुरी के पुरातत्व में दिगम्बर मुनि—कुरावली (मैनपुर) के जैनमंदिर में विराजमान सम्यक्‌दर्शनयंत्र पर के लेख से प्रकट है कि सं० १५७८ में मुनि विशालकीर्ति विद्यमान थे। उनका विहार संयुक्त-प्रांत में होता था।[1] अलीगंज (एटा) के लेखों से मुनिमाघनंदि और मुनि धर्मचन्द्रजी का पता चलता है।[2] इटावा नशियां जी पर कतिपय जैनस्तूप हैं और उनपर के लेख से यहां अठारहवीं शताब्दी में मुनि विजयसागरजी का होना प्रमाणित है।[3] उधर पटनाके श्री हरकचंद वाले जैनमन्दिरमें सं० १९६४ की बनी हुई एक दिगम्बर मुनि की काष्ठमूर्ति विद्यमान है।[4]

सारांशतः उत्तरभारत और महाराष्ट्र में प्राचीनकाल से बराबर दिगम्बर मुनि होते आये हैं, यह बात उक्त पुरातत्व-विषयक साक्षी से प्रमाणित है। अब यह आवश्यक नहीं है कि और भी अनगिनते शिलालेखादि का उल्लेख करके इस व्याख्या को पुष्ट किया जाय। यदि सब ही जैन शिलालेख यहां लिखे जायँ तो इस ग्रंथ का आकार प्रकार तिगुना चौगुना बढ़ जाय, जो पाठकों के लिये अरुचिकर होगा!

---

१ प्राजैलेसं, पृष्ठ ४६ २ Ibid p. 70 ३ Ibid pp. 90–91

४ Mr. Ajitaprasada, Advocate, Lucknow reports. "Patna Jaiu temple renovated in 1964 V. S by daughter-in-law of Harakchand. On the entrance door is the life-size image in wood of a *muni* with a *Kamandal* in the right hand & the broken end of what must have been a *plchi* in the left."

"कुर्व्वेनमः कपिल-वादि-वनोग्र-वन्हये
चार्व्वाक-वादि-मकराकर-वाडवाग्नये ।
वौद्धोप्रवादितिमिरप्रविभेदभानवे
श्रीदेवकीर्त्तिमुनये कविवादिवाग्मिने ।।"

× × ×

"चतुर्म्मुख चतुर्व्वक्तृनिर्ग्गमागमदुस्सहा ।
देवकीर्तिमुखाम्भोजे नृत्यतीति सरस्वती ।।"

सचमुच मुनि देवकीर्तिजी अपने समय के अद्वितीय कवि, तार्किक और वक्ता थे । वे महामण्डलाचार्य और विद्वान् थे और उनके समक्ष सांख्यिक, चार्वाक, नैयायिक, वेदान्ती, वौद्ध आदि अभी दार्शनिक हार मानते थे ।[1]

महाकवि मुनि श्री श्रुतकीर्ति—उक्त समय के एक अन्य शिलालेख में मुनि देवकीर्ति की गुरु परंपरा दी है; जिससे प्रकट है कि मुनि कनकनन्दि और देवचंद्र के भ्राता श्रुतकीर्ति त्रैविद्य मुनि ने देवेन्द्र सदृश विपक्षवादियों को पराजित किया था और एक चमत्कारी काव्य राघव-पांडवीय की रचना की थी, जो आदि से अन्त को व अंत से आदि को दोनों ओर पढ़ा जा सके । इससे प्रकट है कि उपरोक्त मुनि देवकीर्ति के शिष्य यादव-नरेश नारसिंह प्रथम के प्रसिद्ध सेनापति और मंत्री हुल्लप थे ।[2]

श्री शुभचन्द्र और रानी जक्कणब्बे—
शक सं० १०६६ के लेख में मंत्री नागदेव के गुरू श्री नयकीर्ति

---

१. जैशिसं०, पृ० २३-२४   २. Ibid pp. 24—30

श्रवण वेलगोलके शिलालेखों में प्रसिद्ध दिगम्बर साधुगण—पहले श्रवण वेलगोल के शिलालेखों से ही दिगम्वर मुनियों का महत्व प्रमाणित करना श्रेष्ठ है। शक सं० ५२२ के शिलालेख से वहां पर श्रुतकेवली भद्रवाहु और मौर्यसम्राट् चन्द्रगुप्तका परिचय मिलता है। इन दोनों महानुभावों ने दिगम्वर-वेषमें श्रवणवेलगोलको पवित्र किया था [१]। शक सं० ६२२ के लेखमें मौनिगुरुको शिष्या नागमति को तीन मासका व्रत धारण करके समाधिमरण करते लिखा है। इसी समयके एक अन्य लेखमें चरित श्री नामक मुनिका उल्लेख है[२]। धर्मसेन, वलदेव, पट्टिनिगुरु, उग्रसेन गुरु, गुणसेन, पेरुभालु, उल्लिकल, तीर्थद, कुलापक आदि दिगम्वर मुनियों का अस्तित्व भी इसी समय प्रमाणित है।[३] शक सं० ८९६ के लेख से प्रगट है कि गङ्गराजा मारसिंह ने अनेक लड़ाइयां लड़कर अपना भुजविक्रम प्रगट किया था और अंत में अजितसेनाचार्य के निकट वङ्कापुर में समाधिमरण किया था।[४]

तार्किकचक्रवर्ती श्री देवकीर्ति—शक संवत् १०८५ के लेख से तार्किकचक्रवर्ती श्री देवकीर्ति मुनि का तथा उनके शिष्य लक्खनन्दि, माधवेन्दु और त्रिभुवनमल्ल का पता चलता है। उनके विषय में कहा है :—

---

१ जैशि सं०, पृ० १-२
२ Ibid. p. 3
३ Ibid. pp. 1—18
४ Ibid. p. 20

प्रशंसा है। वह दिगम्वराचार्य श्री शुभचन्द्रजी की शिष्या थी। इन्हीं आचार्य की एक अन्य धर्मात्मा शिष्या राजसम्मानित चामुण्ड की स्त्री देवमति थी।[1] शक सं० १०६८ के लेख में अन्य दिगम्बर मुनियों के साथ श्री शुभकीर्ति आचार्य का उल्लेख है, जिनके सम्मुख वाद में बौद्ध, मीमांसकादि कोई भी नहीं ठहर सकता था। इसी में श्री प्रभाचन्द्रजी की शिष्या, विष्णुवर्द्धन नरेश की पटरानी शान्तलदेवी की धर्मपरायणता का भी उल्लेख है।[2]

शक सं० १०५० के लेखमें श्री महावीर स्वामी के वाद दि० मुनियोंकी शिष्यपरंपरा का वखान है; जिनमें श्रुतकेवली भद्रवाहु और सम्राट् चन्द्रगुप्तमौर्य्य का भी उल्लेख है। कुन्दकुन्दाचार्य के चारित्र-गुणादिका परिचय भी एक श्लोक द्वारा कराया गया है।

श्री कुन्दकुन्द और समन्तभद्र आचार्य

इन आचार्य को एक अन्य शिलालेख में मूलसंघ का अग्रणी लिखा है। उन्होंने चारित्र की श्रेष्ठता से चारणऋद्धि प्राप्त की थी, जिसके वल से वह पृथ्वी से चार अंगुल ऊपर चलते थे।[3] श्री समन्तभद्राचार्य जी के विषय में कहा गया है :—

"पूर्वं पाटलिपुत्र-मध्य-नगरे भेरी मया ताड़िता
पश्चान्मालव-सिन्धु-ठक्क-विषये कांचीपुरे वैदिशे।

---

१ Ibid. pp. 67-70 २ Ibid., pp. 80-81
३ Ibid. Intro., p. 140

योगीन्द्र व उनकी गुरुपरम्पराका उल्लेख है ।[1] शक स० १०४५ लेख से प्रगट है कि होयसाल महाराज गङ्गनरेश विष्णुवर्द्धन ने अपने गुरू शुभचंद्रदेव की निषद्या निर्माण कराई थी। इनकी भावज जवक्कणव्वेकी जैनधर्म में दृढ़ श्रद्धा थी और वह दिगम्बर मुनियों को दानादि देकर सत्कार किया करती थी।[2] उनके विषय में निम्न प्रकार का उल्लेख है:—

"दोरेये जक्कणिकव्वेगी भुवनदोल् चारित्रदोल् शीलदोल्
परमश्रीजिनपूजेयौल् सकलदानाश्चर्य्यदोल् सत्यदोल्।
गुरुपादाम्बुजभक्तियोल् विनयदोल् भव्यर्क्कलंकन्ददा—
दरिदं मुन्निसुतिर्प्पं; पेम्पिनेडेयोल् मत्तन्यकान्ताजनम् ॥"

श्रीगोल्लाचार्य प्रभृत अन्य दिगंबराचार्य

शक सं० १०३७ के लेख में है कि मुनि त्रैकाल्ययोगी के तप के प्रभाव से एक ब्रह्म-राक्षस उनका शिष्य हो गया था। उनके स्मरणमात्र से बड़े २ भूत भागते थे, उनके प्रताप से करंज का तैल घृत में परिवर्तित हो गया था। गोल्लाचार्य मुनि होने के पहले गोल्लदेश के नरेश थे। नूत्न चन्दिल नरेश के वंश चूड़ामणि थे। सकलचन्द्रमुनि के शिष्य मेघचन्द्र त्रैविद्य थे, जो सिद्धान्त में वीरसेन, तर्क में अकलङ्क और व्याकरण में पूज्यपाद के समान विद्वान् थे।[3] शक सं० १०४४ के लेख में दण्डनायक गङ्गराज की धर्मपत्नी लक्ष्मीमति के गुण, शील और दान की

---

[1] Ibid. pp 33—42 [2] Ibid. pp. 43-49
[3] Ibid. pp. 56—66

शिवकोटि नामक राजाने श्री समन्तभद्रजीके उपदेश से ही जैनेन्द्रीय दीक्षा ग्रहण की थी।

श्री वक्रग्रीव आदि दिगम्बराचार्य—

दिगम्बराचार्य श्री वक्रग्रीव के विषयमें उपरोक्त श्रवणबेलगोलीय शिलालेख बतराता है कि वे छः मास तक 'अथ' शब्द का अर्थ करने वाले थे। श्री पात्रकेसरी गुरु त्रिलक्षण सिद्धान्तके खण्डनकर्त्ता थे। श्रीवर्द्धदेव चूड़ामणि काव्य के कर्त्ता कवि दण्डी द्वारा स्तुत्य थे। स्वामी महेश्वर ब्रह्मराक्षसों द्वारा पूजित थे। अकलङ्क स्वामी बौद्धोंके विजेता थे। उन्होंने साहस तुङ्ग नरेशके सन्मुख हिमशीतल नरेशकी सभामें उन्हें परास्त किया था। विमलचन्द्र मुनिने शैव पाशुपतादिवादियों के लिये 'शत्रुभयङ्कर' के भवनद्वार पर नोटिस लगा दिया था। पर वादिमल्लने कृष्णराजके समक्ष वाद किया था। मुनि वादिराज ने चालुक्यचक्रेश्वर जयसिंहके कटकमें कीर्त्ति प्राप्त की थी। आचार्य शान्तिदेव होयशाल नरेश विनयादित्य द्वारा पूज्य थे। चतुर्म्मुखदेव मुनिराजने पाण्ड्य नरेशसे 'स्वामी' की उपाधि प्राप्त की थी और आहवमल्लनरेश ने उन्हें 'चतुर्मुखदेव' रूपी सम्मानित नाम दिया था। गर्ज़ यह कि यह शिला लेख दि० मुनियोंके गौरव-गाथासे समन्वित है।[1]

दिगम्बराचार्य श्री गोपनन्दि—शक सं० १०२२ (नं० ५५) के शिलालेखसे जाना जाता है कि मूलसङ्घ

---

१. जैशि सं०, पृ० १०१—११४

प्राप्तोऽहंकरहाटकं वहु-भटं विद्योत्कटं सङ्कटं
वादार्थी विचराम्यहन्नरपत शार्दूलविक्रीडितम् ॥७॥
अवटु-तटमटतिझटिति स्फुट-पटु-वाचाट धूर्ज्जटेरपि जिह्वा।
वादिनि समन्तभद्रे स्थितवतितवसदसि भूपकास्थान्येषां ॥८॥"

भाव यही है कि श्री समन्तभद्रस्वामी ने पहले पाटलिपुत्र नगर में वादभेरी वजाई थी। उपरान्त वह मालव, सिंधु, पंजाव, कांचीपुर, विदिशा आदि में वाद करते हुये करहाटक नगर (कराड़) पहुंचे थे और वहां की राजसभा में वाद-गर्जना की थी। कहते हैं कि वादी समन्तभद्र की उपस्थिति में चतुराई के साथ स्पष्ट, शीघ्र और बहुत वोलने वाले धूर्जटिकी जिह्वा ही जब शीघ्र अपने विल में घुस जाती है—उसे कुछ वोल नहीं आता—तो फिर दूसरे विद्वानों की तो कथा ही क्या है? उनका अस्तित्व तो समन्तभद्र के सामने कुछ भी महत्व नहीं रखता। सचमुच समन्तभद्राचार्य जैनधर्म के अनुपम रत्न थे। उनका वर्णन अनेक शिलालेखों में गौरवरूप से किया गया है। तिरुमकूडलु नरसीपुर ताल्लुके के शिलालेख नं० १०५ के निम्न पद्य में उनके विषय में ठीक ही कहा गया है कि:—

समन्तभद्रस्संस्तुत्यः कस्य न स्यान्मुनीश्वरः।
वाराणसीश्वरस्याग्रे निर्जिता येन विद्विषः॥

अर्थात्—"वे समन्तभद्र मुनीश्वर जिन्होंने वाराणसी (वनारस) के राजाके सामने शत्रुओं को—मिथ्यैकान्तवादियों को-परास्त किया है, किसके स्तुतिपात्र नहीं हैं? वे सभी के द्वारा स्तुति किये जाने के योग्य हैं।"

श्री जिनचन्द्र—श्री जिनचन्द्र मुनिको यह शिलालेख व्याकरण में पूज्यपाद, तर्कमें भट्टाकलङ्क और साहित्य में भारवि वतलाता है ।[१]

चालुक्यनरेश-पूजित श्री वासवचन्द्र—श्री वासवचन्द्र मुनिने चालुक्य नरेशके कटकमें 'वाल-सरस्वति' की उपाधि प्राप्त की थी, यह भी इस शिलालेख से प्रगट है । स्याद्वाद और तर्क शास्त्र में यह प्रवीण थे ।[२]

सिंहलनरेश द्वारा सम्मानित यशः-कीर्त्ति मुनि—श्री यशःकीर्त्ति मुनिको उक्त शिला लेख सार्थक नाम वताता है । वे विशाल कीर्त्तिको लिये हुये स्याद्वाद-सूर्य ही थे । वौद्धादि वादियों को उन्होंने परास्त किया था । तथा सिंहल-नरेशने उनके पूज्यपादों का पूजन किया था ।[३]

श्रीकल्याण कीर्त्ति—श्री कल्याण कीर्त्ति मुनि

---

१. जैनेन्द्र पूज्य (पादः) सकलसमयतर्क्के च भट्टाकलङ्कः ।
साहित्ये भारविस्स्यात्कवि-गमक-महावाद-वाग्मित्व-रुन्द्रः ।
गीते वाद्ये च नृत्ये दिशि विदिशि च संवर्ति सत्कीर्ति-मूर्तिः ।
स्थेयाच्छ्रीयोगिवृन्दार्चितपद जिनचन्द्रो वितन्द्रोमुनीन्द्रः ॥

२. जैशिस०, पृ० ११६—' चालुक्य-कटक-मध्ये वाल-सरस्वतिरिति प्रसिद्धि प्राप्तः।"

३. "श्रीमान्यशःकीर्ति-विशालकीर्ति स्स्याद्वाद-तर्काब्ज-विवोधनार्क्कः ।
वौद्धादि-वादि-द्विप-कुम्भ-भेदी श्री सिंहलाधीश-कृतार्घ्य पाद्यः ॥२६॥"

देशीयगण आचार्य गोपनन्दि बहु प्रसिद्ध हुए थे। 'वह बड़े भारी कवि और तर्कप्रवीण थे। उन्होंने जैनधर्मकी वैसी ही उन्नति की थी जैसी गङ्गनरेशोंके समयमें हुई थी। उन्होंने धूर्जटिकी जिह्वाको भी स्थगित कर दिया था।' देशदेशान्तरमें विहार करके उन्होंने सांख्य, बौद्ध, चार्वाक, जैमिनि, लोकायत आदि विपक्षी मतोंको हीनप्रभ बना दिया था। वह परमतपके निधान, प्राणीमात्रके हितैषी और जैन शासनके सकल कलापूर्ण चन्द्रमा थे।[१] होयसलनरेश एरेयङ्ग उनके शिष्य थे, जिन्होंने कई ग्राम उन्हें भेंट किये थे।[२]

धारानरेश पूजित प्रभाचन्द्र—इसी शिला लेखमें मुनि प्रभाचन्द्र जी के विषयमें लिखा है कि वे एक सफल वादी थे और धारानरेश भोजने अपना शीश उनके पवित्र चरणोंमें रक्खा था।[३]

श्री दामनन्दि—श्री दामनन्दि मुनिको भी इस शिलालेखमें एक महावादी प्रगट किया गया है, जिन्होंने बौद्ध, नैयायिक और वैष्णवोंको शास्त्रार्थमें परास्त किया था। महावादी 'विष्णु-भट्ट' को परास्त करनेके कारण वे 'महावादि विष्णुभट्टघरट्ट' कहे गये हैं।[४]

---

१. जैशिसं०-पृ०। ११७ 'परमतपो निधानं, वसुधैककुटुम्बजैनशासनाम्बर-परिपूर्णचन्द्र-सकलागम — तत्व-पदार्थ-शास्त्र-विस्तर-वचनाभिराम गुण-रत्न-विभूषण गोपणन्दिः।'

२. जैशिसं०, पृ० ३९५ ३ जैशिसं०, पृ० ११८

४. "बौद्धोर्व्वीधर-शम्बः नय्यायिक-कञ्ज-कुञ्ज-विधु-बिम्बः।
श्री दामनन्दिविबुधः क्षुद्र-महावादि विष्णुभट्ट-घरट्ट ॥१९॥
—जैशिसं०, पृ० ११८

गन्ती नामक भद्रमहिला ने उनसे दीक्षा लेकर समाविमरण किया था।[१]

एकसौ आठवर्ष तपकरनेवाले दि० मुनि—

नं० १५९ शिलालेख प्रगट करता है कि कालन्तूर के एक मुनि-राजने कटवप्र पर्वत पर एक सौ आठ वर्ष तक तप करके समाविमरण किया था।[२]

गर्ज यह है कि श्रवण वेलगोल के प्रायः सब ही शिला लेख दिगम्बर मुनियोंकी कीर्ति और यशको प्रगट करते हैं। राजा और रङ्क सब ही का उन्होंने उपकार किया था। रण-क्षेत्रमें पहुंच कर उन्होंने वीरों को सन्मार्ग सुझाया था। राजा रानी, स्त्री-पुरुष, सबही उनके भक्त थे।

दक्षिण भारत के अन्य शिलालेखों में

दिग० मुनि—श्रवण वेलगोल के अतिरिक्त दक्षिण भारत के अन्य स्थानों से भी अनेक शिला लेख मिले हैं, जिनसे दिग-म्बर मुनियों का गौरव प्रकट होता है। उनमें से कुछका संग्रह प्रो० शेषगिरिराव ने प्रगट किया है, जिससे विदित होता है कि दिगम्बर मुनि इन शिलालेखों में यम-नियम-स्वाध्याय-ध्यान धारण-मौनानुष्ठान--जप--समाधि—शीलगुण—सम्पन्न लिखे गये हैं[३]। उनका यह विशेषण उन्हें एक सिद्ध-योगी प्रगट करता है। प्रो० सा० उनके विषय में लिखते हैं कि:—

---

१. Ibid., p. 289

२ Ibid., p. 308

३. SSIJ., pt. 11 p. 6

को उक्त शिलालेख जीवोंके लिये कल्याणकारक प्रगट करता है। वह शाकनी आदि बाधाओं को दूर करनेमें प्रवीण थे।[1]

श्री त्रिमुष्टि मुनीन्द्र बड़े सैद्धान्तिक बताये गये हैं। वे तीन मुट्ठी अन्नका ही आहार करते थे। सारांश यह कि उक्त शिलालेख दिगम्बर मुनियोंकी गौरव-गाथाको जानने के लिये एक अच्छा साधन है।[2]

वादीन्द्र अभयदेव—शक सं० १३२० (नं० १०५) के शिलालेख में भी अनेक दिगम्बराचार्यों की कीर्ति गाथाका बखान है। वादीन्द्र अभयदेवसूरि ने बौद्धादि परवादियों को प्रतिभाहीन बना दिया था। यही बात आचार्य चारुकीर्ति के विषय में कही गई है।[3]

होयसाल वंशके राज गुरु दि० मुनि—

शक सं० १२०५ (नं० १२९) में होयसाल वंशके राजगुरु महा मण्डलाचार्य माघनंदि का उल्लेख है; जिनके शिष्य बेल्गोल के जौहरी थे।[4]

योगी दिवाकरनन्दि—नं० १३९ के शिलालेख में योगी दिवाकरनन्दि तथा उनके शिष्योंका वर्णन है। एक

---

१. कल्याणकीर्ति नामाभूनूभव्य-कल्याण-कारकः।
शाकिन्यादि-ग्रहाणांच निर्द्धाटन-दुर्द्धरः॥ —जैशिसं०, पृ० १२१

२. "मुष्टि-त्रय-प्रमिताशन-तुष्टः शिष्ट-प्रियस्त्रिमुष्टिमुनीन्द्रः।"

३. जैशिसं०, पृ० १९८—२०७

४. Ibid., p. 253

ओंमे ओतप्रोत हैं। उदाहरणतः गङ्गसेनापति क्षत्रचूड़ामणि श्री चामुण्डराय को ही ले लीजिए, वह जैनधर्मके दृढ़ श्रद्धानी ही नहीं; वल्कि उसके तत्वके ज्ञाता थे। उन्होंने जैनधर्म पर कई श्रेष्ट ग्रन्थ लिखे हैं और वह श्रावक के धर्माचारका भी पालन करते थे; किन्तु उस पर भी उन्होंने एक नहीं अनेक सफल संग्रामोंमें अपनी तलवारका जौहर ज़ाहिर किया था।[1] सचमुच जैनधर्म मनुष्य को पूर्ण स्वाधीनताका सन्देश सुनाता है। जैनाचार्य निःशङ्क और स्वाधीन होकर वही धर्मोपदेश जनता को देते हैं जो जनकल्याणकारी हो। इसीलिये वह 'वसुधैवकुटुम्वकं' कहे गये हैं। भीरुता और अन्याय तो जैनमुनियों के निकट फटक भी नहीं सकता है।

प्रो० सा० के उक्त संग्रह में विशेष उल्लेखनीय दिगम्वराचार्य श्री भावसेन त्रैवेद्य चक्रवर्त्ती, जो वादियों के लिये महाभयानक (Terror to disputant थे, वह और ववराज के गुरू (Preceptor of Bava king) श्री भावनन्दि मुनि हैं।[2] अन्य श्रोतसे प्रगट है कि—

उपरान्त के शिलालेखोंमें दि० मुनि—

सन् १४७८ ई० में जिञ्जीप्रदेश में दिगम्वराचार्य श्री वीरसेन वहु प्रसिद्ध हुये थे। उन्होंने लिङ्गायत-प्रचारकोंके समक्ष वादमें विजय पाकर धर्मोद्योत किया था और लोगोंको पुनः

---

१. वीर, वर्ष ७ पृ० २–११

२. SSIJ, pt. VI pp. 61—62

"From these epigraphs we learn some details about the great ascetics and acharyas who spread the gospel of Jainism in the Andhra-Karnata desa. They were not only the leaders of lay and ascetic disciples, but of royal dynasties of warrior clans that held the destinies of the peoples of these lands in their hands."[१]

भावार्थ—"उक्त शिलालेख-संग्रह से उन महान् दिगम्बर मुनियों और आचार्यों का परिचय मिलता है, जिन्होंने आन्ध्र-कर्णाट देश में जैनधर्म का संदेश विस्तृत किया था। वे मात्र श्रावक और साधु शिष्यों के ही नेता नहीं थे, बल्कि उन क्षत्रिय कुलों के राजवंशोंके नेता थे कि जिनके हाथों में उन देशोंकी प्रजा के भाग्य की बागडोर थी।"

दिगम्बराचार्यों का महत्व पूर्ण कार्य—

सचमुच दिगम्बर मुनियोंने बड़े २ राज्यों की स्थापना और उनके संचालन में गहरा भाग लिया था। पुलल (मद्रास) के पुरातत्व से प्रगट है कि एक दिगम्बराचार्यने असभ्य कुरुम्बों को जैनधर्ममें दीक्षित करके सभ्य शासक बना दिया था। वे जैनधर्मके महान् रक्षक थे और उन्होंने धर्म लगन से प्रेरित हो कर बड़ी २ लड़ाइयां लड़ी थीं[२]। उनने ही क्या, बल्कि दिगम्बराचार्यों के अनेक राजवंशी शिष्योंने धर्म संग्राम में अपना भुज-विक्रम प्रगट किया था। जैन शिलालेख उनकी रणगाथा-

१. Ibid., p. 68   २. OII., p. 236

ने कल्याण पूजा कराई और वह संगी राजा और पद्मपुत्र कृष्णदेव से पूज्य थे।[१]" वह एक प्रतिभाशाली साधु थे और उनके अनेक शिष्य दिगम्वर मुनिगण थे।

सारांशत: दक्षिण-भारत के पुरातत्व से वहां दिगम्वर मुनियों का प्रभावशाली अस्तित्व एक प्राचीन काल से वरावर सिद्ध होता है। इस प्रकार भारत भरका पुरातत्व दिगम्वर जैन मुनियों के महान उत्कर्षका द्योतक है।

[२४]

विदेशों में दिगम्बर मुनियों का विहार

'India had pre-eminently been the cradle of culture and it was from this country that other nations had understood even the rudiments of culture. For example, they were told, the Buddhistic missionaries and Jaina monks went forth to Greece and Rome and to places as far as Norway and had spread their culture."[२]

—Prof. M.S. Ramaswamy Iyengar.

जैन पुराणों के कथन से स्पष्ट है कि तीर्थङ्करों और श्रमणों का विहार समस्त आर्यखंड में हुआ था। वर्तमान की

१. मजैस्मा, पृ० ३२०—३२१

२. The "Hindu" of 25th July 1919&JG.XV27

जैनधर्म में दीक्षित किया था।[1] कारकल में राजा वीरपाड्य ने दिगम्बराचार्यों को आश्रय दिया था और उनके द्वारा सन् १४३२ में श्री गोम्मट-मूर्ति की प्रतिष्ठा कराई थी, जिसे उन्होंने स्थापित कराया था। एक ऐसी ही दिगम्बर मूर्तिकी स्थापना वेणूर में सन् १६०४ में श्री तिम्मराज द्वारा की गई थी। उस समय भी दिगम्बराचार्यों ने धर्मोद्योत किया था। सन् १५३० के एक शिलालेख से प्रगट है कि श्रीरंगनगर का शासक विधर्मी होगया था, उसे जैनसाधु विद्यानन्दिने पुनः जैनधर्म में दीक्षित किया था।[2]

दि० मुनि श्री विद्यानंदि—इसी शिलालेख से यह भी प्रगट है कि "इस मुनिराज ने नारायण पट्टन के राजा नंददेव की सभा में नंदनमल्ल भट्ट को जीता, सातवेन्द्र राजा केशरीवर्मा की सभा में बाद में विजय पाकर 'वादी' विरुद्ध पाया, सालुवदेव राजा की सभा में महान विजय पाई, विलिगे के राजा नरसिंह की सभा में जैन धर्म का महात्म्य प्रगट किया कारकल नगर के शासक भैरव राजाकी सभा में जैन धर्म का प्रभाव विस्तारा राजा कृष्णराय की राजसभा में विजयी हुए, कोपन व अन्य तीर्थों पर महान उत्सव कराये, श्रवणवेलगोल के श्री गोम्मटस्वामी के चरणों के निकट आपने अमृत की वर्षा के समान योगाभ्यास का सिद्धांत मुनियों को प्रगट किया, जिरसप्पा में प्रसिद्ध हुये, उनकी आज्ञानुसार श्रीवरदेव राजा

---

१. वीर, वर्ष ५ पृ० २४६.   २. जैश; पृ० ७० व DG.

सिकन्दर महान् के साथ दिगम्बर मुनि कल्याण यूनान के लिये यहां से प्रस्थानित होगये थे और एक अन्य दिगंबराचार्य यूनान धर्मप्रचारार्थ गये थे, यह पहले लिखा जा चुका है। यूनानी लेखकों के कथनसे बैक्ट्रिया (Bactria)[1] और इथ्यूपिया (Ethiopia)[2] नामक देशों में श्रमणों के विहारका पता चलता है। ये श्रमणगण दिग० जैन ही थे, क्योंकि बौद्ध श्रमण तो सम्राट् अशोक के उपरान्त विदेशों में पहुंचे थे।

अफ्रीका के मिश्र और अबीसिनिया देशों में भी एक समय दिगम्बर मुनियों का विहार हुआ प्रगट होता है, क्योंकि वहां की प्राचीन मान्यतामें दिगम्बरत्वको विशेष आदर मिला प्रमाणित है। मिश्रमें नग्न मूर्तियां भी बनी थी और वहां की कुमारी सेंटमेरी (St. Mary) दिगम्बर साधुके भेष में रही थी। मालूम होता है कि रावणकी लङ्का अफ्रीका के निकट ही थी और जैनपुराणों से यह प्रगट ही है कि वहां अनेक जैनमन्दिर और दिगम्बर मुनि थे।[3]

यूनान में दिगम्बर मुनियों के प्रचार का प्रभाव काफी हुआ प्रगट होता है। वहां के लोगों में जैनमान्यताओं का आदर हो गया था। यहां तक कि डायजिनेस (Diogenes) और सम्भवतः पैर्रहो (Pyrrho of Elis) नामक यूनानी तत्व

---

१. AI. p 104
२. AR., III. p 6. व जैन होस्टल मैगजीन भाग ११पृ० ६
३. मपा०, पृ० १६०–२०२

जानी हुई दुनियाका समावेश आर्यखंडमें हो जाता है।[१] इसलिते यह मानना ठीक है कि अमरीका, यूरोप, एशिया आदि देशोंमें एक समय दिगम्बर धर्म प्रचलित था और वहां दिगम्बर मुनियोंका विहार होता था। आधुनिक विद्वान् भी इस वातको प्रकट करते हैं कि वौद्ध और जैन भिक्षुगण यूनान, रोम और नारवे तक धर्म प्रचार करते हुये पहुंचे थे।

किन्तु जैनपुराणोंके वर्णन पर विशेष ध्यान न देकर यदि ऐतिहासिक प्रमाणों पर ध्यान दिया जाय, तो भी यह प्रगट होता है कि दिगम्बर मुनि विदेशोंमें अपने धर्मका प्रचार करने को पहुंचे थे। भ० महावीरके विहार के विषयमें कहा गया है कि वे आकनीय, वृकार्थप, वाल्हीक, यवनश्रुति, गांधार क्वाथतोय, तार्ण और कार्ण देशोंमें भी धर्म-प्रचार करते हुये पहुंचे थे।[२] ये देश भारतवर्ष के वाहर ही प्रगट होते हैं। आकनीय संभवतः आकसीनिया (Oxiana) है। यवनश्रुति यूनान अथवा पारस्यका द्योतक है। वाल्हीक वल्ख (Balkh) है। गांधार कंधार है। क्वाथतोय रेड-सी (Red Sea) के निकटके देश हो सकते हैं। तार्ण-कार्ण तूरान आदि प्रतीत होते हैं।[३] इस दशामें कंधार, यूनान, मिश्र आदि देशोंमें भगवान का विहार हुआ मानना ठीक है।[४]

---

१. मपा०, १५६-१५७
२. हरिवंशपुराण, सर्ग ३ श्लो० ३-७
३. वीर, वर्ष ६ अङ्क ७
४. संजैइ०, भा० २ पृ० १०२-१०३

कवि और तत्त्ववेत्ता अबु ल्-अला (Abu-l-Ala; ई० ९७३-१०५८, की रचनाओंमें जैनतत्वकी काफी झलक मिलती है। अबु-ल्-अला शाकभोजी तो थे ही; परन्तु वह म० गांधीकी तरह यह भी मानते थे कि एक अहिंसकको दूध नहीं पीना चाहिये। मधुका भी उन्होंने जैनों की तरह निषेध किया था। अहिंसा धर्मको पालने के लिये अबुल् अलाने चमड़े के जूतों का पहनना भी बुरा समझा था और नग्न रहना वह बहुत अच्छा समझते थे। भारतीय साधुओं को अन्तसमय अग्निचितापर बैठकर शरीरको भस्म करते देखकर, वह बड़े आश्चर्य में पड़ गये थे। इन सब बातों से यह स्पष्ट है कि अबु-ल्-अला पर दिगम्बर जैन धर्मका काफी प्रभाव पड़ा था और उनने दिगम्बर मुनियों को सल्लेखनाव्रतका पालन करते हुये देखा था[१]। वह अवश्यही दिगम्बर मुनियों को संसर्ग में आये प्रतीत होते हैं। उनका अधिक समय बग़दादमें व्यतीत हुआ था।

लङ्का (Ceylon) में जैन धर्म-की गति प्राचीनकाल से है। ईस्वीपूर्व चौथी शताब्दि में सिंहलनरेश पाण्डुकाभयने वहां के राजनगर अनुरुद्धपुर में एक जैन मंदिर और जैन मठ बनवाया था। निर्ग्रन्थ साधु वहां पर निर्बाध धर्मप्रचार करते थे। इक्कीस राजाओं के राज्यतक वह जैन विहार और मठ वहां मौजूद रहे थे, किन्तु ई० पू० ३८ में राजा वट्टगामिनीने उनको नष्ट कराकर उनके स्थानपर बौद्ध विहार बनवाया था[२]।

---

१. जैध०, पृ० ४६६ २. महावंश, AISJ p 37

वेत्ता दिगम्बर वेषमें रहे थे ।[१] उन्होंने दिगम्बर मुनियोंके निकट शिक्षा ग्रहण की थी । यूनानियों ने नग्न मूर्तियां भी बनाई थीं; जैसे कि लिखा जा चुका है ।

जब यूनान और नारवे जैसे दूरके देशोंमें दिगम्बर मुनि गण पहुंचे थे, तो भला मध्य-ऐशिया के अरब ईरान और अफगानिस्तान आदि देशोंमें वे क्यों न पहुंचते ? सचमुच दिगम्बर मुनियों का विहार इन देशोंमें एक समय में हुआ था । मौर्य सम्राट् सम्प्रति ने इन देशों में जैन श्रमणोंका विहार कराया था, यह पहले ही लिखा जाचुका है । मालूम होता है कि दिगम्बर मुनि अपने इस प्रयास में सफल हुये थे, क्योंकि यह पता चलता है कि इस्लाम मजहब की स्थापना के समय अधिकांश जैनी अरब छोड़कर दक्षिण भारत में आ वसे थे [२]। तथा हुएनसांगके कथन से स्पष्ट है कि ईस्वी सातवीं शताब्दि तक दिगम्बर मुनिगण अफ़गानिस्तान में अपने धर्मका प्रचार करते रहे थे [३]।

दिगम्बर मुनियोंके धर्मोपदेश का प्रभाव इस्लाम-मजहब पर बहुत-कुछ पड़ा प्रतीत होता है । दिगम्बरतत्त्वके सिद्धांतका इस्लाम-मजहब में मान्य होना, इस बातका सबूत है । अरबी

---

१. NJ., Intro. p. 2 & "Diogenes Laertius (IX. 61 & 63) refers to the Gymnosophists and asserts that Pyrrho of Elis, the founder of pure Scepticism came under their influence and on his return to Elis imitated their habits of life." EB., XII. 753 २. AR., IX. 284 ३. हुमा०, पृ० ३७

प्रारंभिक आक्रमणोंमें भारतके स्त्री-पुरुषोंकी एक बड़ी संख्यामें हत्याहुईथी और उनके धर्ममन्दिर और मूर्तियां भी खूब तोड़ीगई थीं। तिमूरलंगने जिस रोज दिल्ली फतह की उस रोज उस ने एक लाख भारतीय कैदियोंको तोप-दम करवा दिया।[१] सचमुच प्रारम्भमें मुसलमान आक्रमणकारियोंने हिन्दुस्तानको बेतरह तवाह किया; किन्तु जव उनके यहांपर पैर जमगये और वे यहां रहने लगे तो उन्होंने हिन्दुस्तानका होकर रहना ठीक समझा। यहांकी प्रजाको संतोषित रखना उन्होंने अपना मुख्य कर्तव्य माना। वावरने अपने पुत्र हुमायूंको यही शिक्षादी कि "भारतमें अनेक मतमतान्तरहैं. इसलिये अपने हृदयको धार्मिक पक्षपातसे साफ रख और प्रत्येक धर्मकी रिवाजोंके मुताविक इन्साफ कर"। परिणाम इसका यह हुआ कि हिन्दुओं और मुसलमानोंमें परस्पर विश्वास और प्रेमका वीज पड़ गया। जैनोंके विषयमें प्रो० डॉ० हेल्मुथ वॉन ग्लाजेनाप कहते हैं कि "मुसलमानों और जैनोंके मध्य हमेशा वैरभरा सम्वन्ध नहीं था.......(वल्कि) मुसलमानों और जैनोंके वीच मित्रता का भी सम्वन्ध रहा है।[२] "इसी मैत्रीपूर्ण सम्वन्धका ही यह परिणाम था कि दिगम्वर मुनि मुसलमान वादशाहोंके राज्यमें भी अपने धर्मका पालन कर सके थे।

---

१. Elliot. III. p 436: "100000 in fidels, impious idolators were on that day slain."
—Malfuzat-i Timuri.

२. DJ., p. 66 & जैध०, पृ०, ६८

उस पर भी, दिगम्बर मुनियोंने जैनधर्मके प्राचीनकेन्द्र लङ्का या सिंहलद्वीप को बिलकुल ही नहीं छोड़ दिया था। मध्यकाल में मुनि यशःकीर्ति इतने प्रभावशाली हुये थे कि तत्कालीन सिंहल नरेश ने उनके पाद-पद्मों की अर्चा की थी।[1]

सारांशतः यह प्रकट है कि दिगम्बर मुनियों का विहार विदेशोंमें भी हुआ था। भारतेतर जनताका भी उन्होंने कल्याण किया था।

(२५)

मुसलमानी बादशाहतमें दिगम्बर मुनि।

"O son, the kingdom of India is full of different religions ....It is incumbent on thee to wipe all religions prejudices off the tablet of the heart; administer justice according to the ways of every religion."[2] --Babar.

मुसलमान और हिन्दुओंका पारस्परिक सम्बन्ध—ई० ८वीं—१०वीं शताब्दिसे अरबके मुसलमानों ने भारतवर्षपर आक्रमण करना प्रारम्भ करदिया था; किन्तु कई शताब्दियों तक उनके पैर यहां पर नहीं जमे थे। वह लूटमार करके जो मिला उसे लेकर अपने देश को लौट जाते थे। इन

१. जैशिसं० पृ० ११२ (प्र०) २. QJMS., Vol.XVIIIp.116

दिगम्बर आचार्य के दर्शन किये थे[1]। इससे स्पष्ट है कि उस समय दिगम्बर मुनि इतने प्रभावशाली थे कि वे विदेशी आक्रमणकारियों का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट करने में समर्थ थे।

गुलाम बादशाहत में दिगम्बर मुनि—

गुलाम बादशाहत के ज़माने में भी दिगम्बर मुनियोंका अस्तित्व मिलता है। मूलसंघ सेनगण में उस समय श्रीदुर्लभसेनाचार्य, श्री वरसेनाचार्य, श्रीपेण, श्रीलक्ष्मीसेन, श्री सोमसेन प्रभृत मुनिपुंगव शोभाको पा रहे थे। श्री दुर्लभसेनाचार्य ने अङ्ग, कलिङ्ग, काश्मीर, नेपाल, द्राविड़, गौड़, केरल. तैलंग, उड्र आदि देशोंमें विहार करके विधर्मी आचार्यों को हतप्रभ किया था।[2] इसी समय में श्रीकाष्ठासंघ में मुनिश्रेष्ठ विजयचन्द्र तथा मुनि यशःकीर्ति, अभयकीर्ति, महासेन, कुन्दकीर्ति, त्रिभुवनचन्द्र, रामसेन आदि हुये प्रतीत होते हैं[2]! ग्वालियर में श्री अकलंकचन्द्रजी दिगम्बर वेषमें सं० १२५७ तक रहे थे।[3]

भरोचनगरमें राजेश्वर स्वामी यवनराजाओं में श्रेष्ठ महम्मद बादशाह के त्राण समस्या की पूर्तिसे तथा दृष्ट होने से १८ वर्ष की अवस्था में स्वर्ग गए हुए श्री श्रुतवीर स्वामी हुए।

—जैसिभा०, भा० १ कि २–३ पृ० ३५

१. IA, Vol. XXI p. 361—"Wife of Muhammad Ghori desired to see the chief of the Digambaras".

२. जैसिभा०, भा० १ कि० २–३ पृ० ३४

३. Ibid., किरण ४ पृ० १०६.

४. वृजैश०, पृ० १०

ईस्वी दसवीं शताब्दिमें जब अरबका सौदागर सुलेमान यहां आया तो उसे दिगम्बर साधु बहु-संख्या में मिले थे, यह पहले लिखा जा चुका है। गर्ज यह कि मुसलमानों ने आते ही यहां पर नंगे दरवेशों को देखा। महमूद गजनी (१००१) और महमूद गौरी (११७५) ने अनेक बार भारत पर आक्रमण किये; किन्तु वह यहां ठहरे नहीं। ठहरे तो यहाँ पर 'गुलाम खानदान' के सुल्तान और उन्हीं से भारत पर मुसलमानी बादशाहतकी शुरुआत हुई समझना चाहिये। उन्होंने सन् १२०६से१२९०ई० तक राज्य किया और उनके बाद खिलजी, तुग़लक़ और लोदी वंशों के बादशाहों ने सन् १२९०से१५२६ ई० तक यहां पर शासन किया।[1]

मुहम्मद गौरी और दिगम्बर मुनि—

इन बादशाहों के जमाने में दिगम्बर मुनिगण निर्बाध धर्म-प्रचार करते रहे थे, यह बात जैन एवं अन्य श्रोतों से स्पष्ट है। गुलाम बादशाहोंके पहलेही दिगम्बर मुनि सुल्तान महमूदका ध्यान अपनी ओर आकृष्ट कर चुके थे।[2] सुल्तान मुहम्मद-गोरी के सम्बन्ध में तो यह कहा जाता है कि उसकी बेगमने

---

१ Oxford. pp 129—130

२. 'अलकेश्वरपुरादमरवरच्छनगरे राजाधिराजपरमेश्वर यवन राय-शिरोमणिमहम्मदपातशाह सुरत्राणसमस्यापूर्णादिल्लिलदृष्टिनिपातेनाष्टादश वर्षप्रायप्राप्तदेवलोकश्रीश्रुतवीरस्वामिनाम्।''—अर्थात्—''अलकेश्वरपुरके

थे कि वहां एक सर्प-दंशसे अचेत सेठ-पुत्र दाह-कर्मके लिये लाया गया। आचार्य महाराजने उपकार भावसे उसका विष-प्रभाव अपने योग-वलसे दूर कर दिया। इस पर उनकी प्रसिद्धि सारे शहरमें होगई। वादशाह अलाउद्दीनने भी यह सुना और उसने उन दिगंवराचार्यके दर्शन किये। वादशाहके राजदरवारमें उनका शास्त्रार्थभी षट्दर्शन वादियोंसे हुआ; जिसमें उनकी विजय रही। उस दिन महासेन स्वामीने पुनः एकवार स्याद्वादकी अखण्ड ध्वजा भारत वर्ष की राजधानी दिल्लीमें आरोपित कर दी थी।[1]

इन्हीं दिगम्वराचार्यकी शिष्य परम्परामें विजयसेन, नयसेन, श्रेयांससेन, अनन्तकीर्त्ति, कमलकीर्त्ति, क्षेमकीर्त्ति, श्रीहेमकीर्त्ति, कुमारसेन, हेमचन्द्र, पद्मनन्दि, यशःकीर्त्ति, त्रिभुवनकीर्ति, सहस्रकीर्ति, महीचन्द्र आदि दिगम्वर मुनि हुये थे। इनमें श्रीकमलकीर्ति जी विशेष प्रख्यात थे।[2]

सुल्तान अलाउद्दीन का अपरनाम मुहम्मदशाह था[3] सन् १५३० ई० के एक शिलालेखमें मुनि विद्यानन्दि के गुरुपरम्परीण श्री आचार्य सिंहनन्दिका उल्लेख है। वह वड़े नैयायिक थे और उन्होंने दिल्लीके वादशाह महमूद सूरित्राण की सभामें वौद्ध व अन्योंको वादमें हराया था। यह वात उक्त

१. जैसिमा०, भा० १ कि० ४ पृ० १०६
२. Ibid. ३. Oxford p. 130

खिलजी, तुग़लक और लोदी बादशाहों के राज्य और दिगम्बर मुनि—खिलजी तुग़लक और लोदी बादशाहों के राज्यकाल में भी अनेक दिगम्बर मुनि हुये थे। काष्ठासंघ में श्री कुमारसेन, प्रतापसेन, महातपस्वी माहवसेन आदि मुनिगण प्रसिद्ध थे। महातपस्वी श्री माहव-सेन अथवा महासेनके विषय में कहा जाता है कि उन्होंने खिलजी बादशाह अलाउद्दीन से सम्मान पाया था[1]। इति-हास से प्रगट है कि अलाउद्दीन धर्मकी परवाह कुछ नहीं करता था। उस पर राघो और चेतन नामक ब्राह्मणों ने उसको और भी वरग़ला रक्खा था। एकदा उन्हीं दोनोंने बादशाह को दिगम्बर मुनियों के विरुद्ध कहा सुना और उनकी बात मान कर बादशाह ने जैनियों से अपने गुरुको राजदरबार में उप-स्थित करने के लिये कहा। जैनियों ने नियत काल में आचार्य माहवसेन को दिल्ली में उपस्थित पाया। उनका विहार दक्षिण की ओर से वहां हुआ था।

सुल्तान अलाउद्दीन और दिगंबराचार्य—आचार्य माहवसेन दिल्लीके बाहर श्मशान में ध्यानारूढ़ तिष्ठे

---

1. "(The Jain) Acharyas ...by their character attainments and scholarship...... ...... commanded the respect of even Muhammadan Sovereigns like Allauddin and Auranga Padusha (Aurangazeb)."

—SSIJ, pt, II p. 132

वह अपनी प्रजाको प्रसन्न रख सका था और विद्वानों का सम्मान करने में सफल हुआ था।[१]

तत्कालीन अन्य दिगम्बर मुनि गण—

सं० १४६२ में ग्वालियर में महामुनि श्री गुणकीर्तिजी प्रसिद्ध थे[२]। मेदपाद देश में सं० १५३६ में श्री मुनि रामसेनजी के प्रशिष्य मुनि सोमकीर्ति जी विद्यमान थे और उन्होंने 'यशोधर चरित' की रचना की थी[३]। श्री 'भद्रबाहु चरित' के कर्त्ता मुनि रत्ननन्दिभी इसी समय हुये थे। वस्तुतः उस समय अनेक मुनिजन अपने दिगम्बर वेष में इस देश में विचर रहे थे।

लोदी सिकन्दर निज़ामखां और दिगंबराचार्य विशालकीर्ति—

लोदी खानदान में सिकन्दर (निज़ामखां) बादशाह सन् १४८९ में राजसिंहासन पर बैठा

१. सुल्तान अलाउद्दीन ने शराब की बिक्री रुकवा दी थी। नाज, कपड़ा आदि बेहद सस्ते थे। उसके राजमें राजभक्तिकी बाहुल्यता थी। विद्वान काफी हुए थे। (Without the patronage of the Sultan many learned and great men flourished.)

—Elliot., III. 206

२. जैहि०, भा० १५ पृ० २२५

३. "नदीतटाख्यगच्छे वंशे श्रीरामसेनदेवस्य जातो गुणार्णवैकं श्रीमांश्च भीमसेवेति। निर्मितं तस्य शिष्येण श्रीयशोधर सञ्ज्ञिकं श्रीसोमकीर्ति मुनिनानिशोदयाधीपतांबुधावर्षेपट् विशशख्येतिथिपरिगणनायुक्त संवत्सरेति पंचम्यां पौषकृष्णदिनकर दिवसे चोत्तरास्पट्ट चंद्रे ॥इत्यादि॥"

शिलालेखमें है। यह उल्लेख वादशाह अलाउद्दीनके संवन्ध में हुआ प्रतिभापित होता है।[1]

सारांशतः यह कहा जा सकता है कि वादशाह अलाउद्दीनके निकट दिगम्वर मुनियों को विशेष सम्मान प्राप्त हुआ था। दिल्लीके श्री पूर्णचन्द्र दिगम्वर जैन श्रावककी भी इज़त अलाउद्दीन करता था।[2] और उसने श्वेताम्वराचार्य्य श्री रामचन्द्रसूरिको कई भेंटें अर्पण की थीं।[3] सच वात तो यह है कि अलाउद्दीनके निकट धर्मका महत्व न कुछ था। उसे अपने राज्यका ही एक मात्र ध्यान था—उसके सामने वह 'शरीअत' को भी कुछ न समझता था। एक दफा उसने नव मुस्मिलमोंको भी तोपदम करा दिया।[4] हिन्दुओं के प्रति वह ज्यादा उदार नहीं था और जैन लेखकोंने उसे 'खूनी' लिखा है। किन्तु अलाउद्दीनमें 'मनुष्यत्व' था। उसी के वल पर

---

१ मजैस्मा०,पृ६० ३२२, 'सुल्तान' शब्दको जैनाचार्योंने सुरित्राण लिखकर वादशाहोंको मुनिरक्षक प्रकट किया हैं।

२. जैहि०, मा० २५ पृ १३२

३. जैध. पृ० ३८

३. "He (Allau-ddin) was by nature cruel and implacable, and his only care was the welfare of his kingodom. No consideration for religion (Islam)... ever troubled him. He disregarded the provisions of the Law.......He now gave commands that the race of "New-Muslims" should be destroyed."—Tarikh-i-Firozshahi."

— Elliot. III, p. 205

"कतिपय योगी मादरज़ात नंगे घूमते थे, क्योंकि, जैसे उन्होंने कहा, वे इस दुनियामें नंगे आये हैं और उन्हें इस दुनियांकी कोई चीज़ चाहिये नहीं। खासकर उन्होंने यह कहा कि हमें शरीर सम्वन्धी किसीभी पापका भान नहीं है और इसलिये हमें अपनी नंगी दशा पर शरम नहीं आती है, उसी तरह जिस तरह तुम अपना मुंह और हाथ नंगे रखने में नहीं शरमाते हो। तुम जिन्हें शरीरके पापोंका भान है, यह अच्छा करते हो कि शरम के मारे अपनी नग्नता ढक लेते हो।"

इस प्रकारकी मान्यता दिगम्बर मुनियोंकी है। मार्को पोलोका समागम उन्हींसे हुआ प्रतीत होता है। वह उनके संसर्गमें आये हुये लोगोंमें अहिंसा धर्मकी बाहुल्यता प्रकट करता है। यहां तक कि वह साग-सब्ज़ी तक ग्रहण नहीं करते थे। सूखे पत्तों पर रखकर भोजन करते थे। वे इन सब में जीव-तत्त्वका होना मानते थे। हैवेल सा० गुजरातके जैनों में इन मान्यताओंका होना प्रकट करते हैं [१]। किन्तु वस्तुतः गुजरात ही क्या प्रत्येक देश का जैनी इन मान्यताओं का अनु-

---

१ 'Morco Polo also n ticed the customs, which the orthodox Jaina commuuity of Gujerat maintains to the present day. They do not kill an animal on any account, not even a fly or flea, or a louse or anything in fact that has life; for they say, these have all souls and it would be sin to do so.' (Yule's Morco polo; II 366) —HARI., p. 365

था[१]। हूमसमठ के गुरु श्री विशालकीर्ति भी लगभग इसी समय हुये थे। उनके विषय में एक शिलालेख से पाया जाता है कि उन्होंने सिकन्दर वादशाह के समक्ष वाद किया था[२]। यह वाद लोदी सिकन्दर के दरवार में हुआ प्रतीत होता है। अतः यह स्पष्ट है कि दिगम्वर मुनि तव भी इतने प्रभावशाली थे कि वे वादशाहों के दरवार में भी पहुंच जाते थे।

तत्कालीन विदेशी यात्रियों ने दिगम्वर साधुओ को देखा था—जैनसाहित्य के उपरोक्त उल्लेखों की पुष्टि अजैन श्रोत से भी होती है। विदेशी यात्रियों के कथन से यह स्पष्ट है कि गुलाम से लोदी राज्यकाल तक दिगम्वर जैनमुनि इस देश में विहार और धर्म प्रचार करते रहे थे। देखिये तेहरवीं शताब्दि में यूरोपीय यात्री मार्को पोलो (Morco Polo) जव भारत में आया तो उसे ये दिगम्वर साधु मिले। उनके विषय में वह लिखता है कि[३]।

---

१. Oxford., p. 130 २. मजैस्मा०, पृ० १६३ व ३२२

३ Some Yogis went stark naked, because, as they sand, they had come naked into the world and desired nothing that was of this world. 'Moreover, they declared, "we have no sin of the flesh to be conscious of, and, therefore, we are not ashamed of our nakedness, any more than you are to show your hand or face. You, who are conscious of the sins of the flesh, do well to have shame and to cover your nakedness."

—Yule's Morco Polo II, 366 & HARi., p. 364

सूरवंशों के राजाओं ने राज्य किया था[१]। उनके समय में भी दिगम्बर मुनियोंका वाहुल्य था। पाटोदी (जयपुर) के मंदिर के वि.सं. १५७५ की ग्रंथ प्रशस्ति से प्रगट है कि उस समय श्रीचन्द्र नामक मुनि विद्यमान थे[२]। लखनऊ चौकके जैनमंदिरमें विराजमान एक प्राचीन गुटका के पत्र १६३ पर दी हुई प्रशस्ति से निर्ग्रन्थाचार्य श्री माणिक्यचन्द्रदेवका अस्तित्व सं० १६११ में प्रमाणित है[३]। 'भावत्रिभंगी' की प्रशस्ति से सं० १६०५ में मुनि क्षेमकीर्तिका होना सिद्ध है[४]। सचमुच बादशाह बाबर, हुमायूं और शेरशाह के समय में दिगम्बर मुनियों का विहार सारे देशमें होता था। मालूम होता है कि उन्हीं का प्रभाव मुसलमान दरवेशों पर पड़ा था; जिसके फलस्वरूप वे नग्न रहने लगे थे। मुग़ल बादशाह शाहजहां के समय में वे एक बड़ी संख्या में मौजूद थे[५]। शेरशाह के समय में दिगम्बर मुनियों का निर्बाध विहार होता था; यह बात शेरशाह के अफसर

---

१. Oxford., p. 151

२. "श्री संघाचार्यसत्कवि शिष्येण श्रीचन्द्रमुनि।"—जैमि०, वर्ष २२ अङ्क ४५ पृष्ठ ६६८।

३. सं० १६११ चैत्र सु० २……मूलसंघे………म० श्रीविद्यानंदि तत्पट्टे श्री कल्याणकीर्ति तत्पट्टे नैर्ग्रन्थ्याचार्य…तपोबललब्धातिशय श्री माणिकचन्द्रदेवाः………।" –जैमि०, वर्ष २२ अङ्क ४८ पृ० ७४०

४. "सं० १६०५ वर्षे…तत्शिष्य सर्वगुणविराजमान मंडलाचार्य मुनि श्री क्षेमकीर्तिदेवा।"

५. Bernier pp. 315-318

यायी मिलेगा । अतः इसमें सन्देह नहीं कि मार्को पोलोको जो नंगे-साधु मिले थे, वह जैनसाधु ही थे ।

अलवेरुनीके आधार पर रशीदुद्दीन नामक मुसलमान लेखक ने लिखा है कि "मलावार के निवासी सवही श्रमण हैं और मूर्तियों की पूजा करते हैं। समुद्र किनारे के सिन्दवूर, फकनूर, मञ्जरूर, हिली, सदर्स, जङ्गलि और कुलम नामक नगरों और देशों के निवासी भी 'श्रमण' हैं[१] ।" यह लिखा ही जा चुका है कि दिगम्वर मुनि 'श्रमण' नाम से भी विख्यात हैं। अतः कहना होगा कि रशीदुद्दीन के अनुसार मलावार आदि देशों के निवासी दिगम्वर जैन ही थे, और तव उनमें दिगम्वर मुनियों का होना स्वाभाविक है ।

मुग़ल साम्राज्य में दिगम्वर मुनि—

उपरान्त सन् १५२६ से १७६१ ई० तक भारत मुग़ल और

---

१. Rashi-uddm from Al-Biruni writes : "The whole country (of Malibar) produces the *Pan*.... The people are all *Samanis* and worship idols Of the cities of the shore the first is Sindabur, the Faknur, then the country of Manjarur, then the country of Hili, then the country of Sadarsa, then Jangli, then Kulam. The men of all these countries are Samanis".

–Elliot -Vol. I p. 68.

इलियट सा० ने इन श्रमणों को वौद्ध लिखा है, किन्तु उस समय दक्षिण भारत में वौद्धों का होना असम्भव है। श्रमण शब्द वौद्धभिक्षु के अतिरिक्त दिगम्वर साधुओं के लिये भी व्यवहृत होता है।

यहीं के जैनमन्दिर में कीथी[१]। उन्होंने अपने अपने 'जम्बूस्वामी चरित' में लिखा है कि भटानियाकोल के निवासी साहु टोडर जब तीर्थयात्रा करते हुये मथुरा पहुंचे तो उन्होंने वहांपर ५१४ दिगम्बर मुनियोंके समाधि सूचक प्राचीन स्तूपों को जीर्णशीर्ण दशामें देखा। उन्होंने उनका उद्धार करा दिया और उनकी प्रतिष्ठा शुभतिथि-वारको चतुर्विधसंघ—(१) मुनि (२ आर्यिका (३) श्रावक (४) श्राविका—एकत्र करके कराई थी।[२] इन उल्लेखोंसे स्पष्ट है कि वादशाह अकबरके राज्यमें अनेक दिगम्बर मुनि विद्यमान् थे और उनका निर्बाध विहार सारे देशमें होता था।

बादशाह औरङ्गजेबने दिगम्बर मुनिका सम्मान किया था—अकबर के बाद मुगल खानदान में जितने भी शासक हुये उन सबके ही शासनकाल में दिगम्बर

---

१. "वीर" वर्ष ३ पृ० ५ "लाटी०" पृ० ११—

"श्री मद्विडोरपिण्डोपमितमित्तनभः पाण्डुराखण्डकीर्त्यो,
कुष्टं ब्रह्माण्डकाण्डं निजभुजयशसा मण्डाडम्बरोऽस्मिन्।
येनासौ पातिसाहिः प्रतपदकबर प्रख्यविख्यातकीर्ति-
र्जीयाद्मोक्ताथ नाथः प्रभुरिति नगरस्यास्य वैराटनाम्नः ॥६२॥
जैनो धर्मोनवद्यो जगति विजयतेऽद्यापि सन्तानवर्ती
साक्षाद्दिगम्बरास्ते यतय इह यथाजातरूपाङ्कलक्षः।
तस्मै तेभ्यो नमोस्तु त्रिसमयनियतं प्रोल्लसत्प्रसादा-
द्वर्गावर्द्धमानं प्रतिघविरहितो वर्तते मोक्षमार्गः ॥६३॥"

२. अनेकान्त, भा० १ पृ० १३९-१४१ "चतुर्विधमहासंघ समाहूयात्र-धीमता।"

मालिक मुहम्मद जायसी के प्रसिद्ध हिन्दीकाव्य 'पद्मावत' (२ । ६०) के निम्नलिखित पद्यसे स्पष्ट है :—

"कोई ब्रह्मचारज पन्थ लागे ।
कोई सुदिगंबर आछा लागे ।।"

अकबर और दिगम्बर मुनि—बादशाह अकबर जलालुद्दीन स्वयं जैनोंका परम भक्त था और यदि हम उस समयके ईसाई लेखकों के कथनको मान्यता दें तो कह सकते हैं कि वह जैनधर्म में दीक्षित होगया था । निस्सन्देह श्वेताम्बराचार्य श्रीहीरविजयसूरि आदिका प्रभाव उस पर विशेष पड़ा था[1] । इस दशामें अकबर दिगम्बर साधुओं का विरोधी नहीं हो सकता : बल्कि अबुलफ़ज़ल ने 'आईन-इ-अकबरी' भाग ३ पृष्ठ ८७ में उनका उल्लेख स्पष्ट शब्दों में किया है और लिखा है कि वे नंगे रहते हैं ।

वैराट का दि० संघ—वैराट नगर में उस समय दिगंबर मुनियों का संघ विद्यमान था । वहां पर साक्षात् मोक्ष-मार्ग की प्रवृतिके लिये यथाजात जिनलिङ्ग शोभा पारहा था । यह नगर बड़ा समृद्धिशाली था और उस पर अकबर शासन करता था । कवि राजमल्ल ने 'लाटोसंहिता' की रचना

---

१. पादरी पिन्हेरो (Pinheiro) ने लिखा है कि अकबर जैनधर्मानुयायी है [He (Akbar) follows the sect of the Jainas]

सूस०, पृ० १७१-३६८

तियोंका विचार" चर्चा ग्रंथ लिखा था[१]। सं० १७८३ में गुरु देवेन्द्रकीर्तिका अस्तित्व ढूंढारिदेश में मिलता है। वहां पर दिगम्बर मुनियों का प्राचीन आवास था[२]। सं० १७५७ में कुण्डलपुर में मुनि श्री गुणसागर और यश:कीर्ति थे। उनके शिष्यने महाराजा छत्रसाल की विशेष सहायता की थी[३]। कवि लालमणिने औरङ्गजेबके राज्यमें 'अजितपुराण' की रचना की थी। उससे काष्ठासङ्घमें श्री धर्मसेन, भावसेन, सहस्रकीर्ति, गुणकीर्ति, यश:कीर्ति, जिनचन्द्र श्रुतकीर्ति आदि दिगम्बर मुनियों का पता चलता है[४]। सं० १७९९ में कवि खुशाल-दासजी ने एक मुनि महेन्द्रकीर्तिजी का उल्लेख किया है।[५]

---

१. "सवत् १७१९ वर्षे फाल्गुण सुदि १३ सोमे लिखित मुनि श्री वैराग्यसागरेण।"

२ देसढूंढाहड़ जाणू सार...... मूलसङ्घ भविजान सुगं सिवकार थपान्यूम्। आगें भये रिषीस गुणाकर तिनि इह ठान्यूम्॥

कुन्दकुन्द मुनिराइ जिहाजधर्म जामांहि; कर्तविलकाल विलीत भए मुनिवर अधिकाहीं। देवेन्द्रकीर्ति अबै चितधारि ताही विषै। लक्ष्मीसुदास पण्डित तहां विनूं सुगुरु अति संरपै॥
सतरासै तियासिये पोस सुकुल तिथिजानि।..." —पद्मपुराण भाषा

३. "तस्यान्वये संजातो ज्ञानवान गुणसागरः। मवस्वी सघ संपूज्यो यश:कीर्तिर्महामुनि:"॥ —दिजैडा० पृ० २५९

४. जैहि०, १२-१९४ "श्रीमच्छ्रीकाष्ठासंघे मुणिगणगणनात् दिग-वस्त्रयुक्टे॥"

५. "भट्टारक पद सोमै जास—मुनि महेन्द्रकीर्त्ति पट तास।"

—उत्तरपुराण भाषा।

मुनियोंका अस्तित्व मिलता है। औरङ्गजेब सदृश कट्टर बादशाहको भी दिगम्बर मुनियों ने प्रभावित करलिया था, यहांतक कि औरंगजेबने उनका सम्मान किया था।[1] उस समय के किन्हीं मुनि महाराजोंका उल्लेख इस प्रकार है।

तत्कालीन दिगम्बर मुनि—दिगम्बर मुनि श्रीसकलचन्द्रजी सं० १६६७ में विद्यमान थे। उनके एकशिष्य ने 'भक्तामर कथा' की रचना कीथी।[2] सं० १६८० का लिखा हुआ एक गुटका दि० जैन पंचायती बड़ा मन्दिर मैनपुरी के शास्त्रभण्डारमें विराजमान है। उसमें श्री दिगम्बर मुनि महेन्द्रसागरका उल्लेख उस समयमें मिलता है[3]। संवत १७१६ में अकबराबादमें मुनि श्री वैराग्यसेनने "आठकर्म की १४८ प्रकृ-

---

१. SSIJ., pt II p. 132 जैन कवियोंने औरङ्गजेबकी प्रशन्सा ही की है:—

"औरङ्गसाह बली को राज, पायो कविजन परम समाज।
चक्रवर्तिसम जगमें भयो, फेरत आनि उदधि लों गयो॥
जाके राज परम सुख पाय, करी कथा हम जिन गुन गाय।"
—कवि विनोदीलाल

२. जैप्र०, पृ० १४३

३. "गुरु मुनि माहिंदसेनि नमिजी, भनत भगवतीदासु।"
—वीर जिनेन्द्र गीत०

"मुनि माहेन्द्रसेनि गुरु तिह जुग चरन पसार।"
—ढमालु राजमती-नेमिसुर

"सुणि माहेन्द्रसेन इह निसि प्रणामा तासो।
थानि करस्थलि नीकइ भनत भगोती दासो॥" —ज्ञानी ढाल

था। वह सारे भारतमें घूमा था और उसका समागम दिगम्बर मुनियोंसे भी हुआ था। उनके विषय में वह लिखता है कि [१]:—

"मुझे अक्सर साधारणतः किसी राजा के राज्य में, इन नङ्गे फ़कीरोंके समूह मिले थे, जो देखने में भयानक थे। उसी दशामें मैंने उन्हें मादरजात नङ्गा बड़े बड़े शहरों में चलते फिरते देखा था। मर्द, औरत और लड़कियां उनकी ओर वैसे ही देखते थे जैसेकि कोई साधु जब हमारे देशकी गलियोंमें हो कर निकलता है तब हम लोग देखते हैं। औरतें अक्सर उनके लिये बड़ी विनयसे भिक्षा लाती थीं। उनका विश्वास था कि वे पवित्र पुरुष हैं और साधारण मनुष्योंसे अधिक शीलवान और धर्मात्मा हैं।"

ट्रावरनियर आदि अन्य विदेशियों ने भी उन दिगम्बर मुनियोंको इसी रूपमें देखा था। इस प्रकार इन उदाहरणोंसे

---

१ "I have often met generally in the territory of some Raja, bands of these naked fakirs, hideous to behold In this trim I have seen them shamelessly walk stark naked, through a large town, men, women and girls looking at them with out any more emotion than may be created when a hermit passes through our streets. Females would often bring them alms with much devotion, doubtless believing that they were holy personages, more chaste and discreet than other men".

—Bernier. p. 317

मुनि धर्मचन्द्र, मुनि विश्वसेन, मुनि श्रीभूषण का भी इसी समय पता चलता है[1]। सारांशतः यदि जैन साहित्य और मूर्ति लेखोंका और भी परिशीलन और अध्ययन किया जाय तो अन्य अनेक मुनिगण का परिचय उस समय में मिलेगा।

आगरेमें तब दिगम्बर मुनि—कविवर बनारसीदासजी बादशाह शाहजहां के कृपापात्रोंमें से थे। उनके सम्बन्ध में कहा जाता है कि एक बार जब कविवर आगरे में थे तब वहाँ पर दो नग्न मुनियों का आगमन हुआ। सब ही लोग उनके दर्शन वन्दन के लिये आते जाते थे। कविवर परीक्षा प्रधानी थे। उन्होंने उन मुनियों की परीक्षा की थी[2]। इस उल्लेख से उस समय आगरे में दिगम्बर मुनियों का निर्वाध विहार हुआ प्रकट है।

फ्रेंच-यात्री० डा० बर्नियर और दिगंबर साधु—विदेशी विद्वानों की साक्षी भी उक्त वक्तव्य की पोषक है। बादशाह शाहजहाँ और औरङ्गजेब के शासनकालमें फ्रांस से एक यात्री डा० बर्नियर (Dr. Bernier) नामक आया

---

१. श्री मूलसंघेयभारतीये गक्षे बलात्कारगणेतिरम्ये। आसीन्सुदेवेन्द्रयशोमुनीन्द्रः सधर्मधारी मुनि धर्मचन्द्र.।" —श्रीजिनसहस्रनाम०

× × ×

श्री काष्ठासंघे जिनराजसेनस्तदन्वये श्री मुनि विश्वसेन।
विद्याविभूषैः मुनिराट् बभूव श्रीभूषणो वादिगजेन्द्रसिंहः ॥"

—पंचकल्याणक पाठ०

२. बवि०, चरित्र, पृ० ६७—१०२

ब्रिटिश-शासनकाल में दिगम्बर मुनि ।

"All shall alike enjoy the equal and impartial protection of the Law, and we do strictly charge and enjoin all those who may be in authority under us that they abstain from all interferance with the religious belief or worship of any of our subjects on pain of our highest displeasure.

—Queen Victoria [१]

महारानी विक्टोरिया ने अपनी १ नवम्बर सन् १८५८ की घोषणा में यह बात स्पष्ट करदी है कि ब्रिटिश-शासन की छत्र-छाया में प्रत्येक जाति और धर्मके अनुयायी को अपनी परम्परागत धार्मिक और सामाजिक मान्यताओं को पालन करने में पूर्ण स्वाधीनता होगी और कोई भी सरकारी कर्मचारी किसीके धर्ममें हस्तक्षेप न करेगा। इस अवस्था में ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत दिगम्बर मुनियों को अपना धर्मपालन करना सुगम-साध्य होना चाहिये और वह प्रायः सुगम रहा है।

गत ब्रिटिश-शासनकाल में हमें कई एक दिगम्बर-मुनियों के होने का पता चलता है। सं० १८७० में ढाका शहर में श्री

---

१. Royal Proclamation of 1st Nov. 1858

यह स्पष्ट है कि मुसलमान बादशाहों ने भारत की इस प्राचीन प्रथा, कि साधु नङ्गे रहें और नङ्गे ही सर्वत्र विहार करें, को सम्माननीय दृष्टि से देखा था। यहां तक कि कतिपय दिगम्बर जैनाचार्यों का उन्होंने खूब आदर सत्कार किया था। तत्कालीन हिन्दू कवि सुन्दरदासजी भी अपने 'सर्वांगयोग' नामक ग्रन्थमें इन मुनियोंका उल्लेख निम्नशब्दों में करते हैं।[1]:—

"केचित् कर्मस्थापहि जैना, केश लुंचाइ करहिं अति फैना।"

केशलुंचन क्रिया दिगम्बर मुनियोंका एक खास मूल-गुण है, यह लिखाही जा चुका है। इससे तथा सं० १८७० में हुये कवि लालजीतजी के निम्न उल्लेख से तत्कालीन दिगंबर मुनियोंका अपने मूलगुणों को पालन करनेमें पूर्णतः दत्तचित्त रहना प्रगट है:—

"धारैं दिगम्बर रूप भूप सब पद को परसैं;
हिये परम वैराग्य मोक्षमारग को दरसैं।
जे भवि सेवें चरन तिन्हें सम्यक् दरसावैं;
करैं आप कल्याण सुबारहभावन भावैं!!
पंच महाव्रत धरें वरें शिवसुन्दर नारी;
निज अनुभौ रसलीन परम-पदके सुविचारी।
दशलक्षण निजधर्म गहैं रत्नत्रधारी!!
ऐसे श्री मुनिराज चरन पर जग-बलिहारी!!!"

---

१. फाह्यान; भूमिका

मुनि श्री जिनप्पास्वामी के समीप क्षुल्लक के व्रत धारण किये थे। सं० १९६९ में झालरापाटन के महोत्सव के समय उन्होंने दिगम्बर मुनिके महाव्रतों को धारण करके नग्नमुद्रा में सर्वत्र विहार करना प्रारंभ कर दिया। उनका विहार उत्तरभारत में आगरा तक हुआ प्रतीत होता है।[1]

सन् १९२१ में एक अन्य दिगम्बर मुनि श्री आनन्द-सागरजी का अस्तित्व उदयपुर (राजपूताना) में मिलता है। श्रीऋषभदेव केशरियाजी के दर्शन करने के लिये वह गये थे; किन्तु कर्मचारियों ने उन्हें जाने नहीं दिया था। उस पर, उपसर्ग आया जानकर वह ध्यान माढ़कर वहीं बैठ गये थे। इस सत्याग्रह के परिणाम-स्वरूप राज्य की ओर से उनको दर्शन करने देने की व्यवस्था हुई थी।[2]

किन्तु इनके पहले दक्षिण भारत की ओरसे श्रीअनन्त-कीर्तिजी महाराज का विहार उत्तर भारत को हुआ था। वह आगरा, बनारस आदि शहरों में होते हुये शिखरजी की वंदना को गये थे। आखिर ग्वालियर राज्यान्तर्गत मोरेना स्थान में उनका असामयिक स्वर्गवास माघ शुक्ला पंचमी सं० १९७४ को हुआ था। जब वह ध्यानलीन थे तब किसी भक्तने उनके पास आगकी अंगीठी रखदी थी। उस आग से वह स्थान ही आग-मयी होगया और उसमें उन ध्यानारूढ़ मुनिजी का शरीर

---

१. Ibid. p. 18–20

२. दि॰जै॰, वर्ष १४ अङ्क ५–६ पृ० ७

नरसिंह नामक मुनिके अस्तित्वका पता चलता है[१]। इटावा के आसपास इसी समय मुनि विनयसागर व उनके शिष्यगण धर्मप्रचार कर रहे थे। लगभग पचास वर्ष पहले लेखकके पूर्वजोंने एक दिगम्बर मुनि महाराजके दर्शन जयपुर रियासकके फागी नामक स्थान पर किये थे। वह मुनिराज वहां पर दक्षिण की ओरसे विहार करते हुये आये थे।

दक्षिण भारतकी गिरि-गुफाओं में अनेक दिगम्बर मुनि इस समयमें ज्ञानध्यानरत रहे हैं। उन सबका ठीक २ पता पा लेना कठिन है। उनमें से कतिपय जो प्रसिद्धिमें आगये उन्हीं के नाम आदि प्रकट हैं। उनमें श्री चन्द्रकीर्तिजी महाराजका नाम उल्लेखनीय है। वह संभवतः गुरमंडचाके निवासी थे और जैनवद्रीमें तपस्या करते थे। वह एक महान् तपस्वी कहे गये हैं। उनके विषयमें विशेष परिचय ज्ञात नहींहै[२]।

किन्तु उत्तरभारतके लोगों में साम्प्रत दिगम्बर मुनि श्रीचन्द्रसागरजी का ही नाम पहले-पहल मिलता है। वह फलटन (सतारा) निवासी हूमड़जातीय पद्मसी नामक श्रावक थे। सं० १९६९ में उन्होंने कुरुन्दवाड़ग्राम (सोलापुर) में दिगंबर

---

१. "संवत् अष्टादश शतक व सतर वरस प्रमाण.........
ढाका सहर सुहामणा, देश वग के माँहि। जैनधर्मधारक जिहां श्रावक अधिक सुहाहि। .... तासु शिष्य विनयी विबुध हर्षचंद गुणवंत। मुनि नरसिंह विनेय विधि पुस्तक एह लिखंत॥"

—मैनपुरी दि० जैन वड़ा मंदिर का एक गुटका

२. दिजै०, वर्ष ९ अङ्क १ पृ० २३

आयुमें एक पांच वर्षकी कन्या के साथ उनका ब्याह हुआ था। और इस घटना के ७ महीनें बाद ही वह बाल पत्नी मरण कर गई थी। तबसे वह बराबर ब्रह्मचर्य का अभ्यास करते रहे। उनका मन वैराग्य भाव में मग्न रहने लगा! जब वह अठारह वर्षके थे, तब एक मुनिराज के निकट से ब्रह्मचारी पदको उन्होंने ग्रहण किया था। सं० १९६९ में उत्तरग्राम में विराजमान दिगम्बर मुनि श्री देवेन्द्रकीर्त्तिजी के निकट उन्होंने क्षुल्लक का व्रत ग्रहण किया था। इस घटना के चारवर्ष बाद संवत् १९७३ में कुंभोज के निकट बाहुबलि नामक पहाडी पर स्थित श्री दिगम्बर मुनि अकलीक स्वामी के निकट उन्होंने ऐलकपद धारण किया था। सं० १९७६ में येरनाल में पंचकल्याणक महोत्सव हुआ था। उसमें वह भी गये थे। जिस समय दीक्षाकल्याणक महोत्सव सम्पन्न होरहा था, उस समय उन्होंने भोसगीके निर्ग्रंथ मुनि महाराज के निकट मुनिदीक्षा ग्रहण की थी[1]। तबसे वह बराबर एकान्त में ध्यान और तपका अभ्यास करते रहेथे। उस समय वह एक खासे तपस्वी थे। उनकी शान्तमनोवृत्ति और योगनिष्ठा ने उत्तर भारत के विद्वानों का ध्यान उनकी ओर आकृष्ट किया। कई पंडित उनकी संगति में रहने लगे। आखिर उनके शिष्य कई उदासीन श्रावक होगये; जिनमें से कतिपय दिगम्बर मुनि और ऐलक-क्षुल्लक के व्रतोंका पालन करने लगे। इस प्रकार शिष्य-समूह से वेष्टित होने पर उन्हें 'आचार्य' पद

---

१ दिजै०, वर्ष १६ अङ्क १—२ पृ० ९

दग्ध होगया। इस उपसर्ग को उन धीर वीर मुनिजी ने सम-भावों से सहन किया था। उनका जन्म सं० १९४० के लगभग निल्लीकार (कारकल) में हुआ था। वह मोरेना में संस्कृत और सिद्धान्त का अध्ययन करने की नियत से ठहरे थे; किन्तु अभाग्यवश वह अकाल काल-कवलित होगये।

श्री अनन्तकीर्तिजी के अतिरिक्त उस समय दक्षिण-भारतमें श्री चन्द्रसागरजी मुनि मणिहली, श्री सनत्कुमारजी मुनि और श्रीसिद्धसागरजी मुनि तेरवाल के होनेका भी पता चलता है[1]। किन्तु पिछले पाँच छै वर्षमें दिगम्बर मुनिमार्गकी विशेष वृद्धि हुई है और इस समय निम्नलिखित संघ विद्यमान हैं, जिनके मुनिगण का परिचय इस प्रकार है:—

(१) श्री शान्तिसागरजी का संघ—यह सङ्घ इस समय उत्तर भारत में वहुत प्रसिद्ध है। इसका कारण यह है कि उत्तर भारत के कतिपय पण्डितगण इस सङ्घके साथ हो कर सारे भारतवर्ष में घूमे हैं। इस सङ्घने गत चातुर्मास भारत की राजधानी दिल्ली में व्यतीत किया था। उस समय इस सङ्घमें दिगम्वर-मुद्रा को धारण किये हुये सात मुनिगण और कई क्षुल्लक-ब्रह्मचारी थे। दिगम्वर साधुओंमें श्रीशान्ति-सागर ही मुख्य हैं। सं० १९२८ में उनका जन्म वेलगाम जिले के ऐनापुर-भोज नामक ग्राममें हुआ था। शान्तिसागरजी को तव लोग सात गोंडा पाटील कहते थे। उनकी नौ वर्षकी

१. दिजै०, विशेषांक वीर नि० सं० २४४३

इस संघका पिछला चातुर्मास व्यतीत हुआ था। उस समय इस संघमें मुनि सूर्यसागरजी के अतिरिक्त मुनि अजितसागर जी, मुनि धर्मसागरजी और ब्रह्मचारी भगवानदासजी थे। खुरई से अब इस संघका विहार उसी ओर हो रहा है। मुनि सूर्यसागरजी गृहस्थ दशामें श्री हजारीलाल के नाम से प्रसिद्ध थे। वह पोरवाड़ जातिके झालरापाटन निवासी श्रावक थे। मुनि शान्तिसागरजी छाणी के उपदेश से निर्ग्रन्थ साधु हुये थे।

(३) तीसरा संघ मुनि **शान्तिसागरजी छाणी** का है, जिसका गत चातुर्मास ईडरमें हुआ था। तब इस संघमें मुनि मल्लिसागरजी, ब्र० फतहसागरजी और ब्र० लक्ष्मी-चंदजी थे। मुनि शान्तिसागरजी एकान्त में ध्यान करने के कारण प्रसिद्ध हैं। वह छाणी (उदैपुर) निवासी दशा-हूमड़ जातिके रत्न हैं। भादव शुक्ल १४ सं० १६७६ को उन्होंने दिगम्बर वेष धारण किया था। उन्होंने भुखिया (बांसवाड़ा) के ठाकुर कूरसिंहजी साहब को जैनधर्म में दीक्षित करके एक आदर्श कार्य किया है।

(४) मुनि **आदिसागरजी** के चौथे संघने उदगांव में पिछली वर्षा पूर्ण की थी। उस समय इनके साथ मुनि मल्लि-सागरजी व क्षुल्लक सूरीसिंहजी थे।

(५) गत चातुर्मासमें **श्री मुनीन्द्रसागरजी** का पांचवाँ संघ मांडवी (सूरत) में मौजूद रहा था। उनके साथ श्री

से सुशोभित किया गया और फिर वम्बई के प्रसिद्ध सेठ घासी-राम पूर्णचन्द्र जौहरी ने एक यात्रा सङ्घ सारे भारत के तीर्थों की वन्दना के लिये निकालने का विचार किया। तदनुसार आचार्य शान्तिसागर की अध्यक्षता में वह सङ्घ तीर्थयात्रा के लिये निकल पड़ा। महाराष्ट्र के सांगली-मिरज आदि रियासतों में जव यह सङ्घ पहुंचा था तव वहांके राजाओं ने उसका अच्छा स्वागत किया था। निज़ाम सरकार ने भी एक खास हुकम निकालकर इस सङ्घको अपने राज्य में कुशलपूर्वक विहार कर जाने दिया था[1]। भोपाल राज्य में होकर वह संघ मध्यप्रान्त होता हुआ श्रीशिखरजी फ़रवरी सन् १९२७ में पहुंचा था। वहां पर वड़ा भारी जैन सम्मेलन हुआ था। शिखरजी से वह संघ कटनी, जवलपुर, लखनऊ, कानपुर, झांसी, आगरा, धौलपुर, मथुरा, फ़ीरोजावाद, एटा, हाथरस, अलीगढ़, हस्त-नापुर, मुज़फ्फ़र नगर आदि शहरों में होता हुआ दिल्ली पहुंचा था। दिल्ली में वर्षा-योग पूरा करके अव यह संघ अलवर की ओर विहार कर रहा है और उसमें ये साधुगण मौजूद हैं:—

(१) श्री शान्तिसागरजी आचार्य (२) मुनि चंद्रसागर (३) मुनि श्रुतसागर (४) मुनि वीरसागर (५) मुनि नमि-सागर (६) मुनि ज्ञानसागर।

(२) दूसरा संघ **श्री सूर्यसागरजी** महाराज का है, जो अपनी सादगी और धार्मिकता के लिये प्रसिद्ध है। खुरई में

---

१. हुकुम नं० ९२८ (शीग़ इंतज़ामी) १३३७ फ़सली
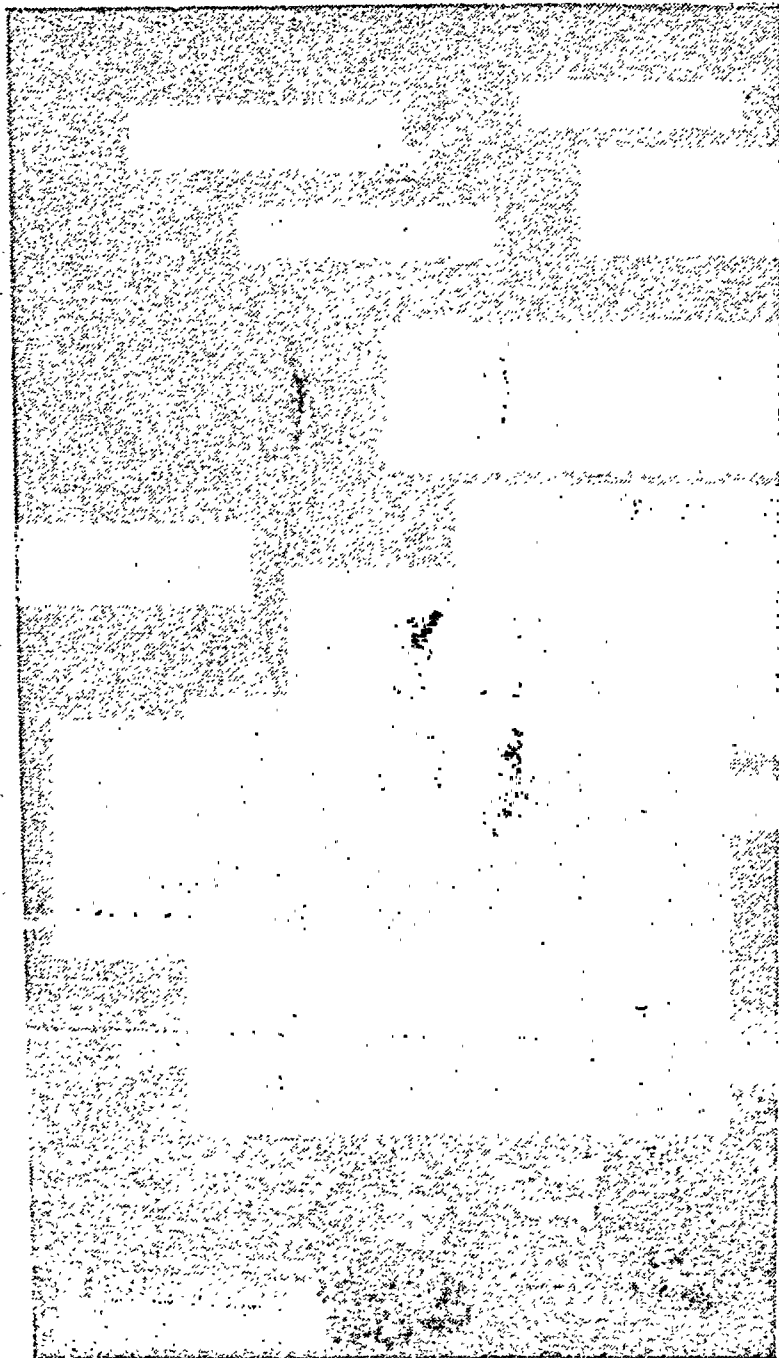
श्री १०८ मुनि शांतिसागरजी छाणी (पृष्ठ २७१)

देवेन्द्रसागरजी तथा विजयसागरजी थे। मुनीन्द्रसागरजी ललितपुर निवासी और परवार जाति के हैं। उनकी आयु अधिक नहीं है। वह श्री शिखरजी आदि तीर्थोंकी वन्दना कर चुके हैं।

(६) छठा संघ **श्री मुनि पायसागरजी** का है, जो दक्षिण-भारत की ओर ही रहा है।

इनके अतिरिक्त मुनि ज्ञानसागरजी (खैरावाद), मुनि आनन्दसागरजी आदि दिगम्बर-साधुगण एकान्त में ज्ञान-ध्यान का अभ्यास करते हैं। दक्षिण-भारत में उनकी संख्या अधिक है। ये सबही दिगम्बर मुनि अपने प्राकृत-वेष में सारे देशमें विहार करके धर्मप्रचार करते हैं! ब्रिटिश भारत और रियासतों में बेरोकटोक घूमे हैं; किन्तु गतवर्ष काठियावाड़ के कमिश्नर ने अज्ञानता से मुनीन्द्रसागरजी के संघ पर कुछ आदमियों के घेरे में चलने की पाबन्दी लगा दी थी; जिसका विरोध अखिल भारतीय जैनसमाज ने किया था और जिसको रद्द कराने के लिये एक कमेटी भी बनी थी।

सच बाततो यह है कि ब्रिटिश-राजकी नीतिके अनुसार किसी भी सरकारी कर्मचारी को किसी के धार्मिक मामले में हस्तक्षेप करने का अधिकार नहीं हैं और भारतीय कानून की रू से भी प्रत्येक सम्प्रदाय के मनुष्यों को यह अधिकार है कि वह किसी अन्य संप्रदाय या राज्य के हस्तक्षेप बिना अपने धार्मिक रीति-रिवाजों का पालन निर्विघ्न-रूप से करे।

दिगम्बर जैन मुनियों का नग्नवेश कोई नई बात नहीं है। प्राचीनकाल से जैनधर्म में उसकी मान्यता चली आई है और भारत के मुख्य धर्मों तथा राज्यों ने उसका सम्मान किया है, यह बात पूर्व-पृष्ठों के अवलोकन से स्पष्ट है। इस अवस्था में दुनिया की कोई भी सरकार या व्यवस्था इस प्राचीन धार्मिक रिवाज को रोक नहीं सकती। जैन-साधुओं का यह अधिकार है कि वह सारे वस्त्रों का त्याग करें और गृहस्थों का यह हक है कि वे इस नियम को अपने साधुओं द्वारा निर्विघ्न पाले जाने के लिये व्यवस्था करें, जिसके विना मोक्ष सुख मिलना दुर्लभ है।

इस विषय में यदि कानूनी नजीरों पर विचार किया जाय तो प्रगट होता है कि प्रिवी कौन्सिल (Privy Council) ने सब ही सम्प्रदायों के मनुष्यों के लिये अपने धर्मसम्बन्धी जुलूसों को आम सड़कों पर निकालना जायज करार दिया है। निम्न उदाहरण इस बातके प्रमाण हैं। प्रिवी कौन्सिलने मन्जूर हसन बनाम मुहम्मदजमन के मुकद्दमे में तय किया है कि:—

"Persons of all sects are entitled to conduct religious processions through public streets, so that they do not interfere with the ordinary use of such streets by the public and subject to such directions the Magistrate may lawfully give to prevent obstructions of the thorough fare or breaches of the public peace, and the worshippers in

ख़याल किया जाना ज़रूरी है, तो एक सम्प्रदाय के जुलूसको दूसरे सम्प्रदायके पूज्य-स्थानके पाससे न निकलने देना उसी तरहकी सख़्तीहै जैसे कि जुलूस के निकलने के वक्त उपासना-मन्दिर में पूजा वन्दकर देना।

मुक़द्दमा सदागोपाचार्य वनाम रामाराव (ILR.VI p. 376 में भी यही राय ज़ाहिरकी गई है। इलाहावाद ला जर्नल (भा० २३ पृ० १८०) पर प्रिवी कौन्सिल के जज महोदयोंने लिखाहै कि 'भारतवर्ष में ऐसे जुलूसोंके जिनमें मज़हबी रसूम अदा की जाती हैं सरेराह निकालने के अधिकारों के सम्बन्ध में एक 'नज़ीर' क़ायम करने की जरूरत मालूम होती है, क्योंकि भारतवर्ष में आला अदालतोंके फैसले इस विषयमें एक दूसरे के खिलाफ़ हैं। सवाल यह है कि किसी धार्मिक जुलूस को मुनासिब व ज़रूरी विनय के साथ शाह-राह-आम से निकलने का अधिकार है? मान्य जज महोदय इसका फैसला स्वीकृति में देतेहैं अर्थात् लोगों को धार्मिक जुलूस आम-रास्तों से जाने का अधिकार है।'

मुक़द्दमा शङ्करसिंह वनाम सरकार कैसरे हिन्द (Al. Law Journal Report. 1929 pp.180-182) जेरदफ़ा ३० पुलिस-ऐक्ट नं० ५ सन् १८६१ में यह तजवीज़ हुआकि 'तरतीब'—व्यवस्था देने का मतलव 'मनाई' नहीं है। मजिष्ट्रेट ज़िलाकी रायथी कि गाने-वजाने की मनाई सुपरिन्टेन्डेन्ट पुलिस ने उस अधिकार से की थी जो उसे दफा ३० पुलिस-ऐक्ट

a mosque or temple, which abutted on a high-road could not compel processionists to intermit their wo.ship while passing the mosque or temple on the ground that there was a continuous worship there." (Manzur Hasan Vs Mohammad Zaman, 23 All. Law Journal, 179).

भावार्थ—'प्रत्येक सम्प्रदाय के मनुष्य अपने धार्मिक जुलूसों को आम रास्तों से लेजाने के अधिकारी हैं, बशर्ते कि उस से साधारण जनता को रास्ते के व्यवहार करने में दिक्कत न हो और मजिस्ट्रेट की उन सूचनाओं की पाबन्दी भी होगई हो जो उसने रास्ते की रुकावट और अशान्ति न होनेके लिये उपस्थित की हों। और किसी मस्जिद या मन्दिर में, जो रास्ते पर स्थित हो, पूजा करने वाले लोग जुलूस निकालने वालों को जब कि वह मन्दिर या मसजिद के पास से निकलें, मात्र इस कारण कि उस समय वहां पूजा हो रही है उनकी जुलूसी पूजा को बन्द करने पर मजबूर नहीं कर सकते।'

इस सम्बन्ध में "पारथसार्दी आयंगर बनाम चिन्नकृष्ण आयंगार" की नजीर भी द्रष्टव्य है। Indian Law Report, Madras, Vol. Vp 309) शूद्रम चेट्टी बनाम महाराणी के मुक़द्दमे में यही उसूल साफ़ शब्दों में इससे पहले भी स्वीकार किया जा चुका है। (ILR. VI p. 203) इस मुकद्दमे के फ़ैसले में पृष्ठ २०६ पर कहा गया है कि जुलूसोंके सम्बन्धमें यह देखना चाहिये कि अगर वह धार्मिक हैं और धार्मिक ग्रन्थों का

सुपरिन्टेन्डेन्ट पुलिसको अधिकार न था। इस तजवीज़ के कारण वही थे जो वमुक़द्दमा सरकार बनाम किशनलाल में दिये गये हैं। (ILR. Allahabad Vol. 39 p. 131) शान्ति स्थिर रखने का भाव आदमियों को घरोंमें बन्द करने का नहीं है।"[1]

यही विज्ञप्तियां दि० जैन साधुओं से भी सम्बन्ध रखती हैं। वह चाहे अकेले निकलें और चाहे जुलूस की शक्ल में, सरकारी अफ़सरों का कर्तव्य है कि उनके इस हक़को न रोकें। दिगम्बर जैन साधुगण सारे ब्रिटिश भारत और देशी रियासतों में स्वतन्त्रता से बराबर घूमते रहे हैं, कहीं कोई रोक टोक नहीं हुई और न इस सम्बन्ध में किसी को कोई शिकायत हुई। अतएव सरकारी अफ़सरों का तो यह मुख्य कर्तव्य है कि वे दिगम्बर मुनियों को अपना धर्म पालन करने में सहायता पहुंचायें। गतकाल में जितनेभी शासक यहां हुये उन्होंने यही किया इसलिये अब इसके विरुद्ध ब्रिटिश-शासक कोई भी वर्ताव करने के अधिकारी नहीं हैं। उनको तो जैनों का अपना धर्म निर्वाध पालने देना ही उचित है।

---

१. NJ., pp. 19-23

की रू से मिला था कि किसी त्यौहार या रस्मके मौक़े पर जो गाने-बजाने ग्राम-रास्तों पर किये जावें उनको किसी हदतक सीमित करदे। मैं (जज हाईकोर्ट) मजिस्ट्रेट-ज़िलाकी राय से सहमत नहीं हूं कि शब्द 'व्यवस्था' का भाव हर प्रकारके बाजे की मनाई है। व्यवस्था देने का अधिकार उसी मामले में दिया जाता है जिसका कोई अस्तित्व हो। किसी ऐसे कार्यके लिये जिसका अस्तित्व ही नहीं है, व्यवस्था देने की सूचना बिल्कुल व्यर्थ है। उदाहरणतः आने जाने की व्यवस्थाके सम्बन्धमें सूचनासे आने जाने के अधिकारका अस्तित्व स्वतः अनुमान किया जायगा। उसका अर्थ यह नहीं है कि पुलिस-अफ़सरान किसी व्यक्ति को उसके घरमें बन्द रखने या उसका आना-जाना रोक देने के अधिकारी हैं।

दफ़ा ३१ पुलिस ऐक्ट की रू से पुलिस को आम रास्तों, सड़कों, गलियों, घाटों आदि पर आने-जाने के सबही स्थानों में शान्ति स्थिर रखने का अधिकार है। बनारसमें इस अधिकारके अनुसार एक हुक्म जारी किया गया था कि खास सम्प्रदायके लोग यात्रावालों (पंडों) को, जो इस पवित्र नगरकी यात्रा के लिये लोगोंका पथ प्रदर्शन करतेहैं, रेल्वेस्टेशन पर जाने की मनाई है। इस मुक़द्दमेमें हाईकोर्ट इलाहाबादके योग्य जज महोदयने तजवीज़ किया कि किसी स्थान पर शान्ति स्थिर रखनेके अधिकारों के बल पर किसी खास सम्प्रदाय के लोगों को किसी खास जगह पर जानेकी आम मुमानियत करने का

यूरोप में आज सैकड़ों सभायें दिगम्बरत्व के प्रचार के लिये खुली हुई हैं; जिनके हज़ारों सदस्य दिगंबर-वेषमें रहने का अभ्यास करते हैं! वेडल्स स्कूल, पीटर्स फील्ड (हैम्प-शायर) में वैरिस्टर डाक्टर इञ्जिनीयर, शिक्षक आदि उच्च-शिक्षा प्राप्त महानुभाव दिगंबर वेषमें रहना अपने लिये हितकर समझते हैं। इस स्कूल के मंत्री श्री वर्फोर्ड (Mr. N. F Bar-ford) कहते हैं कि :—

Next year, as I say, we shall be even more advanced, and in time people will get quite used to the idea of wearing no clothes at all in the open and will realise its enormous value to health. (Amrita Bazar Patrika, 8-8-31)

भाव यही है कि एक सालके अन्दर नंगे रहने की प्रथा विशेष उन्नत हो जायगी और समयानुसार लोगोंको खुले-आम कपड़े पहनने की आवश्यकता नहीं रहेगी। उन्हें नंगे रहने से स्वास्थ्य के लिये जो अमित लाभ होगा वह तब ज्ञात होगा।

इस प्रकार संसार में जो सभ्यता पुज रही है उसकी यह स्पष्ट घोषणा है कि 'मनुष्य जातिको स्वस्थ रखने के लिये वस्त्रों की तिलाञ्जलि देनी पड़ेगी। नग्नता रोगियों के लिये ही केवल एक महान् औषधि नहीं है, बल्कि स्वस्थ जीवों के लिए भी अत्यन्त आवश्यक है। स्विटज़रलैंड के नगर लेयसन (Leysen) निवासी डॉ० रोलियर (Dr. Rollier) ने केवल

दिगम्बरत्व और आधुनिक विद्वान् ।

'मनुष्य मात्र की आदर्श-स्थिति दिगम्बर ही है ' मुझे स्वयं नग्नावस्था प्रिय है ।" — म० गांधी

संसार के सर्व श्रेष्ठ पुरुष दिगम्बरत्व को मनुष्य के लिये प्राकृत, सुसंगत और आवश्यक समझते हैं। भारत में दिगंबरत्वका महत्व प्राचीनकाल से माना जाता रहा है। किन्तु अब आधुनिक सभ्यता की लीलास्थली यूरोप में भी उसको महत्व दिया जा रहा है। प्राचीन यूनान-वासियोंकी तरह जर्मनी, फ्रान्स और इङ्गलेन्ड आदि देशों के मनुष्य नंगे रहने में स्वास्थ्य और सदाचारकी वृद्धि हुई मानते हैं। वस्तुतः बातभी यही है। दिगम्बरत्व यदि स्वास्थ्य और सदाचार का पोषक न हो तो सर्वज्ञ जैसे धर्मप्रवर्तक मोक्ष-मार्ग के साधनरूप उसका उपदेश ही क्यों देते ? मोक्षको पानेके लिये अन्य आवश्यकताओं के साथ नंगा-तन और नंगा मन होना भी एक मुख्य आवश्यकता है। श्रेष्ठ शरीर ही धर्म-साधन का मूल है और सदाचार धर्मकी जान है। तथा यह स्पष्ट है कि दिगम्बरत्व श्रेष्ठ स्वस्थ शरीर और उत्कृष्ट सदाचार का उत्पादक है। अब भला कहिये वह परम धर्मकी आराधना के लिये क्यों न आवश्यक माना जाय ? आधुनिक सभ्य-संसार आज इस सत्य को जान गया है और वह उसका मनसा वाचा कर्मणा क़ायल है !

समझते हैं। शताब्दियों से जिसके लिये उद्यम होरहा था, वह यही पवित्रता का आन्दोलन है। यह पवित्रता कैसी है? इसको स्वयं उनके निवास-स्थान गेलैन्ड (Gelande) के देखने से जाना जा सकता है, जबकि वहां सैकड़ों स्त्री-पुरुष, बालक-बालिकायें आनन्द-मय स्वाधीनता का उपभोग करते दृष्टि पड़ें! ऐसे दृश्य के देखने से मन पर क्या असर पड़ता है, वह बताया नहीं जा सकता! जिस प्रकार कोई मैला कुचेला आदमी स्नान करके स्वच्छ दिखाई दे, ठीक उसी तरह यह दृश्य सर्व प्रकार के सूक्ष्म अंतरंग-विषोंसे शून्य दिखाई पड़ेगा। ऐसे पवित्र मानवों के सामने जो वस्त्रधारी होगा वह लज्जा को प्राप्त होजायगा। ऐसे आनन्दमय वाता-वरणमें ... ताज़ी हवा और धूपका जो प्रभाव शरीर पर पडता है उसको सर्वसाधारण अच्छी तरह जान सकते हैं, परन्तु जो मानसिक तथा आत्मिक लाभ होता है, वह विचार के बाहर है। यह क्रान्ति दिनों दिन बढ़ रही है और कभी अवनत नहीं हो सकती। मानवों की उन्नति के लिये यह सर्वो-त्कृष्ट भेंट जर्मनी संसार को देगा, जैसे उसने आपेक्षिक-सिद्धांत उसे अर्पण किया है। बर्लिन में जो अभी इन सोसाइटियों की सभा हुई थी उसमें भिन्न २ नगरों के ३००० सदस्य शरीक हुये थे। उसे प्रतिष्ठित व्यक्तियों और राष्ट्रीय कौन्सिल के मेम्बरों ने अपनी २ स्त्रियों के साथ देखा था। उन स्त्रियों के भाव उसे देखकर बिल्कुल बदल गये। नग्नताका विरोध करने

नग्नचिकित्सा द्वारा ही अनेक रोगियों को आरोग्यता प्रदान कर जगत में हलचल मचा दी है। उनकी चिकित्सा-प्रणाली का मुख्य अङ्ग है स्वच्छ वायु अथवा धूपमें नंगे रहना, नंगे टहलना और नंगे दौड़ना। जगतविख्यात ग्रंथ 'इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका' में नग्नता का बड़ा भारी महत्व वर्णित है।"[१] वास्तव में डाक्टरों का यह कहना कि जबसे मनुष्य जाति वस्त्रों के लपेट में लिपटी है तबसे ही सर्दी, जुकाम, क्षय आदि रोगों का प्रादुर्भाव हुआ है कुछ सत्य-सा प्रतीत होता है। प्राचीन काल में लोग नंगे रहने का महत्व जानते थे और दीर्घजीवी होते थे।

किन्तु दिगम्बरत्व स्वास्थ्य के साथ २ सदाचार का भी पोषक है। इस बातको भी आधुनिक विद्वानोंने अपने अनुभव से स्पष्ट कर दिया है। इस विषयमें श्री ओलिवर हर्स्ट सा० "The New Statesman and Nation" नामक पत्रिका में प्रकट करते हैं कि "अन्तत: अब समाज बाईबिल के पहिले अध्याय के महत्व को (जिसमें आदम और हव्वाके नंगे रहनेका ज़िकर है) समझने लगी है और नग्नता का भय अथवा झूठी लज्जा मन से दूर होती जा रही है। जरमनी भरमें बीसों ऐसी सोसाइटियां क़ायम होगई हैं जिसमें मनुष्य पूर्ण नग्ना-वस्थामें स्वच्छ वायुका उपयोग करते हुये नाना प्रकारके खेल खेलते हैं। वे लोग नग्न रहना प्राकृतिक, पवित्र और सरल

१. दिमुनि० भूमिका, पृष्ठ 'ख'

हूं, पर मुझे जैनसाधुओं और गृहस्थों से मिलने का बहुत अवसर मिला है। जैनसाधुओं के विषय में मैं विना किसी संकोचके कह सकता हूं कि उनमें शायदही कोई ऐसा साधुहो, जो अपने प्राचीन पवित्र आदर्श से गिरा हो। मैंने तो जितने साधु देखे उनसे मिलने पर चित्त में यही प्रभाव पड़ा कि वे धर्म, त्याग, अहिंसा तथा सदुपदेशकी मूर्ति हैं। उनसे मिलकर बड़ी प्रसन्नता होती है"[१]। बङ्गाली विद्वान् श्री वरदाकान्त मुख्योपाध्याय एम० ए० इस विषय में कहते हैं[२] :—

"चौदह आभ्यन्तरिक और दशबाह्य परिग्रह परित्याग करने से निर्ग्रन्थ होते हैं।..................जब वे अपनी नग्नावस्थाको विस्मृत होजाते हैं तब ही भवसिन्धु से पार हो सकते हैं।..................(उनकी) नग्नावस्था और नग्न मूर्तिपूजा उनका प्राचीनत्व सप्रमाण सिद्ध करती है, क्योंकि मनुष्य आदिम अवस्था में नग्न थे।"

महाराष्ट्रीय विद्वान् श्रीवासुदेव गोविन्द आपटे बी० ए० ने एक व्याख्यान में कहाथा कि "जैनशास्त्रोंमें जो यतिधर्म कहा गया है वह अत्यन्त उत्कृष्टहै, इसमें कुछभी शङ्का नहीं है[३]।" प्रो० डा० शेषागिरि राव, एम० ए०, पी० एच० डी० बताते हैं कि[४] :—

"(The Jaina) faith helped towards the formation of good and great character helpful to

---

[१] हिमु०, पृ० २३ [२] जैम०, पृ० १५१
[३] जैम०, पृ० ५७ [४] SSIJ., pt. II p. 30

के लिये कोई हेतु नहीं , है जिस पर वह टिक सके । जो इसका विरोध करता है, वह स्वयं अपने भावोंकी गन्दगी प्रगट करता है। किन्तु यदि वह इन लोगोंके निवास स्थान को गौर से देखे तो उसे अपना विरोध छोड़ देना होगा। वह देखेगा कि सैकड़ों स्त्री पुरुषों—माता, पिता और वच्चों ने कैसी पवित्रता प्राप्त करली है।"[१]

अतएव पाश्चात्य विद्वानों की अनुभव-पूर्ण गवेषणा से दिगम्बरत्व का महत्व स्पष्ट है। दिगम्बरत्व मनुष्य की आदर्श स्थिति है और वह धर्म-मार्ग में उपादेय है, यह पहले भी लिखा जाचुका है। स्वास्थ्य और सदाचार के पोषक नियम का वैज्ञानिक धर्म में आदर होना स्वाभाविक है। जैनधर्म एक धर्म विज्ञान है और वह दिगम्बरत्व के सिद्धान्तका प्रचारक अनादि से रहा है। उसके साधु इस प्राकृतवेष में शीलधर्म के उत्कट पालक और प्रचारक तथा इन्द्रियजयी योगी रहे हैं; जिनके सम्मुख सम्राट् चन्द्रगुप्तमौर्य और सिकन्दर महान् जैसे शासक नतमस्तक हुयेथे और जिनहोंने सदाही लोकका कल्याण किया, ऐसेही दिगम्बर मुनियों के संसर्ग में आये हुये अथवा मुनिधर्म से परिचित आधुनिक विद्वान् भी आज इन तपोधन दिगम्बर मुनियोंके चारित्रसे अत्यन्त प्रभावित हुयेहैं। वे उन्हें राष्ट्र की वहुमूल्य वस्तु समझते हैं। देखिये साहित्याचार्य श्री कन्नोमल जी एम० ए० जज उनके विषय में लिखते हैं कि "मैं जैन नहीं

---

१. जैमि० वर्ष ३२ पृष्ट ७१२

एक अन्य महिला मिशनरी श्री स्टीवेन्सनने अपने ग्रंथ "हार्ट आव जैनिज़म" में लिखा है कि :—

"Being rid of clot es one is also rid of a lot of other worries; no water is needed in which to wash them Our knowledge of good and evil; our knowledge of nakedness keeps us away from salvat on To obtain it we must forget nakedness. The Jain *Nirarantlias* have forgot all knowledge of good and evil Why should they require clothes to hide their nakedness ?" (Heart of Jainism, p. 35)

भावार्थ—'वस्त्रों की झंझटसे छूटना, हज़ारों अन्य झंझटोंसे छूटनाहै। कपड़े धोनेके लिये एक दिगम्बर वेषी को पानी की ज़रूरत नहीं पड़ती। वस्तुतः पापपुण्यका भान ही—नग्नता का ध्यान ही मनुष्य को मुक्त नहीं होने देता। मुक्ति पाने के लिये मनुष्य को नग्नता का ध्यान भुला देना चाहिये। जैन निग्रन्थों ने पापपुण्य के भान को भुला दियाहै। भला उन्हें अपनी नग्नता छिपाने के लिये वस्त्रों की क्या ज़रूरत ?'

सन् १९२७ में जब लखनऊ में दिगम्बर मुनि संघ पहुँचा तो श्री अलफ्रेड जेकबशॉ (Alfred Jacob Shaw) नामक एक ईसाई विद्वान् ने उसके दर्शन किये थे। वह लिखते हैं कि प्राचीन पुस्तकों में सम्मेदशिखिर पर दिगम्बर मुनियों के ध्यान करने बाबत पढ़ा ज़रूर था लेकिन ऐसे साधुओंको देखनेका

the progress of Culture and humanity. The leading exponents of that faith continued to live such lives of hardy discipline and spiritual culture etc"

भावार्थ—"जैनधर्म संस्कृति और मानवसमाज की उन्नति के लिये उत्कृष्ट और महान् चारित्र को निर्माण कराने में सहायक रहाहै। इस धर्मके आचार्य सदाकी भांति तपश्चरण और आत्मविकास का उन्नत जीवन व्यतीत करते रहे।"

"ईसाई मिशनरी ए० डुवोई सा० ने दिगम्बर मुनियों के सम्बन्ध में कहा था कि :—

"सबसे उच्चपद जो कि मनुष्य धारण कर सकता है वह दिगम्बर मुनिका पदहै। इस अवस्था में मनुष्य साधारण मनुष्य न रहकर अपने ध्यान के वल से परमात्माका मानों अंश हो जाता है।..........जब मनुष्य निर्वाणी (दिगम्बर) साधु हो जाता है तब उसको इस संसारसे कुछ प्रयोजन नहीं रहता और वह पुण्य-पाप, नेकी-वदी को एक ही दृष्टि से देखता है। उसको संसार की इच्छायें तथा तृष्णायें नहीं उत्पन्न होती हैं। न वह किसीसे राग और न द्वेष करता है। वह विना दुख मालूम किये सर्व प्रकारके उपसर्गों को सहन कर सकता है।.......अपने आत्मिक भावों में जो भीजा हो उसको क्यों इस संसार की और उसकी निस्सार क्रियायों की चिन्ता होगी !"५

---

५ जैम०, पृ० १०५

उपसंहार ।

वाह्यो ग्रन्थोऽगमक्षाणामांतरो विषयेषिता ।
निर्मोहस्तत्र निर्ग्रन्थः पांथः शिवपुरेऽर्थतः ।।–कवि आशाधर[1]

'यह शरीर वाह्य परिग्रह है और स्पर्शनादि इन्द्रियों के विषयोंमें अभिलाषा रखना अन्तरङ्ग परिग्रह है। जो साधु इन दोनों परिग्रहोंमें ममत्व-परिणाम नहीं रखता है, परमार्थसे वही परिग्रह-रहित गिना जाता है। तथा वही निर्वाण-नगर वा मोक्षमें पहुँचनेके लिये पांथ अर्थात् नित्य गमन करने वाला माना जाता है।' इसका कारण यह है कि मोक्षमार्गमें निरंतर गमन करनेकी सामर्थ्य एक मात्र यथाजात-रूपधारी 'निर्ग्रन्थ ही के है। जो मनुष्य शरीर-रक्षा और विषय कषायोंकी चिंताओं में फंसकर पराधीन बना हुआ है, भला वह साधु-पदको कैसे धारण कर सकता है? और जब दिगम्बर-वेषको धारण करके वह साधु नहीं हो सकता तो फिर उसका निरन्तर मोक्षमार्ग पर गमन करना अथवा मोक्ष-पद को पालेना कैसे संभव है? इसीलिये दिगम्बरत्वको महत्व देकर मुमुक्षु शरीर से नाता तोड़ लेते हैं और नंगे तन तथा नंगे मन होकर आत्म-स्वातंत्र्यको पालेते हैं। शास्वत-सुख को दिलाने वाला यही एक राजमार्ग है और इसका उपदेश प्रायः संसार के सब ही मुख्य २ मत प्रवर्तकों ने किया था!

मनोविज्ञानकी दृष्टिसे जरा इस प्रश्न पर विचार

---

[1] सागार०, पृ० ५१३

अवसर अजिताश्रम में ही मिला। वहां चार दिगम्बर मुनि ध्यान और तपस्या में लीन थे। आगसी जलती हुई छत पर बिना किसी क्लेशके वह ध्यान कर रहेथे। उनसे पूछा तो उन्होंने कहा कि 'हम परमात्मस्वरूप आत्माके ध्यानमें लीन रहते हैं। हमें बाहरी दुनियांकी बातों और दुःख-सुखसे क्या मतलब'? यद्यपि मैं पक्का ईसाई हूं पर तो भी मैं कहूंगा कि इन साधुओंका सम्मान हर सम्प्रदायके मनुष्योंको करना चाहिये। उन्होंने संसार के सभी सम्बन्धों को त्याग दिया है और एक मात्र मोक्ष की साधना में लीन हैं।" [1]

सचमुच इन विद्वानों का उक्त कथन दिगम्बरत्व और दिगम्बर मुनियोंकी महिमाका स्वतः द्योतक है। यदि विचार शील पाठक तनिक इस विषय पर गम्भीर विचार करेंगे तो वह भी नग्नताके महत्व और नग्न साधओंके स्वरूपको मोक्ष प्राप्तिके लिये आवश्यक जान जायेंगे। कविवर वृन्दावन के शब्द स्वतः उनके हृदयसे निकल पड़ेंगे :—

"चतुर नगन मुनि दरसत,
भगत उमग उर सरसत।
नुति थुति करि मन हरसत,
तरल नयन जल बरसत॥"

---

[1] JG. XXIII p. 139

दिगम्बरत्व और दि० मुनि—

श्री १०८ मुनि नेमसागरजी महाराज

कीजिये और फिर देखिये दिगम्बरत्वकी महिमा ! जिसका मन शरीरमें अटका हुआ है, जो लज्जाके बन्धनमें पड़ा हुआ है और जो साधु-वेषको धारण करकेभी साधुताको नहीं पा पाया है, वह दिगम्बरत्वके महत्वको क्या जाने ? मनकी शुद्धि — भावोंकी विशुद्धता — ही मुमुक्षुके लिये आत्मोन्नतिका कारण है और वस्तुतः वही साक्षात् मोक्ष को दिलाने वाली है ! किन्तु मनकी यह विशुद्धता क्या बनावट और सजावटमें नसीब हो सकती है ? वस्त्रादि-परिग्रहके मोहमें अटका हुआ प्राणी भला कैसे निर्ग्रन्थ-पदको पा सकता है ? इसीलिये संसारके तत्त्ववेताओंने हमेशा दिगम्बरत्वका प्रतिपादन किया है ! भगवान ऋषभदेवके निकटसे प्रचारमें आकर यह महत सिद्धान्त आज तक बराबर मुमुक्षुओंका आत्मकल्याण करता आ रहा है और जब तक मुमुक्षुओंका अस्तित्व रहेगा बराबर वह कल्याण करता रहेगा !

दिगम्बरत्व मनुष्यको रंकसे राव बना देता है। उसको पाकर मनुष्य देवता हो जाता है। लेकिन दिगम्बरत्व खाली नंगा-तन नहीं है। वह नंगे होनेसे कुछ अधिक है। नंगे तो पशुभी हैं, पर उन्हें कोई नहीं पूजता ? इसका कारण है। वह यह कि मानव-जगत जानता है कि पशुओंको अपने शरीर ढकने और विवेकसे काम लेनेकी तमीज़ नहीं है। पशुओंने विषय-विकार परभी विजय नहीं पाई है। इसके विपरीत दिगंबर-मुनिके सम्बन्धमें उसकी धारणा है और ठीक धारणा

हैं जैसेकि पूव पृष्टोंमें हम निर्दिष्ट कर चुके हैं कि वे साधु तनसे ही नंगे नहीं होते वल्कि उनका मनभी विषयविकारोंसे नंगा है। दिगम्बरत्वका रहस्य उसके वाह्याभ्यन्तर रूपमें गर्भित है। इस रहस्यको समझकर ही मुमुक्षु दिगंवर वेष को धारण करके विकार-विवर्जित होनेका सबूत देतेहैं और आत्मकल्याण करते हुये जगतके लोगोंका हित्त साधते हैं। श्री ऋषभदेव दिगंवर मुनिही थे जिन्होंने संसारको सभ्यता और धर्मका पाठ पढ़ाया! श्री सिंहनन्दि आचार्य दिगंवर वेषमें ही विचरे थे जिन्होंने गङ्गवंशकी स्थापना कराई और उन क्षत्रियोंको देश तथा धर्मका रक्षक बनाया! कल्याणकीर्ति आदि मुनिगण नङ्गे साधुही थे जिन्होंने सिकन्दर महान् जैसे विदेशियोंके मनको मोह लिया था और उन्हें भारतभक्त बनाया था! वे दिगम्वर ऋषिही थे जिन्होंने अपने तत्वज्ञानका सिक्का यूना-नियोंके दिलोंपर जमा दिया था और उन्हें वादमें निग्रहस्थान को पहुँचा दिया था! श्री वादिराज और वासवचन्द्र जैसे दिगम्बर मुनि धीर-वीरताके आगार थे कि उन्होंने रणाङ्गणमें जाकर योद्धाओंको धर्मका स्वरूप समझाया था! और श्री समन्तभद्राचार्य दिगम्वर साधु ही थे जिन्होंने सारे देश में विहार करके ज्ञान-सूर्यको प्रकट किया था! सम्राट चन्द्रगुप्त, सम्राट् अमोघवर्ष प्रभृति महिमाशाली नर-रत्न अपनी अतुल राज-लक्ष्मीको लात मारकर दिगम्बर ऋषि हुये थे। ऐसेव उदाहरण दिगम्बरत्व और दिगम्बर मुनियोंके महत्व

परिशिष्ट ।

तुर्किस्तान के मुसलमानों में नग्नत्व आदर की दृष्टि से देखा जाता है, यह बात पहले लिखी जाचुकी है। मिस लुसी गार्नेट की पुस्तक "Mysticism & Magic in Turkey" के अध्ययन से प्रगट है कि "पैगम्बर सा० ने एक रोज मुरीदों के राज और मारफत की बातें अली सा० को बतादीं और कह दिया कि वह किसी को बतायें नहीं। इस घटना से ४० दिन तक तो अली सा० उस गुप्त संदेश को छुपाये रहे; किन्तु फिर उसको दिल में छुपाये रखना असंभव जानकर वह जंगल को भाग गये (पृ० ११०)"। इस उल्लेख से स्पष्ट है कि मुहम्मद सा० ने राजे-मारफत अर्थात् योग की बातें बताई थीं, जिनको बाद में सूफ़ी दरवेशों ने उन्नत बनाया था। इन दरवेशों में 'अजालुला व' और 'अब्दाल' श्रेणीके फ़कीर बिलकुल नङ्गे रहतेहैं। मि जे.पी. ब्राउन नामक साहबको एक दरवेश-मित्रने खालिफअली की ज़ियारतगाह में मिले हुए एक 'अजालुला व' दरवेश का हाल कहा था। उसका नाम जमालुद्दीन कूफीय था। उसका शरीर मझोले क़दका था और वह बिल्कुल नंगा (Perfectly naked) था। उसके बाल और दाढ़ी छोटे थे और शरीर कमज़ोर था। उसकी उम्र लगभग ४०–५० वर्ष की थी (पृ० ३६)। इन दरवेशों के संयमकी ऐसी प्रसिद्धि है कि देश में चाहे कहीं बेरोकटोक घूमते हैं—कभी अर्द्ध नग्न और कभी पूरे नंगे वे होजाते हैं। जितने ही वह अद्भुत दीखते हैं उतने ही अधिक पवित्र और नेक वे गिने जाते हैं। (The result of this reputation for sanctity enjoyed by Abdals is that they are allowed to

और गौरवको प्रकट करते हैं। दिगम्बर मुनियोंके मूलगुणों की संख्या-परिमाण प्रस्तुत परिच्छेदोंमें ओत-प्रोत दिगंबर-गौरवका बखान है। सचमुच दिगम्बर मुनि, श्रीशिवव्रतलाल वर्म्मनके शब्दोंमें [१] "धर्म-कर्मकी झलकती हुई प्रकाशमान् मूर्तियां हैं। वे विशाल हृदय और अथाह समुन्दर हैं जिसमें मानवी हितकामनाकी लहरें जोर-शोरसे उठती रहती हैं। और सिर्फ मनुष्यही क्यों? उन्होंने संसारके प्राणी मात्रकी भलाईके लिये सबका त्याग किया। प्राणीहिंसाको रोकनेके लिये अपनी हस्तीको मिटा दिया। ये दुनियांके जबरदस्त रिफ़ार्मर, जबरदस्त उपकारी और बड़े ऊंचे दर्जेके वक्ता तथा प्रचारक हुये हैं। ये हमारे राष्ट्रीय इतिहासके कीमती रत्न हैं। इनमें त्याग, वैराग्य और धर्मका कमाल—सब कुछ मिलता है। ये 'जिन' हैं, जिन्होंनें मोहमायाको और मन और कायाको जीत लिया। साधुओंकी नग्नता देखकर भला क्यों नाक-भौं सकोड़ते हो? उनके भावोंको क्यों नहीं देखते? सिद्धांत यह हैकि आत्माको शारीरिक बन्धनसे और ताउल्लुकातकी पोशिशसे आज़ाद करके बिल्कुल नंगा करलिया जाय; जिससे उसका निजरूप देखनेमें आवे।" यह वजह है इन साधओंके जाहिरदारीके रस्मोरिवाजसे परे रहने की! यह ऐबकी बात क्या है? ईश्वर-कुटीमें रहने वालों को अपना जैसा आदमी समझा जाय, तो यह ग़लती है या नहीं? इसलिये आओ सब मिलकर राष्ट्र और लोकके कल्याणके लिये स्पष्ट घोषणा करो और कविवर वृन्दावनकी तानमें तानमिला कर कहो—

'सत्यपन्थ निर्ग्रंथ दिगम्बर!'

---

[१] जैम०, पृ० ३-५

अनुक्रमणिका ।

wander at large over the country, sometimes half-clad, sometimes completely naked.) वे अपने ज्ञान का प्रयोग खूब करते हैं। घर और साथियों से उन्हें मोह नहीं होता। वे मैदानों और पहाड़ों में जा रमते हैं। वहीं वनफलों पर गुज़रान करते हैं। जंगल के खूंख़ार जानवरों पर वे अपने अध्यात्मबल से अधिकार जमा लेते हैं। सारांशत: तुर्किस्तान में यह नंगे दरवेश प्रसिद्ध और पूज्य माने जाते हैं।

यूरोप में नंगे रहने का रिवाज दिनों दिन बढ़ता जा रहा है। जर्मनी में इस की खूब वृद्धि है। अब लोग इस आन्दोलन को एक विशेष उन्नत जीवन के लिए आवश्यक समझने लगे हैं। देखिये, २ फ़रवरी सन् ३२ के "स्टेट्समैन" अख़बार में यह ही बात कही गई है ;—

"Germany is at present challenging the traditional view that clothes are requisite for health and virtue. The habit of wearing only the sun and air at exercise is growing and the "Nudist" movement at first laughed at and blushed at elsewhere, is now seriously studied as probably the way to a saner morality."—The Statesman, 2.2,32.

भारतवर्ष में नग्न रहनेका महत्व बहुत पहले ही समझा जा चुका है। विदेशों में अब वही बात दुहराई जा रही है।